[उपासनाखण्डम्]

'विमला' हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्र

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

त्रिपुरार्णवतन्त्रम्

[उपासनाखण्डम्]

'विमला' हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्र

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

भूमिका

तन्त्रशास्त्र के गम्भीर गुरुओं, आचार्यों और विषय-विशेषज्ञों के बीच यह **त्रिपुरार्णव** अतीव सम्मान्य, श्रद्धेय, मूल्योत्कर्षक एवं मार्गनिदेशक ग्रन्थ के रूप में ख्यात है। इसकी महिमा का वितान प्रायः सम्पूर्ण तन्त्रशास्त्र पर परिव्याप्त परिलक्षित होता है। तन्त्रशास्त्र के सुप्रसिद्ध एवं सुख्यातग्रन्थों में, जैसे—पुरश्चर्यार्णव, ललितार्चन चन्द्रिका, चैतन्य गिरि की विष्णुपूजापद्धति, ताराभक्ति सुधार्णव, अर्थरत्नावली, तन्त्रसार, परमानन्दतन्त्र की सौभाग्यानन्द सन्दोह नामक टीका, नित्या षोडशी की टीका, ललितासहस्रनाम भाष्य और सौन्दर्यलहरी की टीका तथा अन्य संग्रहग्रन्थों में प्रमाणपुरःसर इसके उद्धरण उपलब्ध हैं। श्री विद्यार्णव में कादि मत के जिन चार ग्रन्थों की सूचना मिलती है, उनमें एकनाम त्रिपुरार्णव का भी है। इससे भी इस ग्रन्थ की विशिष्टता स्वतः सिद्ध होती है।

विषय-वस्तु के प्रतिपादन की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ की अपनी विशेष विशिष्टता है। सर्वप्रथम यह तन्त्र शिव ने महात्मा भैरव को सुनाया था, किन्तु कालपर्याय से त्रैपुरतन्त्रों का उच्छेद हो गया। पुनः एक दिन सदाशिव ने महात्मा भैरव को त्रिपुरार्णव की कथा सुनाई। यह ग्रन्थ भगवती त्रिपुरा की उपासनाविधि का समुद्र है। यह ग्रन्थ संख्या की दृष्टि से लक्षगुणित है। इस ग्रन्थ में नित्य, नैमित्तिक और काव्य प्रयोगों की अनेक विधियों का विश्लेषणात्मक वर्णन उपलब्ध हैं। विस्तार होते हुए भी संक्षिप्त कथन से पूर्ण होने के कारण यह अनेकविध उपासना कर्म और विविध उपपत्तियों से युक्त अतिश्रेष्ठ शाक्त विज्ञान है।

इससे पूर्व मैंने त्रिपुरारहस्य ज्ञानखण्ड एवं त्रिपुरारहस्य माहात्म्यखण्ड की हिन्दी विमलाव्याख्या लिखकर इसे साधारण लोगों तक पहुँचाने की क्षुद्र चेष्टा की है। फिर इसके उपासनाखण्ड की भी व्याख्या इस अनुष्ठान को पूरा करने की प्रेरणा प्रकाशक महोदय श्रीनवनीतदास गुप्त जी से मिलती रही है, किन्तु समस्या यह थी कि इसकी पाण्डुलिपि प्रायः कहीं उपलब्ध नहीं थी। वर्षों मैं इसके लिये खाक छानता रहा पर, यह मिली ही नहीं। मिलती भी कैसे ? यह तो सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय-वाराणसी के सरस्वती भवन में एक स्वतन्त्र किन्तु पूर्ण मातृका के साथ संस्कृत हस्तलिखित-ग्रन्थ-भाण्डागार में सुरक्षित थी। यहाँ के विद्वान् कुलपति महोदय डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने इसका सश्रम सम्पादन करा कर प्रकाशित कराया है। मुख्य रूप से सरस्वती भवन पुस्तकालय की पाण्डुलिपि संख्या ९०६३७ को इसका आधार बनाया गया है। श्रीविद्याक्रम के परिनिष्ठित विद्वान् तथा साधक श्री सीतारामशास्त्री कविराज एवं डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी ने ग्रन्थवैशिष्ट्य और विषयवस्तु का प्रतिपादन कर, इसमें चार चाँद लगा दिये हैं।

पुस्तक उपलब्ध होते ही उसके अध्ययन में मैं खो गया। इसके वाचन क्रम में सदैव मुझे एक अज्ञात अनिर्वच आनन्द की अनुभूति होती रही। इसकी आध्यात्मिक उपासना के आवर्त्तों में गोता खाने लगा। इसकी पहली शर्त है इस याग को सम्पन्न करने का अधिकार

केवल दीक्षितों को ही है। यह एक एकान्तपूजा है। इसका सम्पादन भक्ति और श्रद्धा से ही संभाव्य है। कोई भी तान्त्रिक यज्ञ एकान्त और निर्भय स्थान पर ही किया जाता है। सर्वप्रथम विघ्नेश्वर और गुरुपूजन के बाद स्वस्तिवाचन, आभ्युदयिक श्राद्ध, मातृकापूजा, सङ्कल्प, आचार्यादिवरण, पूजास्थल में वेदीनिर्माण, मण्डपसज्जा, ध्वजस्थापना, मण्डलपूजन, तिरस्करणीपूजन, सर्वतोभद्रमण्डल-पूजन, यजमान का मण्डलप्रवेश, संविदयाचना, पात्रासादनार्थ पात्रस्थापन की विधि, सुवासिनी पूजा, मण्डप से बाहर संस्कार, मण्डप विधान हेतु विधि, अग्निविधि, छागबलि, यन्त्रराजस्थापन, द्वारपूजादि, मात्रप्रतिष्ठा, संविदभिमन्त्रण, आवरण पूजा, पूजाङ्ग होम, पात्रग्रहण, यागसमापन, बलिपूजा, सुवासिनीपूजा, पूर्णाहुति, प्रायश्चित्ताहुति, अग्न्युत्तरकर्म, दिग्पाल, तिरस्कृति, भैरव, क्षेत्रपाल प्रभृति के लिए बलि प्रदान, सामयिकों के पात्रदान, तत्त्वशोधन, देवीविसर्जन और शान्तिस्तव-पठन, फिर, ऋत्विक्-पूजन, दक्षिणा-दान, अभिषेक प्रभृति कर्मों का कठिन विधान, इसी तरह रहोयोग का रहस्यपूर्ण विधान, फिर तान्त्रिक अनुष्ठान में वैदिक आथर्वण मंत्रों में दोनों के ऐक्य का प्रतिपादन देखकर मन घबड़ा गया। लगा कि इसका हिन्दी रूपान्तर करना मेरे वश की बात नहीं है। फिर भीतर से एक सशक्त प्रेरणा शङ्कराचार्य के शब्दों में उभड़कर फूट पड़ी— ''**जनः को जानीते जननि, जपनीयं जपविधौ**''। अन्तर्मन ने कहा—तान्त्रिक साधना की विधि पुस्तक में कहाँ मिलेगी? यह तो गुरु द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। क्योंकि, अनाचार बढ़ने के भय से गुरुओं ने किसी भी साधना की विधि को कहीं भी प्रकट नहीं होने दिया है। इस सन्दर्भ में भगवान् शिव ने पार्वती से कहा है—''**गोपनीयं प्रयत्नेन स्व योनिरिव पार्वति!**'' अतः यह मानकर चलना पड़ा है कि साधनाविधि के क्रियात्मक स्वरूप का प्रतिपादन गुरु कृपा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पर, इस कार्य के सम्पादन में मेरी कठिनाई का अन्त यहीं नहीं था। अब हमारे सामने तन्त्रशास्त्रीय पारिभाषिक या सांकेतित शब्दों (Technical words) की व्याख्या करना। यह मेरे लिए दुरूह कर्म था। मेरे पास न कोई तन्त्रकोष था और न कोई मार्गदर्शक सुयोग्य तान्त्रिक गुरु। व्याख्यासापेक्ष तकनीक शब्दों की भरमार, देखकर एक बार फिर जी घबड़ा गया। पुनः मन को संयत कर, इस अनुष्ठान में लग गया। इस हिन्दी रूपान्तर के क्रम में मुझे कुछ ऐसे तकनीक शब्दों से भेंट हुई है, जिन्हें विना छेड़-छाड़ किये, उन्हें, उसी रूप में प्रयुक्त कर, आगे निकल गया हूँ। रूपान्तर के स्वरूप निर्धारण की चिन्ता छोड़कर जन-सामान्य तक इसे पहुँचाने के हित की दृष्टि से ही मुझे ऐसा करना पड़ा है।

संसार की संरचना के सन्दर्भ में विभिन्न भाषाओं और धर्मों के नये-पुराने साहित्यों में अनेक तरह की चर्चाएँ उपलब्ध हैं। प्रत्येक धारा के अनुचिन्तकों ने अपने अपने सिद्धान्तों की सम्पुष्टि में बहुविध युक्तियाँ दी हैं। मेरी दृष्टि में प्रत्येक विचार, सन्दर्भगत प्रत्येक अनुचिन्तन एक विशिष्ट दृष्टिकोण और परिगृहीत सत्य के ऊपर ही प्रतिष्ठित है। 'त्रिपुरार्णवतन्त्र' में भारतीय प्रस्थान के अन्तर्गत शाक्त सम्प्रदाय की उपासना और साधना के सम्बन्ध में एक विशिष्ट अनुभूति को अभिव्यक्ति दी गई है।

रहोयोग नामक उन्नीसवें तरङ्ग में पूर्वोक्त अतिगोप्य एकान्त पूजनादि में प्रयोज्य आथर्वण मन्त्रों का समावेश तथा उस समय करणीय विधि का निर्देश किया है। इसके अन्तिम तरङ्ग में त्रिपुरार्णव में प्रोक्त श्रीसूक्त द्वारा श्रीचक्र के अर्चन की विधि के बारे में भी वर्णन आया है। इस में श्रीसूक्त '**हिरण्यवर्णा**' आदि मन्त्र से '**पुरुषानहम्**' तक पन्द्रह ऋचाओं को भी त्रिपुरा को प्रीति देने वाली बतलाया गया है। यह श्रीविद्या का सूक्त होने से ही **श्रीसूक्त** कहलाता है और श्रीविद्या ही त्रिपुरा है। क्योंकि, संसार की संरचना और व्यक्तिगत देह की संरचना एक जैसी है। तांत्रिकों के मत में श्रीचक्र का उदय, संसार की संरचना और आत्मा का देही रूप में प्रकट होना एक जैसी बात है।

शाक्त मत से समस्त सृष्टि के मूल में जो अखण्ड सत्ता है, वह यदि एक ओर संसार संरचना का उपादान कारण है तो दूसरी ओर वही उसका निमित्तस्वरूप भी है। यह न तो कहीं घटता है और न बढ़ता ही है। यह तो अचल, अडिग, अनन्त, अनादि, चिन्मय एवं स्वयंप्रभ है। शाक्तों के मत में शिव-शक्ति की यही अद्वैतावस्था है। त्रिपुरार्णव के रहोयोग में इसी स्वरूप का अनुचिन्तन है।

सौभाग्यभास्कर में त्रिपुरा स्वरूप निर्धारण के सन्दर्भ में कहा है—

नाड़ीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्ना पिङ्गला इड़ा।
मनोबुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्॥
तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरा मते।

यह त्रिपुरा शिव के रूप में उदासीन है निष्क्रिय और निरपेक्ष द्रष्टा है और शक्ति रूप में वही त्रिपुरा भावी संसार की संरचना का उपादान कारण है। शिव शक्ति अभिन्न होने पर भी शिव तटस्थ और शक्ति संकोच-प्रसार शील है।

'त्रिपुरार्णव तन्त्र' में शाक्तों ने सांसारिक सत्त्व के सहारे बहुत ही कौशलपूर्वक परमतत्त्व को समझाने की चेष्टा की है। शाक्तों का कहना है कि जिसे लोग व्यवहारमुख से शिव कहते हैं, वह भी यथार्थ दृष्टि से शक्ति का ही एक पृष्ठ है, क्योंकि, जो वास्तव में शिव है, उन्हें भी शक्ति के अभाव में किसी भी प्रकार से शिव नहीं कहा जा सकता है, यह वर्णनातीत है। जागतिक जड़ में इसी शक्ति के दो विरुद्ध रूपों का खेल विद्यमान है। ये दोनों शक्तियाँ किसी भी स्थिति में समरस एवं अद्वयभाव से अविभक्तरूप से विद्यमान है। तथा अपर स्थिति में यही विषम भाव में परस्पर एक-दूसरे पर क्रिया करती रहती है।

इसी शक्ति का दैहिक विश्लेषण त्रिपुरार्णव में दर्शनीय है। इसके अनुसार सुषुम्ना के ऊर्ध्व भाग में अधोमुख श्वेत सहस्रदल कमल अवस्थित है वहाँ ही गुरु का स्थान कहा गया है। ठीक सुषुम्ना के नीचे रक्तवर्णी सहस्रदल कमल का स्थान निर्दिष्ट किया गया है। वह कुल नाम से भी ख्यात है। इसे ही कर्शिका में कुलकुण्ड भी कहा जाता है। इसी में अत्यन्त तेजस्वी कुण्डलिनी शक्ति की उपस्थिति चिह्नित की गई है। इससे ऊपर ऊर्ध्व कमल में पूर्णचन्द्र जैसी कान्ति वाले गुरु को अवस्थित बतलाया गया है। इन दोनों को क्रमशः 'अ' तथा 'ह' रूप मानकर भावना की जाती है। मूलाधार चतुर्दल पद्म के नीचे विष्णुव नामक

लाल कर्शावाला षड्दल कमल है। वहीं से आज्ञाचक्र तक इस कुण्डलिनी की गति का विधान है।

कहने का तात्पर्य यह है कि त्रिपुरा का मन्दिरात्मक यह श्रीचक्र कुण्डलिनी-जागरण या षट्चक्रभेदन की प्रक्रिया एक ओर समष्टि या महासमष्टि रूप संसार की संरचना है तो दूसरी ओर व्यष्टि रूप मानव देह है। ये दोनों ही अभिन्न हैं। वह विश्वरूपिणी पराशक्ति की इच्छात्मक अवस्था है। पराशक्ति विश्वरूप होने पर भी चक्ररूप में व्यष्टि स्वरूप है। इसकी उपासना ही त्रिपुरार्णव का रहस्य है।

कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीविद्यासम्प्रदाय के अर्चाविधान में श्रीचक्र सर्वस्वभूत है। इसी के आधार पर सारी बाह्य औंर आन्तरिक उपासना की जाती है। श्रीचक्र की अधिष्ठात्री भगवती ललिता महात्रिपुरसुन्दरी हैं। इनकी उपासना के विषयों का विस्तृत विवेचन त्रिपुरार्णव में वर्णित हैं। किन्तु, तन्त्रराज, योगिनीहृदय, परशुरामकल्पसूत्रादि त्रैपुर सिद्धान्त के ग्रन्थों का अनुसरण करते हुए भी यह ग्रन्थ उनमें वर्णित विषयों को भी संगृहीत कर लेता है। न केवल इतना ही, प्रत्युत इन ग्रन्थों में जो विषय सूत्ररूप में वर्णित हैं, उनका यहाँ विशद रूप से प्रख्यापन भी है।

तन्त्र-ग्रन्थों की यह परिपाटी दीखती है कि वे यदि किसी एक विषय की सूचना देते हैं तो उन विषयों की पूर्णता का ज्ञान किसी अन्य तन्त्र-मन्त्र के ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। यही कारण है कि कादि मत के विषय को स्पष्ट करते हुए श्रीविद्यार्णव ग्रन्थकार ने कहा है—

कादिशक्तिमते तन्त्रं तन्त्रराजं सुदुर्लभम्।
मातृकार्णवसंज्ञं तु त्रिपुरार्णवसंज्ञकम्॥
योगिनीहृदयं चैव ख्यातं ग्रन्थचतुष्टयम्॥ इति। (९८-९९)

अब प्रश्न है ये तन्त्र और मन्त्र हैं क्या? दरअसल ये तन्त्र और मन्त्र दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन्हें युगमरूप या जुड़वाँ कह सकते हैं। वस्तुत: तन्त्र एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा बाह्य तन्त्रों से निकलती साँसों को अवरुद्ध कर उसे नियन्त्रित किया जाता है। योगशास्त्र के अनुसार इच्छा-अनिच्छा रूप इस देह में जो दो नाड़ियाँ हैं, वही आगम और निगम हैं। अनिच्छारूप नाड़ी पर जब कोई व्यक्ति अधिकार प्राप्त कर लेता है तो उस स्थिति को 'योग' कहा जाता है और इसी इच्छा और अनिच्छा के सम्मिलित स्वरूप को, उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया के ऐच्छिक सम्पादन का नाम 'तन्त्र' है।

मन्त्र के माध्यम से जप, साधना और उपासना के माध्यम से अपने इष्ट का साक्षात्कार अथवा उनसे तादात्म्य सम्बन्ध जोड़ना मन्त्र-योग कहलाता है। वस्तुत: आज भी इस देश में तन्त्रविदों, सच्चे साधकों, रहस्यविद्या के ज्ञाताओं, सिद्धपुरुषों, महात्माओं का अभाव नहीं है। किन्तु, देशकाल और परिस्थिति के प्रभाव के कारण लोग इस तत्त्व को सही रूप में जान पाने में असमर्थ हैं।

'त्रिपुरार्णव' तन्त्र के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है—शक्ति आहरण किये विना पूर्णता में प्रवेश करने की धृष्टता किसी भी साधक को नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसी स्थिति में अपने अस्तित्वबोध का संरक्षण कठिन है। महाशक्ति की कृपा से ही ऐसा कुछ नहीं होता है। क्योंकि, माँ की स्नेहमयी गोद में बैठकर ही पूर्णता में आरोहण करने से आत्मलोप की कोई आशङ्का शेष नहीं रह जाती। यही कारण है; इस ग्रन्थ में या किसी अन्य धार्मिक या आध्यात्मिक कृत्यों में मातृका उपासना की इतनी महत्ता है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकर्त्ता ने आणव उपाय, शाक्त उपाय और शाम्भव उपाय में इसी गूढ़रहस्य को प्रकट किया है। इस दृष्टि से त्रिपुरार्णव तन्त्र शक्ति स्पर्धा का एक अनमोल रत्न है।

इसका हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित करने के कारण चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के अध्यक्ष माननीय श्रीनवनीतदास जी गुप्त महोदय शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

डॉ. जगदीश चन्द्र मिश्र
श्री सरस्वती-सदन
प्रोफेसर्स कॉलोनी, बेगूसराय

त्रिपुरार्णवतन्त्र में प्रतिपादित विषय

करुणासागर भगवान् शिव से भगवती पार्वती ने त्रिपुरा के अनेक तन्त्रों में अत्यद्भुत '**त्रिपुरार्णवतन्त्र**' के श्रवण की प्रार्थना की, तब ईश्वर शिव ने कहा—

''हे देवी, मैं त्रिपुरार्णव तुम्हें सुनाता हूँ, तुम सुनो। पहले यह तन्त्र सदाशिव ने महात्मा भैरव को सुनाया था; किन्तु जब कालपर्याय से त्रैपुर तन्त्रों का उच्छेद हो गया, तब भैरव को सदाशिव ने पुनः इस त्रिपुरार्णव का उपदेश किया था। यह ग्रन्थ त्रिपुरा-सम्बन्धी उपासना-विधियों का समुद्र है। ग्रन्थ-संख्या की दृष्टि से यह लक्षगुणित है। यह नित्य, नैमित्तिक और काम्य प्रयोगों की अनेक विधियों से समन्वित है। विस्तार होते हुए भी संक्षिप्त कथन से पूर्ण होने के कारण यह अनेकविध उपासना-कर्म और विविध उपपत्तियों से युक्त अतिश्रेष्ठ शाक्त विज्ञान है। यह तन्त्रग्रन्थ अत्यन्त विस्तृत है, अतः उसे पूर्णरूप से नहीं कहा जा सकता। हाँ, तुम त्रिपुरा के नानाविधानों में जो सुनना चाहती हो तो उस के विषय में पूछो, मैं तुम्हें संक्षेप में वह सब बतलाता हूँ।''

इस प्रासङ्गिक संवाद के पश्चात् देवी ने सर्वप्रथम '**त्रिपुरा-दीक्षा**' के बारे में जिज्ञासा की और शिव ने क्रमशः दीक्षा की महत्ता, गुरु की योग्यता, स्त्रीगुरु की विशेषता एवं दीक्षा की विधि का वर्णन किया। दीक्षा के लिये मुहूर्त्त, दीक्षा के पूर्वकर्त्तव्यकर्म-निर्देश, जिनमें पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, कलशस्थापन आदि की विधियों का उल्लेख किया। इन क्रियाओं में उपयोगी विधि-दर्शन के साथ ही आवश्यक वैदिक मन्त्रों के प्रतीक भी बतलाये गये हैं। आचार्यवरण, श्रीयन्त्र-लेखन, कलशस्थापन, प्रधानपूजा और हवन की विधि भी विस्तार से समझाई गयी, जिसमें छोटी-बड़ी सभी क्रियाओं का क्रमिक निर्देश किया गया है।

पीठ-पूजा में कामेश्वर तथा कामेश्वरी के संश्लिष्ट स्वरूप के ध्यान से आरम्भ कर वैदिक और तान्त्रिक दोनों ही प्रकार से हवन-विधि निर्दिष्ट है। इसके पश्चात् दीक्षा का विधान है, जिसमें शिष्य के लिये दन्तधावन और अधिवासन प्रोक्त है। दूसरे दिन प्रातःकृत्य के पश्चात् न्यास, चक्रराजार्चन, हवन एवं सुवासिनीपूजनोत्तर शिष्य का अभिषेचन और मन्त्रोपदेश, मुद्रा-कथन, शाक्त-सम्प्रदाय-सिद्धान्त-कथन के बाद शिष्य द्वारा ब्रह्मादि विप्रों की पूजा, गुरुपूजा का विधान बतलाया है।

इतना हो जाने पर पञ्चदशी एवं पात्रतानुसार षोडशी मन्त्र का उपदेश करने को कहा गया है। यहीं पूर्णाभिषेक भी किया जाए। तब महापादुका, ऊर्ध्वाम्नाय तथा अनुत्तराम्नाय के मन्त्रादि के उपदेश की चर्चा की है। पूर्णाभिषेक की महिमा असामान्य है। स्वयं शिष्य के लिए गुरु की कृतकृत्यता पूर्णाभिषेक से सम्पन्न होती है। इस प्रसङ्ग में पूर्णाभिषेक-कर्म का विधान भी पूर्ववत् विस्तार से वर्णित है। अभिषेच्य शिष्य में किये जाने वाले न्यास, षडध्वशोधन, कलादीक्षा, दृग्दीक्षा, वेधदीक्षा, पादुकोपदेश और महाषोडशी-मन्त्रोपदेश,

मुद्राज्ञापन तथा तत्त्वशुद्धि की प्रक्रियाएँ बतलाकर शिष्य के तन्त्रोक्त पद्धत्यनुसार नामकरण का विधान वर्णित है।

भगवती ने पुन: प्रश्न किया कि 'अतिश्रद्धावान् होते हुए भी देवमूढ नित्य-रोगियों की दीक्षा कैसे हो?' तब उसके उत्तर में भगवान् शिव ने कहा कि—''मूढ़, व्यापार-व्यस्त, स्त्रियों तथा आतुरजनों के लिए उनकी योग्यता का ज्ञान करके मुख्य मन्त्रों का उपदेश किया जाए। अथवा गुरुनाम, षोडशाक्षरी, हृल्लेखा और षोडशीबीज दिये जाएँ। स्त्री, रोगी आदि जो जितना कर सकें, उनको उपदेश करना चाहिए। स्त्रियों के लिये कोई नियम नहीं है, वे तो सभी गुरुरूप ही हैं। केवल मुख्यमंत्रोपदिष्ट होने से ही वे गुरुरूप हो जाती हैं। यहाँ तक कि यदि स्त्रियों को एक मन्त्र मिल जाए, तो शेष मन्त्रज्ञान के लिये उन्हें पुस्तक ही दे दें। पुरुषों को ऐसा अधिकार नहीं है। स्त्री तो स्वयं परदेवता है''।

प्रारम्भ में बाला और पञ्चदशी की दीक्षा के अनन्तर ही षोडशी-मन्त्र ग्रहण करना चाहिए। इन मन्त्रों के प्राप्त हो जाने पर कुछ समय इनकी उपासना करनी चाहिए, तदनन्तर पूर्ण दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

इसके पश्चात् पूर्णदीक्षा का विधान भी यहाँ वर्णित है, जिसमें बाला, पञ्चदशी, गुरुत्रय, गणपति, बाला के अङ्ग-मन्त्रिणी, दण्डिनी, नित्याएँ, तिरस्करिणी, सौभाग्यविद्या का उपदेश होता है। **षोडशी और पादुकामन्त्र** यदि विना दीक्षाक्रम के लिए जाँय तो लेनेवाला पापभागी होता है। विना विधान के देनेवाला गुरु भी दोष का भागी होता है। यह षोडशी विद्या शूद्र को कभी नहीं देनी चाहिए।

इस प्रकार २११ पद्यों में '**दीक्षाविधि**' नामक **प्रथम तरङ्ग** पूर्ण होता है।

इसके अनन्तर **द्वितीय तरङ्ग** में देवी ने 'दीक्षाविधि' के पश्चात् प्रात:काल से साधक को क्या-क्या करना चाहिए?' यह प्रश्न किया है, जिसके उत्तर में भगवान् ईश्वर ने कहा है कि—प्रात: ऊष:काल में उठकर साधक को गुरुस्मरण करना चाहिए, श्रीगुरु का स्थान सहस्रदल में है। चन्द्रमा के समान उनका वर्ण है। उनका ध्यान करके सुषुम्ना के नीचे लाल वर्ण के सहस्रदल कमल में त्रिपुरा पराशक्ति का स्मरण करे। तदनन्तर सार्धत्रिवलया कुण्डलिनी का प्रबोधन कर कुम्भक से षट्चक्रभेदनपूर्वक परशिवरूप गुरु में प्रविष्ट का ध्यान कर उससे स्रवित सूर्या-धाराओं से स्वयं के आप्लुत होने की भावना करे। इसके पश्चात् संघट्टमुद्रा का न्यास करके मानसिक रूप से गुरुपादुका-मन्त्र का स्मरण करे, जिसमें गुरुनाम भी संयुक्त हो।

जप, पूजा, तर्पण आदि में दीक्षानाम का उपयोग होना चाहिए और अन्यत्र व्यावहारिक नाम का व्यहार करे। यदि पादुका-मन्त्र प्राप्त नहीं हुआ हो, तो अपने गुरुत्रय का स्मरण करे। यहीं मानसिक गुरुपूजा तथा पञ्चमुद्रा दिखाने का विधान भी है। इस प्रसङ्ग में मुद्राओं के लक्षण भी निर्दिष्ट हैं। 'श्रीनाथ-स्तोत्र' सात पद्यों में वर्णित है। यह प्रात:स्मरण का विधान है।

तदनन्तर वैदिक एवं तान्त्रिक स्नान की मुद्रा, मन्त्र और यन्त्र-लेखन आदि का निर्देश, अङ्ग-प्रोञ्छन, आचमन और वस्त्रधारण, सङ्कल्प, सन्ध्या, प्राणायाम, सङ्कल्प न्यास और पूजा की विधि सूचित है। जल में श्रीयन्त्र की भावना करके उसी की पूजा यहाँ करनी चाहिए। अघमर्षणादि स्नानाङ्ग कर्म और तर्पण भी यहाँ करणीय है। प्रसङ्गवश मध्याह्न और सायङ्काल के 'त्रिपुरादेवी' के ध्यान भी दिये हैं। अर्घ्यदान, गायत्रीजप, मूलमन्त्रजपपूर्वक सन्ध्याविधि का संकेत भी किया है।

श्रीविद्या-साधकों के लिये जो पारायणक्रम वर्णित है, उसमें नामपारायण, घटिकापारायण नवधा अथवा षष्टिधा करने का सूचन करके 'अजपाजप' का विधान दिया है। अन्त में उपर्युक्त कर्मों के फल बतलाकर **'सन्ध्याविधि'** नामक यह **द्वितीय तरङ्ग** पूर्ण होता है।

तृतीय तरङ्ग के प्रारम्भ में भगवती द्वारा सन्ध्या के पश्चात् किये जाने वाले कर्म की जिज्ञासा करने पर महेश्वर ने **'पूजामन्दिर-प्रवेश'** की विधि बतलाई है, जिसमें द्वारपूजा, मण्डलेश, मण्डल और इनकी पूजा और तर्पण करके महालक्ष्मी तथा सरस्वती की पूजा, द्वार के ऊर्ध्वभाग में गणपति और क्षेत्रपाल, दोनों पार्श्वभागों में गङ्गा, यमुना, धात्री, विधात्री, शङ्ख, पद्मनिधि, देहली में अस्त्रदेवी, ब्राह्मी आदि मातृकाएँ तथा असिताङ्ग आदि [illegible]रवों की पूजा करने के निर्देश हैं। इसी प्रकार अविघ्न आदि द्वारों की पूजा उन उन स्थानों [illegible] करनी चाहिए।

तदनन्तर मार्तण्डभैरव को अर्घ्य देकर आसन का विधान दिया है। आसनों के विविध प्रकार भी दर्शित है, तथा निषिद्ध आसनों के बारे में भी उपयोगी विचार उपस्थापित है। भूतोत्सारणपूर्वक भूमि-प्रार्थना और पूजन करके आसन पर बैठकर दिग्बन्धन, भूशुद्धि और भूतशुद्धि का विधान विस्तार से दिया है। आत्म-प्राण-प्रतिष्ठा-विधि, मातृकान्यास-विधि, व्यापक अन्तर्मातृकान्यासविधि एवं वशिन्यादिन्यास वर्णित हैं।

न्यास-प्रकरण में षोडशी और पञ्चदशी मन्त्रों के ऋष्यादिन्यास, कराङ्गन्यास और उनके लिये मन्त्रखण्डों का सूचन है। इस मूलमन्त्रन्यास के पश्चात् चरणन्यास और षोडशी और पञ्चदशी के ध्यान, लघुषोढान्यास, जिसमें गणेश, ग्रह, नक्षत्रादि न्यासों के नाम और न्यास-स्थलादि वर्णित हैं, वे दिये हैं। यहीं तृतीय तरङ्ग पूर्ण है। इसका नाम **'भूशूद्ध्यादिविधि'** दिया है।

चतुर्थ तरङ्ग में न्यासान्तर क्रिया की जिज्ञासा करने पर महेश्वर ने कहा है कि न्यासविधान सम्पन्न कर लेने पर साधक को जप करना चाहिए तथा उसके पश्चात् पूजा करनी चाहिए। पूजा यन्त्र में ही होनी चाहिए, यही पुण्यपक्ष है, अतः यन्त्र के निर्माण का यहाँ पूरा विधान दिया है। यन्त्र में ४३ त्रिकोण, २४ सन्धियाँ, १८ मर्म, समबिन्दु-त्रिकोणाग्रत्व का विधान उक्त है और यन्त्र बनाने की आधारवस्तुएँ भी दी है। यन्त्र न मिलने पर पीठ की परिकल्पना का उपदेश किया है। शिवनामक शालिग्राम में पूजा का विशिष्ट फल बतलाया है और नर्मदोद्भव लिङ्ग पर अथवा प्रतिमा में पूजन का विधान भी सुझाया

है। दोषपूर्ण यन्त्रों के लक्षण करके उनकी अपूज्यता व्यक्त की है तथा देवतामूर्ति एवं स्थिरचक्र-स्थापना की महत्ता प्रतिपादित करके उनके दर्शन, स्पर्शन, पूजन आदि के फलों का उल्लेख भी यहाँ विस्तार से किया गया है। इसी प्रसंग में यन्त्र की स्थापना-विधि भी बतायी गयी है, जिसमें प्राणप्रतिष्ठा के सभी अङ्गों का निर्देश हुआ है। चर-श्रीचक्र में पीठ-संस्कार नहीं होता, तथा स्थिर-श्रीचक्र में उद्वासन नहीं होता। कारण-विशेष से दूषित होने पर श्रीयन्त्र का पुन:स्थापन, खण्डित हो जाने पर उपवास एवं विसर्जन, चोर द्वारा अपहृत होने पर अनशन, अमेध्यादि स्पर्श-दोष निवारण के लिये प्रतिवत्सर महाभिषेक तथा उसका विधान दिया गया है।

महाभिषेक में संस्कृत पञ्चगव्य तथा गन्धाष्टक के जल से स्नान कराये और कुशा के जल से १०८ मूलमन्त्र द्वारा उस यन्त्र का प्रोक्षण करे। तदनन्तर यन्त्र का स्पर्श करते हुए मूलमन्त्र, तत्त्वमन्त्र और मातृका से न्यास करे। इसके अनन्तर सिन्दूर से अष्टदल कमल की रचना कर उस पर अक्षत चावल रखे और दीक्षा में जिस प्रकार कलश रखे जाते हैं, उसी प्रकार रखे। वहाँ इष्टदेवी की पूजा करे तथा एक हजार मूलमन्त्र का जप, आठ बार मालामन्त्र का जप, आठ बार श्रीसूक्त का पाठ, नित्यामन्त्र, मातृकामन्त्र और मूलमन्त्र से अभिषेक करे और रात्रि में विशेषपूजा करके सुवासिनी एवं ब्राह्मणों की पूजा करे। ऐसा करने से चर और स्थिर यन्त्र अथवा मूर्ति के सर्वदोषों की शान्ति होती है। ऐसा प्रतिवर्ष करना चाहिए।

महाभिषेक में मालामन्त्र और श्रीसूक्त का पाठ ६४ बार होना चाहिए, अथवा आठ बार। तदनन्तर हवन करे। यदि अशक्त हो तो ब्राह्मणों से करवाये। ऐसे एक अनुष्ठान से भी त्रिपुरादेवी प्रसन्न होती है। स्थावर यन्त्रादि पर महाभिषेक करने से वाजपेय का फल प्राप्त होता है और देवी त्रिपुरा का वहाँ स्थायी सान्निध्य होता है। ९० पद्यों में यह **'यन्त्रोद्धारादि'** नामक चौथा तरङ्ग पूर्ण है।

पाँचवें तरङ्ग में पूजा-विधि का वर्णन है। इसमें यन्त्रराज को पीठ पर कोमल तूलादि के आसन पर बिठाकर, पात्रासादनपूर्वक पीठ के बीच में स्थापित यन्त्र की पूजा का विधान कहा है। साधक को मुखशुद्धि करना आवश्यक है, क्योंकि मुख दुर्गन्ध से युक्त रहने पर देवता का शाप होता है। अत: ताम्बूल, पञ्चतिक्त अथवा इलायची आदि खाने का विधान दिया है।

पूजा में पीठपूजा प्रथम है, जिसमें मण्डूकादि आधारों की पूजा है। तदनन्तर पीठस्थल और वहाँ की विभिन्न वाटिकाओं मञ्चपाद देवताओं आदि की पूजाएँ निर्दिष्ट हैं। यह तरङ्ग 'पीठार्चन' की विधि को ३२ पद्यों में प्रस्तुत करता है। **'पीठपूजाविधि'** इस तरङ्ग का नाम है।

षष्ठ तरङ्ग के आरम्भ में महेश्वर ने कहा है कि पीठपूजा के पश्चात् देवता का आवाहन

करे और उनकी पूजा करे। पूजा तीन प्रकार की बतलाई है—१. परा, २. मिश्र और ३. अपरा। इन पूजाओं की विधि भगवती के पूछने पर विस्तार से बतलाई है।

साधक स्वयं को गन्धपुष्पादि से अलङ्कार कर स्व पात्र से परापूजा करे। तदनन्तर परापरा-पूजा (मिश्ररूप) करके बाहर अपरापूजा करे। इनमें संघट्टमुद्रा से मस्तक पर पादुकामन्त्रजप करते हुए स्वयं को शिवरूप होने की भावना क्षण भर करे। यह परापूजा है।

मिश्रपूजा दो प्रकार की है—१. स्थूल और २. सूक्ष्म। निमें स्थूल-पूजा मानस-पूजा है, जो गुरुगम्य है तथा सूक्ष्म-पूजा में जगन्माता और मन्त्र का सामरस्यपूर्वक आत्मचिन्तन होता है। ब्राह्मोपचाररूप बाह्यपूजा को अपरा-पूजा करते हैं। मानसपूजा को षडाधार, त्रिपीठ, भुवन अथवा अध्वक्रम में जानकर गुरुमार्गोपदेश से उसका जप में उपयोग करना चाहिए। अथवा बाह्यपूजा में अशक्त होने पर अन्तःपूजा करें। समर्थ रहने पर तो साङ्गपूजा ही विस्तारपूर्वक करनी चाहिए। मन्त्रपाठपूर्वक बाह्य-पूजा करने का अनन्तगुणित फल कहा गया है।

सूक्ष्म में सामरस्यरूप आत्मचिन्तन की विधि बतलाते हुए कहा गया है कि—वाच्यों के वाचक रूप का प्रतिभावन पहले होता है। और वाचक मातृकारूप है, जो त्रिखण्डा और त्रिकूटगा है। कूटत्रय स्थूलादि स्वात्मरूप है। बाह्य उपकरणों से की जाने वाल पूजा तृतीया नपरा है।

इस प्रकार उस मिश्रपूजा को करके व्यापक न्यास करे। कुण्डली उत्थानपूर्वक बिन्दु में पुष्पाञ्जलिसमर्पण, आवाहनादि ६ मुद्राओं द्वारा देवता के पधारने की विभावना, अङ्गन्यास, सकलीकरण, धेनुमुद्राप्रदर्शन तथा शंखजल की बिन्दुओं से मूलमन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करे। उसके बाद सावरणा देवी के हृदय का स्पर्श करते हुए १०८ मन्त्र जप करे। १३ मुद्राएँ दिखाये। विशेषार्घ्य से तर्पण करे। उपचारों से देवी की पूजा करे। ये उपचार १६ अथवा ६४ हों। इतना कहकर उनकी विधि बतलाई है। यन्त्र का उच्चालन अभिषेक के अनन्तर ही किया जाए। ऐसा न करने से देवी कुपित हो जाती है। श्रीसूक्त से अभिषेक करना भगवती को अतिप्रिय है; क्योंकि यह परावाचक है। यह चतुःषष्ट्युपचार अथवा षोडशोपचार-पूजा उत्तम भावना से करनी चाहिए। यहाँ **'आवाहनाद्युपचारकथन'** नामक छठा तरङ्ग पूर्ण है।

सप्तम तरङ्ग का विषय आवरणार्चन से सम्बद्ध है। इसमें मूलदेवी का त्रिधायतन है। सव्य और दक्षिण हस्त का प्रयोग पुष्प और अक्षत के लिये निर्दिष्ट है। तत्पश्चात् नित्याओं की पूजा, गुरुमण्डल, अष्टकोण के पश्चिम और त्रिकोण के पूर्वभाग से चतुरस्त्र के महाक्षेत्र में इसकी पूजा होती है। भूपुर में अणिमादि, ब्राह्म्यादि तथा मुद्राओं की पश्चिम से चारों ओर पूजा करके, वायव्यादि कोणों में पार्ष्णि, राक्षस, मध्य में हरि और शिव कोण में तथा पुनः मध्य में इस क्रम से पूजा-तर्पण करे। यह सर्वाशापरिपूरक चक्र की पूजा है। पश्चिमादि दल से कामाकर्षिण्यादि सर्वसंक्षोभण चक्र में, पूर्वादिक्रम से अनङ्गकुसुमादि और क्रम से

तत्स्थानीय परिवार देवताओं की अर्चा करे। अन्त में तुर्या समष्टिपूजा की जाये। पूजा के पश्चात् १०८ मन्त्र जप करे। शेष पूजाक्रम भी अन्य के समान ही हैं। यहाँ **'आवरणकथन'** नामक सातवाँ तरङ्ग पूर्ण हुआ है।

अष्टम तरङ्ग में 'आवरण-कथन' में अनुक्त अन्य विषयों के बारे में कहा गया है, जिसमें आवरण-पूजा के पश्चात् त्रिपञ्चिका, पञ्चदश नित्याओं की पूजा की विधि बतलाई है। यह त्रिकोण की तीनों रेखाओं में ५-५ के क्रम से पूजा होती है। यहीं पूज्य देवियों के स्वरूपों का भी कथन हुआ है। त्रिकोण के बाहर आग्नेयादि दिक्कोण, अग्रकोण और मध्य में षडङ्गदेवियोंकी पूजा की जाती है। तदनन्तर भूसदन की तीन रेखाओं की, पञ्च पञ्चिकाओं की तथा लघुषोढान्यास के देवताओं की अर्चना का सूचन है। लघुषोढान्यास के देवताओं की पूजा में श्रीयन्त्र के स्थानों का निर्देश करते हुए १६ दल में गणेशादि ५१, बिन्द्वादि नौ आवरणों में नवग्रह, तथा ३-३ नक्षत्र एक साथ २७, चतुर्दशार के दो-दो कोणों की सन्धि में डाकिन्यादि ७ योगिनियाँ, अष्टदल और उसकी चारों दिशाओं में १२ राशियाँ, अष्टदल से बाहर के वृत्त में ५० पीठों की पूजा करने का विधान बतलाया है।

इसके पश्चात् चतुर्द्वारों में तथा एक मध्य में आम्नाय और त्रिकोण के कोणों में एवं मध्य में क्रमशः कामेश्वरी, भगमालिनी, वज्रेश्वरी तथा तुर्या महात्रिपुर-सुन्दरी की पूजा का क्रम बतलाया है। इस प्रकार **'आवरण-ध्यान-कथन'** नामक **आठवाँ तरङ्ग** ३६ पद्यों में पूर्ण हुआ है।

नवम तरङ्ग में **'अर्घ्य-विधि'** का वर्णन करते हुए पात्रों की स्थापना-विधि बतलाई है, जिसमें १. हेतु, २. सामान्य तथा ३. विशेषार्घ्य पात्रों का विवरण दिया है। इनके अतिरिक्त जल-कलश का भी विधान है। पात्रों के लिये प्रयोज्य विशेष धातु और वस्तु के साथ ही उनके आकार-प्रकार के सम्बन्ध में भी विस्तार से समझाया है। पात्रों के नीचे रखने की त्रिपदियाँ कैसी हो? शङ्ख का स्वरूप कैसा हो? पात्रों के ढक्कन भी हो, इत्यादि बातें बतलाकर, यह कहा गया है कि इनके विधिवत् निर्माण एवं प्रयोग से उत्तम फल मिलता है, जबकि दोषपूर्ण प्रयोग से पुण्य नष्ट होते हैं।

यहीं अनुकल्प (प्रतिनिधि द्रव्य) से पूजा करने की विधि बतलाई है, जिसमें सामान्यार्घ्यपात्र एवं विशेषार्घ्यपात्र ऐसे दो पात्र स्थापित होते हैं। एक पात्र से पूजा करना निषिद्ध है। आत्मयोग में अंगलोप-जनित कोई दोष नहीं लगता। अतः आत्मयोगी एक पात्र का प्रयोग कर सकते हैं। जलपात्र ताम्र का, नैवेद्यपात्र कांस्य का और वस्तिपात्र ताम्र का हो। पात्रों की स्थापना में मण्डल-निर्माण, आधारस्थापन, पात्रस्थापन, जलादिपूरण कलशादि-पूजन आदि सभी विधि भी यहाँ निर्दिष्ट है।

तदनन्तर हेतुपात्रधरा **सुवासिनी की पूजा** का विधान है। यही सुवासिनी के स्वरूप का वर्णन भी है। हेतुपात्र-स्थापनानन्तर वहाँ पथिकापूजन, दोषशोधन, पुष्प द्वारा उद्धृत बिन्दु से तर्पण तथा शापशोधन की विधि दर्शित है। हेतुपात्र में मातृकाकार त्रिकोण की

भावनापूर्वक उससे बाहर चतुरस्र, त्रिकोण, षट्कोण तथा अष्टदल का ध्यान करने के लिये कहा गया है। पात्र में पञ्चरत्न, मिथुनत्रय, पञ्च-भूत की पूजा, शक्तित्रय, पीठत्र, तथा कामेश्वरीत्रय की पूजा, षट्कोण में अङ्ग-देवीपूजा, अष्टदला में भैरवपूजा तथा अन्य देवियों की पूजा करके मालामन्त्र एवं श्रीसूक्तपाठ, १०८ मूलमन्त्रजप, सुधापूरण आदि विधिवत् सम्पादित करने का निर्देश है।

यहा '**अर्घ्यविधि**' नामक **नौवाँ तरङ्ग** ४० पद्यों में पूर्ण हुआ है।

दशम तरङ्ग में कुलद्रव्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। साथ ही अनुकल्प और उसके भेदों का भी निरूपण किया है। यथा—

कुलद्रव्य पाँच प्रकार का होता है। उसी को म-पञ्चक भी कहते हैं। ये पाँच मकार त्रिपुरा की प्रीति को बढ़ाने वाले हैं। कुलपथ में इसके गुह्यनाम भी हैं। इनके द्वारा की जाने वाली पूजा शिवत्व प्राप्त कराने वाली है। १. सदाशिव, २. ईश्वर, ३. रुद्र, ४. विष्णु और ५. ब्रह्मा इन्हीं पाँच के ये प्रतीक हैं। इसीलिये 'पञ्च-म-मय' यज्ञ सर्वोत्तमोत्तम है।

इसके पश्चात् सुधा के प्रकार, उनके गुण, गुणानुसार सेवनयोग्य वर्ण, प्रत्येक 'म' के निर्माण की विधि तथा दूतीयाग-विधि-पूर्वक पञ्चमद्रव्य के विशेषार्घ्य में निक्षेप का कथन आ। पञ्चम-विधि की महत्ता एवं फल भी यहां वर्णित हैं। यह याग अधिकारी को ही रना चाहिए, अन्यथा उसका समूल नाश हो जाता है। ब्राह्मण के लिए इसके पान का र्वथा निषेध है।

इतना कहकर अनुकल्प से पूजा करने के लिये निर्देश है। अनुकल्प-निर्माण की कतिपय विधियां भी बतलाई है तथा उसमें होने वाले विधि-निषेधों का भी कथन हुआ है। कौन सा द्रव्य कब पर्युषित होता है? किससे कहाँ अर्चन होता है? उनके संस्कार कैसे किये जाते हैं? तथा उनमें विकृति कैसे आ जाती है? यह बतलाकर पवित्र द्रव्य से अर्चन का विधान है।

तदनन्तर विशेषार्घ्य ग्रहण की विधि बतलाई है और अन्त में इसकी महिमा का वर्णन करते हुए आचार्यपूजादि का कथन किया है। यह '**कुलद्रव्यादि-कथन**' नामक **दसवाँ तरङ्ग** ६५ पद्यों में पूर्ण है।

एकादश तरङ्ग में अर्घ्यविधि में प्रोक्त अर्चना के मन्त्रों के बारे में कथन करने की प्रार्थना को सनुकर वृषध्वज शिव ने मन्त्रकथन किया है। इनमें धूम्रार्च्यादि अग्निकला, तपिन्यादि सूर्यकला, छागगायत्री, पशूद्बोधन, सद्योजातादि पाँच मन्त्र, 'त्र्यम्बक' तथा 'तद्विष्णोः' इत्यादि मन्त्रों का वर्णन हुआ है। इनके पश्चात् सोलह सोमकलाएँ, वासुदेव, अमृतेशी-मन्त्र, पथिका, शापविमोचन, पञ्चरत्न तथा मिथुनत्रितय-मन्त्रों का निदर्शन है। तदनन्तर शक्तिचतुष्टय, तत्त्वचतुष्टय, पीठचतुष्टय, ब्राह्मयादिसहित भैरवाष्टक (अष्टपत्रों में पूज्य), मण्डलत्रय, ब्रह्मकला, विष्णुकला, रुद्रकला, ईश्वरकला, सदाशिवकला तथा इनसे

सम्बद्ध वैदिक-मन्त्रों का कथन किया गया है। तदनन्तर '**हेतु-संस्तुति**' के मन्त्रों के कथन से यह **ग्यारहवाँ तरङ्ग** पूर्ण हुआ है।

बारहवें तरङ्ग में उपचार-सहित साङ्गोपाङ्ग पूजा की क्रिया का वर्णन है, जिसमें ताम्बूलान्त उपचार-पूजा करके आवरणपूजा, पञ्चोपचार, नैवेद्य, आपोशन, प्राणादिमुद्रा-प्रदर्शन, प्रार्थना और कामकला-ध्यान का विधान वर्णित है। तदनन्तर अग्नि-साधनपूर्वक होम की विधि का निर्देश है। होम के पश्चात् बलिपूजा का विधान है, जिसमें बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल, गणपति, तिरस्करिणी, वाराही, सवभूत, मन्त्रिणी, उच्छिष्ट श्यामला तथा भैरव के लिये बलिपूजा वर्णित है। इस प्रसङ्ग में प्रयोज्य मन्त्र भी यहाँ सूचित है। बलिपात्र विसर्जन की विधि और अन्तर्यजनपूर्वक पात्रस्थ जल का अभिमन्त्रण करके उस जल से अभिषेचन कर शान्तिस्तव-पाठ का निर्देश किया है। यहीं **बारहवाँ तरङ्ग** पूर्ण है।

त्रयोदश तरङ्ग में क्रमशः बलिमन्त्र, अर्घ्यपात्रादि का विसर्जन तथा पूजा-समापन विधि का वर्णन है। तदनुसार भैरव, योगिनी, गणपति, तिरस्करणी आदि के मन्त्रोद्धार देकर आरार्त्तिक, गुरु-पूजन, विशेषार्घ्यसमर्पण, शक्तिपूजा, सुवासिनीपूजा, सामयिकपूजा, पुष्पाञ्जलिप्रदान, कामकलाध्यान, जप, गुरुदेवतार्पण, शङ्खजल द्वारा प्रोक्षण, षोडशमुद्रादर्शन, मूलमन्त्र-जप तथा उद्वासन की विधि का वर्णन किया है। इस प्रकार '**पूजोत्तरविधि**' नामक यह **तेरहवाँ तरङ्ग** पूर्ण है।

चतुर्दश तरङ्ग में स्वात्मीकार-विधि, कौलिकों के धर्म तथा मण्डल के विधान का प्रतिपादन है। इसमें सर्वप्रथम 'मण्डल-प्रवेश' और वहाँ कुलद्रव्यसेवन के नियम प्रदर्शित हैं। सामयिक और स्त्रियों के मण्डल में बैठने, वहाँ बैठकर पात्र-ग्रहण, गुरु तथा ज्येष्ठजनों की पूजा, पात्र-प्रदान-प्रकार, ग्रहण-प्रकार, गुरु-तर्पण, शक्तिशेष और गुरुशेष स्वीकार, पात्रस्थद्रव्यस्वीकरण-विधि, दक्षिणादिसहित आचार्य को पात्र-समर्पण, पात्र-ग्रहण सम्बन्धी अन्य विधि-निषेध-सूचन आदि का यहाँ विस्तार से विचार किया गया है। यहीं दिव्य, वीर और पशुभाव से तीन प्रकार के पान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि उपर्युक्त तीनों भावों में कब, किसे स्वस्ववर्णानुसार, पात्र स्वीकार करना चाहिए।

कौलिकों के चार भेद—१. उत्तम, २. मध्यम, ३. अधम और ४. अधमाधम बतलाये गये हैं तथा उनके लक्षण भी यहाँ निर्दिष्ट है। पान करने के पश्चात् होने वाली स्थिति को ध्यान में रखकर भी यहाँ उनकी जीवन्मुक्तता का उल्लेख किया है। इसके अनन्तर कौलिकसम्बन्धी मण्डलीय धर्मों का भी निर्देश हुआ है, जिसमें रक्षा के लिये वमन, देवता में भक्ति, परनिन्दात्याग, मन्त्रमुद्रा तथा आत्मनाम का शिष्य के अतिरिक्त अन्यत्र कथन-निषेध, सुवासिनियों के समूह को देखकर प्रणाम करना, पशुभाव में स्थित व्यक्तियों के द्वारा कुलपुस्तक का तथा पशुशासन का स्पर्शाभाव, कुलशास्त्रचिन्तन, सुवासिनियों का महत्त्व, प्रातःकाल से ही उपासना में तत्परता एवं करणीय विधान सूचित है।

दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् दीक्षित को सदा उपासना में लगे रहना चाहिए और कदापि

मृत्यु की कामना नहीं करना चाहिए। यदि दीक्षित आत्मसन्त्याग की इच्छा, मोक्ष की भावना से प्रयागादि में भी करता है, तो उसे सद्गति नहीं मिलती। अत: उपासना को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

'गुरुवचन, सत् शास्त्रों में विश्वास तथा इष्टदेव में भक्ति' ये सर्वोत्तम शिवप्रोक्त धर्म है। यह सुख और सिद्धि का दाता है। जितेन्द्रिय के लिये यह सुलभ है। जो ऊर्ध्वरेखा, सर्वत्यागी, विरक्तजनों में स्मरणमात्र से ही क्षणभर में मोह उत्पन्न कर देते हैं, वे ही यहाँ सिद्धि के कारण कहे गये हैं। विभिन्न मादक पदार्थों के रहते हुए संयत-चित्त होना अतिकठिन है, अत: भयानक सिन्धुमार्ग को पार करके सन्मुक्ति-द्वीपनगरी तक पहुँचने के लिए दृढ़ श्रद्धा से युक्त पात्र-वाली भक्ति-नौका के बिना केवल सदाचाररूप अनुकूल वायु के झोंके के सहारे अन्यान्य उपायों से कैसे पार हो सकता है? अत: भक्ति और श्रद्धा से युक्त होकर कौलमार्ग में स्थित साधक ही उत्तम गति को प्राप्त करता है, यह कहा गया है। यह **'स्वात्मीकारादि-कथन'** नामक **चौदहवाँ तरङ्ग** पूर्ण हो गया। इस तरङ्ग में १०३ पद्य है।

पञ्चदश तरङ्ग में मुद्राओं के लक्षणों का आख्यान किया है। मुद्रा शब्द की व्युत्पत्ति—जिसके दिखाने से (देवता) हर्ष प्रदान करते हैं, वह ऐसी बतलाई है। देवता श्रीललिता-महात्रिपुरसुन्दरी के समक्ष दिखाई जानेवाली त्रयोदश मुद्राएँ हैं, जिनमें संक्षोभिण्यादि ९ तथा ४ आयुधमुद्राएँ पाशादि है। ऐसा कहकर प्रत्येक मुद्रा के निर्माण हेतु लक्षण-कथन हुआ है। इनके अतिरिक्त तीर्थाह्वान के लिये अङ्कुशमुद्रा, धेनुमुद्रा, तार्क्ष्यमुद्रा आदि पूजोपयोगी मुद्राओं के लक्षण बतलाये हैं। इनमें विष्णु के आयुधों की मुद्राएँ भी सम्मिलित हैं। यह **'मुद्राविवरण-नामक' पन्द्रहवाँ तरङ्ग** ४७ पद्यों में पूर्ण हुआ है।

सोलहवें तरङ्ग की अवतारणा में भगवती ने जिज्ञासा की है कि पूर्वोक्त विस्तृत पूजा करने में अशक्त साधकों के लिये संक्षिप्त पूजाविधि किस प्रकार हो सकती है? इसके उत्तर में महादेव ने गौण-पूजा का वर्णन किया है। इसमें कहा गया है कि गौण-पूजा में मुख्य द्रव्य से पूजा में संक्षेप नहीं किया जाता है, तथापि आपत्काल में एक से चार अथवा एक से छ: तक के आवरणों का अर्चन और मुख्यरूप से पञ्चिकाओं में भी पूजा होती है। आवरण-मन्त्रों से होम, सर्वभूतबलि तथा शान्तिस्तव का पाठ यथाशक्ति करे। यदि तर्पण न करे, तो 'अनुकल्पेन पूजयामि' कह कर अर्चन करे। यह अतिलघु-पूजा का क्रम है। यदि इसमें भी अशक्त हो, तो केवल एक सामान्यार्घ्य-पात्र स्थापित कर पीठशक्तियों की पूजा, यथाशक्ति आवाहन और विधानपूर्वक आगे बताये हुए क्रम से पूजा करे।

इसमें मूलदेवी की तीन बार, तिथिनित्या, षोडशी, महाषोडशी, गुरुत्रय, षडङ्ग, तथा त्रिकोण खण्ड-देवता—इन अठारह की पूजा और यथासम्भव अन्य देवताओं की पूजा का विधान है। पुष्प एवं अक्षत से मालामन्त्रद्वारा पूजा करने से भी पूजा का फल प्राप्त होता है। यदि पूजोपकरण प्राप्त न हो, तो मानस-पूजा करे अथवा मालामन्त्र का जप ही करे। यह सब

बाह्यपूजा में संलग्न साधक के लिये है। आन्तरोपासना तन्त्रों में बहुत प्रकार की कही गई है। उनमें से एक प्रकार यहाँ दर्शित है। यथा—

सुषुम्ना के ऊर्ध्वभाग में अधोमुख श्वेत सहस्रदल कमल है, वहाँ गुरु का स्थान है। सुषुम्ना के नीचे रक्तवर्णी सहस्रदल कमल है। उसे कुल कहते हैं। वहीं कर्णिका में कुलकुण्ड है, जिसमें कुण्डलिनी शक्ति अत्यन्त तेजस्वी विराजमान है। ऊर्ध्व कमल में पूर्णचन्द्र जैसी कान्तिवाले गुरु स्थित हैं। इन दोनों को 'अ' तथा 'ह' रूप मानकर भावना करे। मूलाधार चतुर्दलपद्म के नीचे विषुव नामक लाल वर्णवाला षड्दल कमल है। वहीं से आज्ञाचक्र तक उस कुण्डलिनी को क्रमशः ले जाय। गन्ध आदि पञ्चोपचार, ताम्बूल और प्रणतिपूर्वक यजन करते हुए उसका ध्यान करे। वहाँ शिव से युक्त सामरस्य को प्राप्त मानकर क्षणभर विश्राम करके उन दोनों का शून्यत्रमय-बिन्दु-विसर्गरूप स्मरण करे। वहाँ वे दोनों अ-ह-कार तत्त्वाद्यन्त कहे गये हैं। इनमें तत्त्वाद्य शून्य रूप है तथा अन्त्य विसर्गरूप है। तभी तेजस्त्रितय महारूप का हृदय से स्फुरण होता है। ऐसी भावना करने से मनुष्य संसार पर विजय पा लेता है। इस प्रकार की आन्तर उपासना करने वालों के लिये पूजाविधि की अपेक्षा नहीं है। इस प्रकार २० पद्यों में **'संक्षेप-पूजाविधि'** नामक **सोलहवाँ तरङ्ग** पूर्ण हुआ है।

सप्तदश तरङ्ग में **'नैमित्तिक-पूजा'** की विधि जानने की इच्छा से किये गये पार्वती के निवेदन का उत्तर देते हुए वृषध्वज शिव ने कहा है कि—

साधक को नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकार की पूजाएँ करनी चाहिए। नित्यपूजा में अशक्त हो, तो माला-मन्त्र का पाठ करे तथा नैमित्तिक-पूजा करे। यदि उसमें भी असमर्थ हो, तो गुरु आदि से पूजा करवाये। प्रतिमास में एक बार तो पूजा करवाये ही, यदि उनमें भी अशक्त हो, तो छह मास में एक बार करवाये। आलस्य अथवा लोभ से छः महीनों में भी एक बार पूजा नहीं करता, कराता है, तो वह पशु हो जाता है। साधक को उसका सङ्ग नहीं करना चाहिए।

इनके अतिरिक्त पर्व-पूजाएँ भी करणीय हैं। यथा पञ्चपर्व, युगादि दिन तथा पुण्याधिक दिन। इसी प्रकार कुल, कुलाकुल, अकुल तिथियां, कुलवार, कुलनक्षत्र आदि कुलपर्वों का कथन है। दोनों पक्षों की तिथियाँ एवं चैत्रादि मास देवीपर्व कहलाते हैं। उनमें स्नान, दान, जप, व्रत एवं पूजा का महत्त्व है तथा इनसे भगवती प्रसन्न होती हैं।

नित्यपूजा दिन में और नैमित्तिक पूजा रात्रि में करनी चाहिए, जब कि दिवापर्व का योग हो तो दिन में भी पूजा कर सकते हैं। प्राप्तकाल होने पर पहले नित्यपूजा और तदनन्तर नैमित्तिक पूजा करे। इसी बीच सन्ध्या आदि का समय आ जाए तो मध्य में अथवा एक अंग पूर्ण करके अथवा अन्त में उन्हें सम्पन्न करने का निर्देश दिया है। एक साथ एकाधिक पर्वों का योग आने पर उनका सङ्कल्प में उल्लेख करके मिश्रित पूजा करे। पूजा के अन्त में गुरु, शक्ति-सुवासिनी आदि की पूजा होती है।

इसके पश्चात् चैत्र-पूर्णिमा को दमनकार्पण का पूर्णविधान दिखाया है। यह पूजा चैत्र से ज्येष्ठमास तक भी होती है। श्रावण में पवित्रार्पण की विधि बतलाई है, जिसमें पवित्र-निर्माण एवं पूजाविधान भी प्रदत्त है। आश्विन-शुक्ल में नवरात्र-पूजा भी इसी प्रकार विस्तार से बतलाई है, जिसमें पूजा के साथ-साथ हवन की विधि भी दी है। कार्तिक में दीपपूजा होती है। जिसमें दीपनिर्माण, समर्पण-विधि आदि का उल्लेख हुआ है। यहाँ पूजा में १९८ दीपक समर्पण का मुख्य कल्प है, और अन्त में कहा गया है कि यदि यह सब नहीं कर सके, तो नवरात्र में अथवा नौ दिन के अनुष्ठान में दमनक औ पवित्र अर्पण कर ले। ऐसा करने से सभी पूजाओं का फल प्राप्त होता है।

यहाँ यह **सप्तदश तरङ्ग** ६१ पद्यों में पूर्ण हैं।

अष्टादश तरङ्ग 'मालामन्त्र का कथन' नामक है। यहाँ 'मालामन्त्र' से तात्पर्य 'खड्गमाल' है। प्रारम्भ में इसकी महिमा बतलाते हुए इसके श्रवण तथा जप का महान् फल उल्लिखित हुआ है। तदनन्तर इसके ऋषि, छन्द, देवता और ध्यान का निर्देश करके 'पद्मरागप्रतीकाशाम्' इत्यादि सार्धतुष्टय पद्यों से ध्यान विधि दी है। ध्यान के पश्चात् मानसपूजा करके मूल-पाठ दिया है।

यहाँ समग्रपाठ अनुष्टप्-पद्यों में ग्रथित है, जिसमें सभी नाम सम्बुद्ध्यन्त हैं। प्रयोग की दृष्टि से कहा गया है कि खड्गहस्त होकर इसका पाठ करने से वह खड्ग सिद्ध हो जाता है और युद्ध में उसका प्रयोग करने से साधक विष्णु को भी जीत लेता है। यह मालामन्त्र श्रीदेवी के आवरणों से युक्त तथा पूजाक्रममय है। अत: पूजाविधि में अशक्त साधक भी यदि इसका पाठ करता है, तो उसे पूजा का फल प्राप्त होता है।

तदनन्तर खड्गमाला में आये नाममन्त्रों के विभाग को समझाया है, जिसमें श्रीमन्त्रपूजा के आवरणों में विहित नाम, स्थान आदि की स्पष्टता है। इसमें कुल एक हजार इकत्तीस वर्ण है। खड्गमाला के—१. शुद्ध, २. नमोऽन्त, ३. स्वाहाऽन्त, ४. तर्पणान्त और ५. जयान्त, ऐसे पाँच प्रकार हैं। ये ही १. स्त्री, २. पुरुष और ३. मिथुनरूप से प्रयुक्त होने पर पन्द्रह प्रकार के होते हैं। उदाहरण के रूप में इनके एक-एक स्वरूपात्मक पद भी दिये हैं। जप में शुद्ध, पूजा में नमोऽन्त, होम में स्वाहान्त, तर्पण में तर्पणान्त और स्तोत्र में जयान्त पदों का प्रयोग होता है। यहाँ पाठ करने का फल भी निर्दिष्ट है। पुष्पों से अर्चन, होमद्रव्य से हवन, क्षीरादि से तर्पण तथा जप-स्तुति से अनन्त फल प्राप्त होते हैं। यह **अट्ठारहवाँ तरङ्ग** ७६ पद्यों में यहाँ पूर्ण होता है।

उन्नीसवें तरङ्ग का प्रतिपाद्य **'रहस्यार्चन'** है। भगवती की जिज्ञासा के पश्चात् भगवान् शिव ने कहा है कि इस अर्चन को मैंने पहले पूर्णरूप से गुप्त रखा था। तदनन्तर विस्मृत हो जाने से मैंने जानने की प्रार्थना की; परन्तु वह ज्ञात नहीं हुआ। तब १० हजार दिव्य वर्षों तक तप करने पर भगवान् पञ्चवक्त्र ने मुझसे पूछा कि हे वत्स! तुम इस तपस्या से क्या चाहते हो? तब मैंने त्रिपुरार्णव में कथित **रहोयाग की विधि** कहने के लिये प्रार्थना की। तब

भगवान् श्रीकण्ठ ने हँसकर उस याग की महत्ता और दुर्लभता का कथन करके विधि का वर्णन किया है।

इस याग को सम्पन्न करने का अधिकार दीक्षित को ही है। यह एकान्तपूजा भक्ति एवं श्रद्धा से करनी चाहिए। एकान्त और निर्भय स्थान में विघ्नेश्वर तथा गुरु-पूजन करके स्वस्तिवाचन, अभ्युदय-श्राद्ध, मातृकापूजा, सङ्कल्प, आचार्यादिवरण, पूजास्थल में वेदी निर्माण, मण्डपसज्जा, ध्वजस्थापना, मण्डलपूजन, तिरस्करणीपूजन, सर्वतोभद्रमण्डलपूजन, यजमान का मण्डपप्रवेश, संविद्याचना, पात्रासादनार्थ पात्र-स्थापन की विधि, सुवासिनीपूजा, मण्डप से बाहर संस्कार मण्डप-विधान, हेतुविधि, अग्निविधि, छागबलि, यन्त्रराजस्थापन, द्वारपूजादि, पात्रप्रतिष्ठा, संविदभिमन्त्रण, आवरणपूजा, पूजाङ्गहोम, पात्रग्रहण, यागसमापन, बलिपूजा, सुवासिनीपूजा, पूर्णाहुति, प्रायश्चित्ताहुति, अग्न्युत्तर कर्म, दिक्पाल, तिरस्कृति, भैरव, क्षेत्रपाल आदि के लिये बलि-प्रदान, सामयिकों को पात्रदान, तत्त्वशोधन, देवीविसर्जन और शान्तिस्तव-पठन का क्रम विस्तार से दिया है।

इसके पश्चात् ऋत्विग्-पूजन, दक्षिणादान, अभिषेचन और शेष कर्म की परिसमाप्ति करे।

इस रहोयाग के विधान को सम्पन्न करने वाले को जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका वर्णन भी विस्तार से करके अन्त में अङ्गलोपजनित दोष की शान्ति के लिये मण्डलपूजा तथा विभिन्न दोषों से होने वाली हानि का सूचन हुआ है। इस प्रकार २४३ पद्यों में '**रहोयाग-कथन**' नामक **उन्नीसवाँ तरङ्ग** पूर्ण हुआ है।

बीसवाँ तरङ्ग पूर्वोक्त अतिगोप्य एकान्त-पूजनादि में प्रयोज्य मन्त्रों को जानने की इच्छा और उन मन्त्रों के कथन पर आधारित है। इसमें रहोयाग में प्रयोज्य आथर्वण-मन्त्रों के बतलाते हुए उस समय करणीय विधि का भी निर्देश दिया है। (इन मन्त्रों के क्रम तथा विधियों की सूची पृथक् संगृहीत है। यथासम्भव वर्तमान में उपलब्ध संहिता के स्थलों का सूचन भी किया गया है।)

इस प्रकार के मन्त्र-कथन से वैदिक एवं तान्त्रिक उपासना में दोनों के ऐक्य का प्रतिपादन भी हो गया है।

मन्त्रों के मूलपाठ होने से यह **बीसवाँ तरङ्ग** कुछ विस्तृत हो गया है, इसमें संख्या का व्यवस्थापन नहीं है।

इक्कीसवें अन्तिम तरङ्ग में त्रिपुरार्णव में प्रोक्त श्रीसूक्त द्वारा श्रीचक्र के अर्चन की विधि के बारे में पूछने पर भैरव-शिव ने वर्णन किया है, जिसमें श्रीसूक्त '**हिरण्यवर्णां**' आदि मन्त्र से '**पुरुषानहम्**' तक पन्द्रह ऋचाओं को श्रीत्रिपुरा को प्रीति देनेवाली बतलाया है। यह श्रीविद्या का सूक्त होने से ही '**श्रीसूक्त**' कहलाता है और श्रीविद्या ही त्रिपुरा है, अतः यह त्रिपुरा-सूक्त भी है। इस सूक्त के द्वारा अर्चन में ६४ उपचारों की योजना एक-एक, चार-चार और तीन-तीन पाठों के क्रम से, १६ ऋचाओं के योग से कर लेनी चाहिए। इस

प्रकार की पूजा करने मात्र से सर्वपापों से छूट जाता है। और ऐसा अर्चन करने से कर्मलोप का दोष भी नहीं लगता। सौभाग्य-विद्या के अक्षरों से प्रतिमन्त्र को सम्पुटित करके जो हवन करता है, उसे भगवती ललिता वाञ्छितार्थ प्रदान करती है।

इसी प्रसङ्ग में हवनीय वस्तु-विशेष और उसके हवन से प्राप्य फलों का भी निर्देश किया है। यथा—

बिल्वपत्र से पापनाश तथा सौभाग्य-सम्पत्ति मिलती है। सुगन्धित पुष्पों से सौख्य, तिल से पापनाश, धान्य से धान्यबुद्धि, घृत से तेजोवृद्धि तथा अन्य वस्तुएँ जो आगम में प्रोक्त हैं, उनके हवन से वहाँ कहे अनुसार फल मिलता है। शतावृत्ति, सहस्रावृत्ति तथा दस हजार आवृत्ति से सर्वकामसिद्धि, सौख्य एवं देवताप्रीति प्राप्त होती है। लक्षावृत्ति से श्रीपुर में कल्पपर्यन्त वास होता है। अथवा श्रीसूक्त के द्वारा श्रीयन्त्र पर अभिषेक करने से भी उपर्युक्त फल प्राप्त होते हैं।

श्रीसूक्त की ऋचाओं को वाग्बीज से सम्पुटित करके पाठादि करने से वाक्पतित्व, श्रीबीजसम्पुट से देवतात्मता एवं कामबीज सम्पुट से जगद्वशीकरण होता है। पूजा करने में अशक्त होने पर इस सूक्त के तीन पाठ करने से पूजा-फल मिलता है। श्रीसूक्त के जप से शतगुण फल होता है और त्रिपुरा देवी सर्वार्थ को बढ़ाती है। त्रिपुरोपासक को इसका नित्य पाठ करना चाहिए, यह आवश्यक है। इसके समान अन्य कोई पाठ पुण्यरूप नहीं है। इसके जान लेने पर समस्त पाप, कच्चे मिट्टी के घड़े में पानी डालने से जैसे वह नष्ट हो जाता है, वैसे ही नष्ट हो जाते हैं। यह '**श्रीसूक्त-विधि**' नामक **इक्कीसवाँ तरङ्ग** १८ पद्यों में पूर्ण हुआ है।

सभी तरङ्गों का अधिक विस्तार देखने के लिये जिज्ञासु को ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिये।

●

त्रिपुरार्णवतन्त्र की

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठाङ्क
भूमिका	III-VII
त्रिपुरार्णवतन्त्र में प्रतिपादित विषय	VIII-XX
प्रथम तरङ्ग	**१-३२**
पार्वती देवी का भगवान् शङ्कर से त्रिपुरार्णव तन्त्र विषयक प्रश्न	१
भगवान शङ्कर का उत्तर	१
देवी का दीक्षाविधिविषयक प्रश्न	२
भगवान् शङ्कर का दीक्षा ग्रहण निरूपण	२-४
कलशस्थापन, वरुण आदि की पूजा	५
आचार्य, ब्रह्मा एवं सदस्यों का वरण, श्रीयन्त्र का आलेख	६
होमीय द्रव्यों की न्यासविधि	७
भगवती कामेश्वरी का ध्यान	९
अग्निस्थापनविधि	९
घृतपात्र, प्रणीतापात्र आदि की न्यासविधि	१२
मूलदेवी का हवनप्रकार	१४
गर्भाधानादिसंस्कारनिमित्तक हवन	१५
पञ्चदशी एवं षोडशी की दीक्षाप्राप्ति	२१
षडध्वविन्यासपूर्वक मन्त्रविन्यास	२२
पूर्णाभिषेक कथन, उसके भेद, उपसंहार	२२-२९
मूढ एवं नित्यरोगी श्रद्धालुओं के लिये अतिगहन दीक्षाहेतु देवी का महादेव से प्रश्न	२९
महादेव द्वारा देवी के प्रश्न की प्रशंसा और उत्तर	२९
दीक्षाक्रम के विना मन्त्रग्रहण पाप का हेतु	३२
अल्पपुण्य साधक के लिये महाषोडक्षरी विद्या की अनुपलब्धता	३२
द्वितीय तरङ्ग	**३३-४७**
देवी का दीक्षाप्राप्त्यनन्तर कर्त्तव्य कर्म विषयक प्रश्न	३३
महादेव द्वारा इस कर्त्तव्य कर्मविधि का सुन्दर निरूपण	३३
षट्चक्रभेदनपुरःसर पराशक्ति त्रिपुरा की संस्तुति	३४
श्रीनाथस्तोत्र का प्रवचन	३६
चतुर्विध प्राणायामविधि	३८

पराशक्ति के नानारूपों की परिचर्याविधि ४०

छह हजार जपसङ्ख्या की समर्पणविधि ४२

सन्ध्यादि प्रात:कृत्यों का निरूपण, उपसंहार ४६

तृतीय तरङ्ग ४८-६७

सन्ध्योपासनानन्तर कर्त्तव्य कर्मविषयक गौरी का प्रश्न ४८

महेश्वर द्वारा इस पश्चात् कृत्य का विस्तृत उपदेश ४८

श्रीमातृकादेवी के यन्त्र और ध्यान का विधिक्रम ५३

क च ट त आदि स्वरों का विन्यासक्रमनिर्देश ५४

ग्रहादि नाना देवताओं के ध्यान, न्यासादि का क्रम ५९

भूशुद्धि आदि की विधि का उपसंहार ६६

चतुर्थ तरङ्ग ६८-८१

न्यासानन्तर की जाने वाली क्रिया के विषय में देवी का प्रश्न ६८

महादेव का विशद उत्तर ६८

चक्रराज की स्थापना से मण्डलेश्वर पद की प्राप्ति ७४

अङ्गदेवताओं की पूजनविधि ७६

इस अनुष्ठान से वाजपेययज्ञ की फलप्राप्ति, उपसंहार ८१

पञ्चम तरङ्ग ८१-८६

त्रिपुरार्णव में प्रोक्त श्रेष्ठ पूजाविधिविषयक देवी का प्रश्न ८१

महादेव द्वारा उस पूजा विधि का विशद निरूपण ८१

पीठशक्ति पूजा, उपसंहार ८२-८५

षष्ठ तरङ्ग ८६-९४

देवी का त्रिपुरा की त्रिविध पूजा विधि से सम्बद्ध प्रश्न ८६

महादेव द्वारा त्रिविध पूजा का निरूपण ८६

त्रिपुरा की षोडशोपचार से पूजा ९०

त्रिपुरा की पञ्चोपचार से पूजा, उपसंहार ९१-९४

सप्तम तरङ्ग ९४-९९

उक्त पूजानन्तर कर्त्तव्यों के विषय में देवी का प्रश्न ९४

महादेव का इन कर्त्तव्यों के विषय में विशद उत्तर ९५-९७

मूलदेवी आदि के सम्मुख यज्ञविधान, उपसंहार ९८-९९

अष्टम तरङ्ग १००-१०४

तदनन्तर आवरण, ध्यान एवं पूजा के सन्दर्भ में देवी का प्रश्न १००

महादेव द्वारा तदनन्तर कर्त्तव्य कर्मों का विशद निरूपण १००

यथावत् पूजनादिकथन, उपसंहार १००-१०४

नवम तरङ्ग १०५-१११
अर्घ्यस्थापनविधि के सन्दर्भ में देवी का प्रश्न १०५
महादेव द्वारा अर्घ्यस्थापनविधि का विस्तृत उत्तर १०५
कामेश्वरीत्रय एवं मध्यतुर्यत्रयस्थापनविधि, उपसंहार ११०-१११
दशम तरङ्ग ११२-१२०
देवी का कुलद्रव्य तथा अनुकल्प विषयक प्रश्न ११२
महादेव का एतद्विषयक विशद उत्तर ११२
आचार्य द्वारा त्रिपुरा के लिये द्रव्यादिनिवेदनविधि १२०
एकादश तरङ्ग १२०-१२८
अर्घ्यविधि में प्रयुक्त मन्त्रों के विषय में देवी का प्रश्न १२१
महादेव द्वारा इस मन्त्रविधि का विशद निरूपण १२१
हेतुसंस्तुति के मन्त्र, उपसंहार १२८
द्वादश तरङ्ग १२९-१३३
भगवती त्रिपुरा की साङ्गोपाङ्ग पूजा के बाद की उत्तरक्रिया के विषय में प्रश्न १२९
महादेव द्वारा उत्तरपूजा का विशद वर्णन १२९
शान्तिस्तव का पाठ, उपसंहार १३१-१३३
त्रयोदश तरङ्ग १३३-१४३
पार्वती का बलिमन्त्र, अर्घ्यविसर्जन एवं पूजासमापनविषयक प्रश्न १३३
महादेव द्वारा बलिमन्त्रों का क्रमनिर्देश १३४
अर्घ्यविसर्जन १३६
पूजासमापन १४०
कामबीजन्यास से उपसंहार १४२
चतुर्दश तरंग १४३-१५७
पार्वती का स्वात्मीकारविधि, कौलिक धर्म एवं मण्डल की विधि से
सम्बद्ध प्रश्न १४३
महादेव द्वारा इन सभी प्रश्नों का क्रमशः निर्देश १४४
कौलिक धर्म १५२
मण्डलीय धर्म १५४
कौलमार्ग की उपासना से शुभगतिप्राप्ति १५६
पञ्चदश तरङ्ग १५७-१६३
गिरिजा का महादेव से मुद्राविषयक प्रश्न १५७
उत्तर में महादेव का मुद्रा के विषय में विस्तृत निरूपण १५७
मुद्राओं का विस्तृत विवरण १५७-१६३

षोडश तरङ्ग १६४-१६७
पूजा करने में असमर्थ पुरुषों के कर्त्तव्य के विषयमें गौरी का प्रश्न १६४
महादेव द्वारा उनके लिए गौरी पूजा का निर्देश १६४-१६६
सप्तदश तरङ्ग १६७-१७६
पार्वती द्वारा नैमित्तिकपूजाविषयक प्रश्न १६७
शङ्कर द्वारा तद्विषयक विस्तृत उत्तर १६७
सर्वपूजाफलोदय, नवरात्रपूजा, उपसंहार १७०-१७५
अष्टादश तरङ्ग १७५-१८५
पार्वती द्वारा मालामन्त्र के सन्दर्भ में प्रश्न १७६
शङ्कर द्वारा मालामन्त्रविषयक विस्तृत उत्तर १७६
जप के अन्त में होमद्रव्य, आहुति एवं उपसंहार १८२-१८५
एकोनविंश तरङ्ग १८६-२१८
रहस्यार्चन (रहोयाग) के विषय में पार्वती का प्रश्न १८६
शङ्कर ने इस प्रश्न के उत्तर में (रहोयाग) का वस्तृत उत्तर दिया १८८
मण्डलार्चा में साधक के कर्त्तव्य, पापविशुद्धि आदि २१८
विंश तरङ्ग २१८-२४२
रहोयाग में प्रयुक्त आथर्वणमन्त्रों के विषयमें पार्वती के प्रश्न २१८
शङ्कर द्वारा आथर्वणमन्त्रों की पाठविधि का निरूपण २१८
पूर्णाहुतित्रय, तत्फलनिर्देश, उपसंहार २४२
एकविंश तरङ्ग २४३-२४५
भगवती शैलजा द्वारा श्रीसूक्तपाठविधिविषयक प्रश्न २४३
भैरव द्वारा श्रीसूक्तपाठविधि निरूपण विधि का सविस्तर वर्णन २४३
उपसंहार २४५

परिशिष्टम्-१

१. श्रीविद्यार्णवे

	विषय	पृष्ठाङ्क
द्वितीयश्वास में—	दग्ध मन्त्र का प्रसङ्ग	२४६
	मन्त्र का प्रसङ्ग	२४६
	त्रस्त मन्त्र का प्रसङ्ग	२४६
	गर्जित मन्त्र का प्रसङ्ग	२४७
	मन्त्र का प्रसङ्ग	२४७
	असहमन्त्र प्रसङ्ग	२४७

	मन्त्रपुरश्चरण प्रसङ्ग	२४७
	छिन्नमन्त्र का प्रसङ्ग	२४८
	मन्त्र प्रसङ्ग	२४८
	कुण्ठित मन्त्र प्रसङ्ग	२४९
	रुष्टमन्त्र प्रसङ्ग	२४९
	अवमानित मन्त्र प्रसङ्ग	२४९
	मन्त्र प्रसङ्ग	२४९
द्वादश श्वास में—	द्वार पूजा प्रसङ्ग	२५०
चौदहवें श्वास में—	कामेश्वरी और नित्या के यज्ञ का प्रसङ्ग	२५०
	भगमालिनी और नित्या के यज्ञ का प्रसङ्ग	२५०
	नित्यक्लिन्ना और नित्या की पूजा का प्रसङ्ग	२५१
	भेरुण्डा नित्या मन्त्रोंद्धार प्रसङ्ग	२५१
	वह्निवासिनी नित्या पूजा का प्रसङ्ग	२५१
	व्रजेश्वरी नित्या यज्ञ का प्रसङ्ग	२५१
	शिवादूती नित्या के यज्ञ का प्रसङ्ग	२५२
	त्वरिता नित्या के यजन का प्रसङ्ग	२५२
	कुलसुन्दरी पूजा का प्रसङ्ग	२५२
	बाला और नित्यानित्या का अभेद प्रसङ्ग	२५२
	नील पताका की पूजा का प्रसङ्ग	२५२
	विजया और नित्या की पूजा का प्रसङ्ग	२५३
	सर्वमङ्गला की पूजा का प्रसङ्ग	२५३
	ज्वालामालिनी नित्यापूजा का प्रसङ्ग	२५३
	चित्रानित्या के यज्ञ का प्रसङ्ग	२५३
चौदहवें श्वास में—	कुरुकुल्ला की सपर्या का प्रसङ्ग	२५३
	वाराही की पूजा का प्रसङ्ग	२५४
पन्द्रहवें श्वास में—	त्रिपुरसुन्दरी स्तोत्र	२५४
	सन्ध्यावन्दन का प्रसङ्ग	२५५
	कालनित्या जप के प्रसङ्ग में	२५६
अट्ठारहवें श्वास में—	स्नानविशेष का प्रसङ्ग	२५७
पच्चीसवें श्वास में—	भुवनेश्वरी भैरवी का प्रसङ्ग	२५९
पैतीसवें श्वास में—	श्रीचक्र के क्रम का अभ्यर्चनप्रसङ्ग	२६०
२. सौभाग्य भास्कर में—		
	त्रिपुरा स्वरूप का वर्णन	२६०

३. पुरश्चर्यार्णव के द्वितीय तरङ्ग में—

दीक्षाफलनिर्णय में नक्षत्र फल का प्रसङ्ग २६०

४. सौन्दर्यलहरी, ५. रत्नावली,

६. परशुरामकल्पसूत्र की व्याख्या आदि टीकाओं के क्रम में—

टीकाकारों के विविध प्रसङ्ग २६१-२६९

आदिम प्रतिनिधि-प्रसङ्ग में २६९

●●

॥ श्रीः ॥

त्रिपुरार्णवतन्त्रम्

अथ प्रथमस्तरङ्गः

(दीक्षाविधिः)

देव्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ जगत्कारण शङ्कर ।
करुणाब्धे महादेव भक्तानां हितकाम्यया ॥ १ ॥
त्वया प्रोक्तानि तन्त्राणि नानाविधियुतानि वै ।
त्रिपुरायाः महादेव्या अपि तन्त्राण्यनेकशः ॥ २ ॥
तत्र प्रोक्तं त्वया नाथ तन्त्रं तु त्रिपुरार्णवम् ।
अत्यद्भुततरं चेति तन्ममाचक्ष्व वल्लभ ॥ ३ ॥

विमला व्याख्या

अनपेतामनवच्छिन्नाम् अनायत्तामनामयाम् ।
वन्दे तां त्रिपुरां त्रितयां साधकाभीष्टसिद्धिदाम् ॥

भगवती पार्वती ने पूछा—

एक बार भक्तों के हित की कामना से देवी पार्वती ने भगवान शिव से कहा—हे भगवन्! आप तो सभी धर्म के मर्म को जानते हैं, संसार के कारण स्वरूप हैं, सबके लिए कल्याणकारी हैं। करुणा के सागर हैं, देवाधिदेव महादेव हैं॥

आपने अनेक तन्त्रों की बहुविध व्याख्या प्रस्तुत की है। महादेवी त्रिपुरा के भी अनेकविध तन्त्र हैं॥

हे नाथ! उनमें त्रिपुरार्णव तन्त्र का भी व्याख्यान आपने किया है। हे स्वामी, अन्य तन्त्रों की अपेक्षा त्रिपुरार्णवतन्त्र अद्भुततर है। अतः कृपापूर्वक त्रिपुरार्णवतन्त्र के सम्बन्ध में मुझे बतलायें॥ १-३॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तन्त्रं तु त्रिपुरार्णवम् ।
पुरा सदाशिव-प्रोक्तं भैरवाय महात्मने ॥ ४ ॥

महादेव ने कहा—

सदाशिवप्रोक्त त्रिपुरार्णवतन्त्र : हे देवी, सुनो, मैं तुम्हें त्रिपुरार्णव सुनाता हूँ। पहले यह तन्त्र सदाशिव ने महात्मा भैरव को सुनाया था॥ ४॥

कालपर्यायतो देवि तन्त्राणि त्रैपुराणि तु ।

यदोच्छिन्नानि देवेशि तदा श्रीभैरवेण तु ॥ ५ ॥

किन्तु, कालक्रम से जब त्रैपुर तन्त्रों की जड़ उखड़ गई, तब हे देवेशि, फिर, सदाशिव ने भैरव को इस त्रिपुरार्णव का रहस्य बतलाया था ॥ ५ ॥

पृष्टः सदाशिवः प्राह त्रिपुरार्णवसंज्ञितम् ।
त्रिपुराविधिरत्नानामर्णवोऽयं महेश्वरि ॥ ६ ॥

महात्मा भैरव से पूछे जाने पर त्रिपुरार्णव तन्त्र के सन्दर्भ में सदाशिव ने कहा था कि यह ग्रन्थ त्रिपुरासम्बन्धी उपासनाविधियों का समुद्र है ॥ ६ ॥

ग्रन्थतो लक्षगुणितं नानाविधिसमन्वितम् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं बहुधा यत्र संस्थितम् ॥ ७ ॥

ग्रन्थ संख्या की दृष्टि से यह लाख गुना है। यह नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य प्रयोगों की अनेक विधियों से समन्वित है ॥ ७ ॥

विस्तरेणापि संक्षेपात् यत्र सर्वं स्फुटं स्थितम् ।
उपासनानि कर्माणि यत्र नानाविधानि वै ॥ ८ ॥

विस्तृत होते हुए भी संक्षिप्त कथन से भरपूर होने के कारण यह अनेक तरह के उपासना कर्म से भरा पड़ा है ॥ ८ ॥

विज्ञानं च महाश्रेष्ठं शाक्तं नानोपपत्तिकम् ।
तस्यातिविस्तृतत्वात्तु नेदानीं प्रब्रवीमि ते ॥ ९ ॥

यह ग्रन्थ अनेक सिद्धिप्रतिपादन से परिपूर्ण अतिश्रेष्ठ शाक्त विज्ञान है। यह ग्रंथ अति विस्तृत है। अतः इन्हें इस समय मैं पूर्णरूप से नहीं कह सकता ॥ ९ ॥

त्रैपुरेषु विधानेषु यद्यत्त्वं श्रोतुमिच्छसि ।
क्रमेण पृष्टस्तत् सर्वं संक्षेपात् कथयामि ते ॥ १० ॥

अतः त्रिपुरार्चन के अनेक विधानों में, हे देवि, तुम जो सुनना चाहती हो, बोलो, मैं संक्षेप में वह सब तुम्हें बतलाता हूँ ॥ १० ॥

देव्युवाच

त्रिपुराया महेशान दीक्षाविधिमनुत्तमम् ।
वद सारं समादाय त्रिपुरार्णवतो मम ॥ ११ ॥

भगवती पार्वती ने पूछा—

दीक्षाविधि : हे महादेव, त्रिपुरार्णव का सारभूत, त्रिपुरा का सर्वश्रेष्ठ दीक्षाविधान सर्वप्रथम मुझे समझाने की कृपा करे ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि त्रिपुरादीक्षणे विधिम् ।

बहुप्रकारं तद्देवि दृष्टं श्रीत्रिपुरार्णवे ॥ १२॥

महादेव ने कहा—

हे देवी, सुनो! त्रिपुरा की दीक्षाविधि मैं तुम्हें सुनाता हूँ। श्री त्रिपुरार्णव में मैंने इन्हें अनेक रूपों में देखा है॥ १२॥

तस्मात् सारं समादाय संक्षेपात् प्रब्रवीमि ते ।
समीहन् पुरुषार्थं वै जनो दीक्षां समाश्रयेत् ॥ १३॥

उनका संक्षेप में सार ग्रहण कर मैं तुम्हारे सन्मुख रखता हूँ। पुरुषार्थ की चाह वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम **दीक्षाग्रहण** करनी चाहिए॥ १३॥

दीक्षैव मुक्तिसौधस्य सोपानं सुलभं प्रिये ।
सौधारोहो यथा नास्ति सोपानारोहणं विना ॥ १४॥

हे प्रिये! जैसे बहुमंजिलें भवन की ऊपरी मंजिल तक पहुँचने के लिए सीढ़ी का सहारा आवश्यक होता है, उसी तरह मुक्तिमहल के ऊपरी भवन में पहुँचने के लिए दीक्षारूपी सीढ़ी आवश्यक होती है॥ १४॥

तथा दीक्षां विना मोक्षो दुर्लभः शिवशासने ।
सांख्ये योगे पाञ्चरात्रे वैदिकेऽपि न सर्वतः ॥ १५॥

उसी तरह शिवशासन में दीक्षा के बिना मोक्ष को दुर्लभ कहा गया है। सांख्य योग एवं पाञ्चरात्र तथा वेद में भी दीक्षा का महत्त्व दुर्लभ ही है॥ १५॥

मुक्तिः कुतश्चिदेवेह पूर्णा मुक्तिरनाकुला ।
दीक्षां विना न शाक्तं हि ज्ञानं मुक्तिस्ततः कुतः ॥ १६॥

फिर, इस संसार में मुक्ति कहाँ से? क्योंकि पूर्णमुक्ति तो बिल्कुल ही उदासीन होती है। शाक्त मत में दीक्षा के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना मुक्ति कहाँ से?॥ १६॥

तदिच्छन् स्वात्मनो मुक्तिं दीक्षामेवाश्रयेद् गुरोः ।
गुरुर्गरीयान् विज्ञानी तन्त्रमार्गैकतत्परः ॥ १७॥

अपनी आत्मा की मुक्ति चाहने वाले को गुरु से दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। एकमात्र तन्त्रसाधना में अहर्निश तल्लीन, विज्ञानी गुरु ही अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं॥ १७॥

स्वांशान्नरान् समुद्धर्तुं शिव एव गुरुः स्वयम् ।
गुरुः सुलक्षणः शान्तः कामतर्षादिवर्जितः ॥ १८॥

संसार सागर से समुद्धर्त्ता प्राणियों के लिए एकमात्र स्वयं शिव ही गुरु हैं। फिर भी सांसारिक गुरु को कामपिपासावर्जित, शान्त एवं सुलक्षण होना चाहिए॥ १८॥

ज्ञात्वात्मानं परं यो वै पूर्णाहन्तां समास्थितः ।
सर्वलक्षणहीनोऽपि स गुरुः सर्वतोऽधिकः ॥ १९ ॥

जो परम आत्मज्ञानी हैं, पूर्णाहन्ता हैं, जिनकी बुद्धि हर स्थिति में समान भाव में स्थिर है; सर्वलक्षण हीन होने पर भी ऐसे गुरु सर्वाधिक श्रेष्ठ गुरु माने जाते हैं ॥ १९ ॥

श्रेष्ठं वर्णवयोज्ञानैर्गुरुमेवं परीक्षयेत् ।
स्त्रीभ्यः सर्वोत्तमा दीक्षा तत्र मातुः शतोत्तरा ॥ २० ॥

वर्ण, उम्र और ज्ञान में श्रेष्ठ गुरु की परीक्षा इसी तरह करनी चाहिए। शाक्तमत में दीक्षा के लिए स्त्री गुरु की अधिक महत्ता है। स्त्री-गुरुओं में भी अगर माता हो तो दीक्षा के लिए अन्य नारी गुरुओं की अपेक्षा शताधिक श्रेष्ठ मानी गई हैं ॥ २० ॥

वयसाऽपि कनीयस्यो नमस्कार्याः स्त्रियः सदा ।
योषिदल्पवयस्काऽपि गुरुत्वार्हा वरानने ॥ २१ ॥

शिव ने पार्वती से कहा—हे वरानने! उम्र में छोटी होने पर भी स्त्रियाँ प्रणम्य होती हैं। अल्पवयस्का नारी भी गुरुपद के योग्य मानी गई हैं ॥ २१ ॥

परिचर्य प्रोक्तगुरुं धनाद्यैस्तोष्य सर्वथा ।
दीक्षामासादयेदुक्ते शुभे काले स्थले तथा ॥ २२ ॥

ऊपर बतलाये गये लक्षणों से युक्त गुरु की पूर्ण सेवा-शुश्रूषा कर, धनादि से उन्हें सर्वथा संतुष्ट कर शुभ समय और शुभ स्थान में उनसे दीक्षा ग्रहण करे ॥ २२ ॥

स्नातः सुगन्धितैलाद्यैर्मान्यैरिष्टैश्च संवृतः ।
दीक्षादीनात्तु पूर्वेऽह्नि कृतनित्यक्रियः शुभः ॥ २३ ॥

स्नानोपरान्त, सुगन्धित तैलादि लगाकर, गण्य-मान्य, प्रतिष्ठित जनों के साथ, अपना नित्य कर्म सम्पन्न कर पूर्वाह्न के शुभ मुहूर्त्त में दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए ॥ २३ ॥

कुलदेवं गुरुं ज्येष्ठान् नमस्कृत्य यथावधि ।
देशकालोल्लेखपूर्वं संकल्प्य तु यथाविधि ॥ २४ ॥

नियत समय पर कुलदेवता, गुरु एवं श्रेष्ठजनों को प्रणाम कर, विधिपूर्वक देश और काल का उल्लेख करते हुए सर्वप्रथम संकल्प करे ॥ २४ ॥

पूजयित्वा विघ्नहरं पुण्याहं वाचयेत् ततः ।
श्राद्धमाभ्युदयं कुर्यात् तद्विधानं शृणु प्रिये ॥ २५ ॥

फिर श्रीगणेश की पूजा करे, इसके बाद पुण्याह वाचन करे, तत्पश्चात् आभ्युदयिक श्राद्ध करे। हे प्रिये! मैं इनका विधान बतलाता हूँ ॥ २५ ॥

स्वशाखोक्तं तान्त्रिकं वा कुर्यात्तत्र वरानने ।
प्रस्थतण्डुलकं न्यस्य पात्रे वै स्वस्तिकं लिखेत् ॥ २६ ॥

प्रस्थ (एक विशिष्ट माप को कहते हैं जो ३२ पलों के बराबर होता है) अर्थात् ३२ पल चावल को एक पात्र में रखकर अपनी शाखा के अनुसार अथवा तांत्रिक विधि से हे वरानने! **स्वस्तिक** बना ले॥ २६॥

तत्रोक्तवत्तु कलशं विन्यसेत् प्रणवं जपन्।
ह्रन्मन्त्रेणापूर्य जलैः पञ्चरत्नानि निक्षिपेत्॥ २७॥

पूर्वोक्त विधि से **कलश स्थापन** करना चाहिए। प्रणव अर्थात् 'ओम्' का जप करते हुए कलश स्थापित करे। फिर, उसे ह्रींकार मन्त्र पढ़ते हुए जल से भर दे। उसमें पञ्चरत्न डाल दे॥ २७॥

पल्लवैर्मुखमाच्छाद्य पूर्णपात्रं निधाय च।
तण्डुलेन समापूर्णं वरुणं तत्र पूजयेत्॥ २८॥

कलश के मुख को आम्र पल्लव से ढँक कर उसपर चावल से भरे पूर्णपात्र रखकर उसमें **वरुण की पूजा** करे॥ २८॥

आवाह्य विधिवत् पश्चादापोहिष्ठात्रयेण च।
हिरण्यवर्णा इत्याद्यैश्चतुर्भिरनुवाकतः॥ २९॥

उनका विधिवत् आवाहन कर पीछे 'आपोहिष्ठा मयो भुवः' इस मन्त्रत्रय का प्रयोग करे। फिर, 'हिरण्यवर्णा हरिणीं सुवर्णाम्' इत्यादि चार अनुवाकों से पूजन करे॥ २९॥

पवमानेति वै जप्त्वा चामृतेश्यादिपञ्चकम्।
अमृतं निर्विषं कृत्वा तत्तन्मुद्रां प्रदर्शयन्॥ ३०॥

'पवमानेति' मन्त्र का जपकर, **अमृतेशी प्रभृति पाँच की पूजा** कर अमृत को निर्विष बनाकर उनकी मुद्रायें प्रदर्शित करते हुए॥ ३०॥

आदाय किञ्चित् तोयममृतेश्यै समर्पयेत्।
नामतः प्रीयतां चोक्त्वा चतुरो ब्राह्मणान् यजेत्॥ ३१॥

थोड़ा जल हाथ में लेकर अमृतेशी को समर्पित करे। फिर उनका नामोच्चार करते हुए 'प्रीयताम्' यह कहकर **चार ब्राह्मणों की पूजा** करे॥ ३१॥

पुण्याहमस्त्विति प्रार्थ्य नत्वा तोयेशमुत्सृजेत्।
तत्तोयेनाखिलं प्रोक्ष्य गायत्रीमष्टधा जपेत्॥ ३२॥

'पुण्याह का पुण्य फल मुझे प्राप्त हो' यह प्रार्थना करते हुए वरुणदेव को प्रणाम कर जल का उत्सर्ग करे। उस जल से सबको जल मार्जन से पवित्र बनाकर, आठ बार गायत्री पढ़ें॥ ३२॥

ततस्तु विप्रत्रितयभोजनान्यूनसम्मितम्।
हिरण्यमुत्सृजेद् नान्दी मुखानां प्रीतये शिवे॥ ३३॥

हे शिवे ! इसके बाद तीन ब्राह्मणों को समान रूप से भोजन कराकर नान्दीमुख की प्रसन्नता के लिए सोने का उत्सर्ग करे ॥ ३३ ॥

इति स्वस्ति वाच्य नान्दीश्राद्धं कृत्वा यथाविधि ।
आचार्यादीनासनाद्यैः सम्पूज्य वृणुयात् ततः ॥ ३४ ॥

इस तरह 'स्वस्ति' वाचनोपरान्त यथाविधि नान्दीमुख श्राद्ध सम्पन्न कर, आचार्य प्रभृति को आसन प्रदान कर पूजा करे तत्पश्चात् वरण करे ॥ ३४ ॥

आचार्यमथ ब्रह्माणं सदस्यमपि वै क्रमात् ।
दक्षिणावस्त्रभूषादि समादायाग्रतः स्थितः ॥ ३५ ॥

फिर, क्रमशः आचार्य, **ब्रह्मा एवं सदस्यों का भी वरण** करे। दक्षिणा, वस्त्र और आभूषण उन्हें प्रदान कर सामने बैठ जाय ॥ ३५ ॥

प्रोक्त्वा तु वरणं दत्त्वा प्रणमेदेवमन्यतः ।
मण्डपं पूजयित्वाथ प्रविशेद् ब्राह्मणैः सह ॥ ३६ ॥

वरण वाक्य पढ़कर उन्हें वरण देकर दूसरी ओर प्रणाम करे। फिर, **मण्डप की पूजा** कर, ब्राह्मणों को साथ लेकर मण्डप में प्रवेश करे ॥ ३६ ॥

आचार्यो वास्तुपुरुषं क्षेत्रपालं च पूजयेत् ।
तत्र त्रिमेखलायुक्तवेद्यां श्रीयन्त्रमालिखेत् ॥ ३७ ॥

वहाँ आचार्य, वास्तुपुरुष और क्षेत्रपाल की पूजा करे। इसके बाद तीन मेखलाओं से युक्त वेदी पर **'श्रीयन्त्र' का आलेख** करे ॥ ३७ ॥

सिन्दूररजसा देवि मण्डयेत् सुविधानतः ।
वितान-कदलीस्तम्भ-तोरणादर्शकादिभिः ॥ ३८ ॥

सुन्दर विधानपूर्वक सिन्दूर की धूलि से उन्हें सजाकर, मण्डप को शामियाना, केले के थंभ, प्रवेशद्वार, दर्शकदीर्घा आदि से सजा दे ॥ ३८ ॥

दीपान् प्रज्वाल्य परितो धूपयेच्च सुधूपकैः ।
सिद्धार्थांस्तत्र सङ्कीर्य सप्तास्त्रपठितांस्ततः ॥ ३९ ॥

फिर चारों ओर दीप जला दे, सुगन्धित धूप जला दे। 'सिद्धार्थ' (सफेद सरसों) फैला कर बाद में 'सप्तास्त्र' का पाठ करे ॥ ३९ ॥

समूह्य तानीशकोणे यजेत् तत्रास्त्रदेवताम् ।
शालयोऽथ यवास्तद्वद् गोधूमा माषकास्तिलाः ॥ ४० ॥

ईशानकोण में यज्ञाग्नि जलाकर उसमें अस्त्र देवता का यज्ञ करे। इसके बाद धान, जौ, गेहूँ, उड़द और उसी तरह तिल ॥ ४० ॥

उक्तानि पञ्च धान्यानि पृथक् प्रस्थमितानि वै।
क्रमाद् यन्त्रोपरि न्यस्य कलशं तत्र वै न्यसेत् ॥ ४१ ॥

प्रस्थ अर्थात् ३२ पल परिमित पूर्वकथित पाँचों अन्नों को क्रमशः श्रीयन्त्र पर बिखेर कर उस पर **कलश स्थापन** करे ॥ ४१ ॥

कलशो द्रोणजलयुक् तदर्धः पाद एव वा।
त्रितन्तुवेष्टितः सम्यग् धूपितोऽथाप्यलङ्कृतः ॥ ४२ ॥

कलश में एक द्रोण अर्थात् ३२ सेर अथवा १६ सेर अथवा आठ सेर जल देना चाहिए। कलशे को तीन धागे से घेर दे तथा सुगन्धित धूप से उसे धूपित करे ॥ ४२ ॥

(विशेष—द्रोण : एक विशेष तोल का बट्टा, या तो एक आढक या चार आढक अथवा खारी का १/१६ भाग, या ३२ या चौसठ सेर रहस्यार्णव में द्रोण प्रमाण के सन्दर्भ में कहा गया है, यथा—

"गुञ्जाभिरष्टभिर्माषः कर्षस्तु दशमाषकः।
पलं कुडवकं प्रस्थाढक द्रोण एव च।"
चतुगुणोत्तरा ज्ञेयाः पलाद् द्रोणावर्धिक्रमात्।' इति।

श्रीविद्यार्णव में भी, उसके तेरहवें पटल में द्रोण को परिभाषित किया गया है। पूर्णाभिषेक के प्रसङ्ग में स्कन्दपुराण का भी वचन उपलब्ध है; यथा—

"पलद्वयं तु प्रसृतं कुडवं द्विगुणं मतम्। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थमाढकं तैश्चतुर्गुणैः।
चतुर्गुणो भवेद् द्रोणः कुम्भस्तद्छयतः स्मृतः। कुम्भैस्स्वैरष्टभिः खारी.......... ॥"
इति ॥)

कूर्चाधारे धान्यराशौ स्थापयेत् मूलमन्त्रतः।
पञ्चरत्नान्तरो वस्त्रयुगच्छन्नो मनोहरः ॥ ४३ ॥

मुट्ठीभर कुश की घास पर जहाँ पहले से पञ्चधान्य (धान, गेहूँ, जौ, उड़द और तिल) का ढेर हो, उस पर देवी का मूलमन्त्र पढ़कर कलश को रखकर उसमें पञ्चरत्न डालकर एक जोड़े नवीन एवं सुन्दर वस्त्र से ढँक दे ॥ ४३ ॥

(विशेष—यहाँ पञ्चरत्न कोश में कई तरह से परिगणित किये गये हैं। यथा—

(१) नीलकं वज्रकच्छेति पद्मरागश्च मौक्तिकम्।
प्रवालञ्चेति विज्ञेयं पञ्चरत्नं मनीषिभिः ॥

(२) सुवर्ण रजतं मुक्ता राजावर्त्तप्रवालकम्। रत्न पञ्चकमाख्यातम्................ ॥

(३) कनकं हीरकं नीलम् पद्मरागश्च मौक्तिकम्।
पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥")

ताम्रजो वा मृण्मयो वा तं क्वाथैस्तीर्थतोयजैः।
वनौषधिभवैः शुद्धैः पूरयेन्मातृकां पठन् ॥ ४४ ॥

ताम्बे या मिट्टी के कलश को तीर्थजल के क्वाथ से पवित्र कर वनौषधियों से पवित्र जल से मातृकामन्त्र पढ़ते हुए उसे भर दे॥ ४४॥

न्यसेन्मुखे पल्लवानि पञ्च दूर्वाङ्कुराणि च ।
पूर्णपात्रं मुखे दत्त्वा फलयुक्तं सुवर्णजाम् ॥ ४५ ॥

कलश के मुख में पल्लव डालें और उसमें कोमल दूब की टहनियाँ भी डाल दे पञ्च पल्लव पर पूर्णपात्र रख दे। पूर्णपात्र पर सोने के साथ फल रक्खे॥ ४५॥

प्रतिमां मूर्त्त्यनुगुणां न्यसेद् गन्धाद्यलङ्कृताम् ।
तत्र देवी समावाह्य पूजयेदुपचारकैः ॥ ४६ ॥

भगवती की मूर्ति के गुणानुरूप प्रतिमा का निर्माण कर, उसे चन्दन धूपादि से अलङ्कृत कर, उचित स्थान में स्थापित कर दे। फिर, उस प्रतिमा में भगवती का आवाहन कर अनेक उपचारों से पूजा करे॥ ४६॥

स्पृशन्नष्टोत्तरशतं प्रजपेन्मूलविद्यया ।
अङ्गविद्या अपि सकृत् ततः श्रीचक्रराजकम् ॥ ४७ ॥

थोड़ी अङ्गविद्या के साथ मूलविद्या का स्पर्श करते हुए १०८ मंत्र का जप करे। फिर श्रीचक्रराज को॥ ४७॥

पूजयेद् विधिना देवि आरत्यन्तं निवर्तयेत् ।
ततो होमं शिवे कुर्यात् तद्विधानं शृणु प्रिये ॥ ४८ ॥

विधिवत् पूजा करे अन्त में उनकी आरती उतारें। तत्पश्चात् हे शिवे! होम करना चाहिए। होम का विधान मैं बतलाता हूँ, आप सुनें॥ ४८॥

कुण्डं वा स्थण्डिलं वापि कुर्याच्छास्त्रोक्तवर्त्मना ।
प्रोक्ष्य मूलेन गन्धाद्यैरलङ्कृत्य च पूजयेत् ॥ ४९ ॥

होम का विधान : शास्त्रोक्त विधि से कुण्ड अथवा हवन वेदी बनाकर, कुशमूल से उसे पवित्र कर चन्दन एवं पुष्पमालादि से सुशोभित कर, पहले उसकी पूजा करे॥ ४९॥

तिस्रो रेखास्तु पूर्वान्ता दक्षिणात् पश्चिमादथ ।
उत्तरान्ताः कुशाद्यैस्तु कृत्वा तन्मध्यतो न्यसेत् ॥ ५० ॥

कुश की जड़ से पूर्वान्त तीन रेखायें पश्चिम से खीचें, उसी तरह दक्षिण से उत्तरान्त रेखा खीचें और उस कुश को बीच में रख दे॥ ५०॥

मूलेन प्रोक्षितं त्यक्त्वा चाग्निं मूलेन निक्षिपेत् ।
एतावदेव नित्यादौ विशेषस्त्वथ प्रोच्यते ॥ ५१ ॥

कुश के जड़भाग से जलसिंचन का काम छोड़कर, उसी भाग से कुष्ठ में अग्नि डाल दे। यह तो **नित्यक्रिया** है। विशेष बातें आगे कहते हैं॥ ५१॥

रेखासु विष्णुमीशं च तथेन्द्रं विधिमेव च।
यमं सोमं प्रपूज्याथ प्रोक्ष्य मूलकुशोदकैः ॥५२॥

इन रेखाओं पर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्र और यम की पूजा कर, कुशमूल से जलसिंचन कर उन्हें पवित्र बना दे॥५२॥

धेनुं तार्क्ष्यं प्रदर्श्याथ प्रोक्ष्यास्त्रेण कुशोदकैः।
कुशेन तत्र विलिखेत् त्रिकोणं भूपुरान्तरे ॥५३॥

धेनु एवं गरुड़ मुद्रा का प्रदर्शन कर, कुशजल से आसनों पर जलसिंचन से पवित्र कर भूपुर के भीतर कुश से त्रिकोण लिखें॥५३॥

पीठपूजां तत्र कृत्वा ध्यायेत् कामेश्वरौ हृदि।
जपाकुसुमसच्छायमङ्कुशं पाशमेव च ॥५४॥

वहाँ पीठपूजा समाप्त कर अपने हृदय में अड़हुल फूल की तरह रक्ताभ हाथ में अङ्कुश और पाश धारण किये **भगवती कामेश्वरी का ध्यान** करना चाहिए॥५४॥

पुण्ड्रेक्षुचापं पुष्पास्त्रं दधानं करपङ्कजैः।
रक्तवस्त्रमाल्यभूषायुतं त्रिनयनोज्ज्वलम् ॥५५॥

माथे पर शक्तिसम्प्रदायसूचक तिलक, करकमलों में इक्षुचाप और फूलों का बाण धारण किये, लाल वस्त्र, माला और अनेक सुन्दर आभूषणों से आभूषित, दिव्य-भव्य चमकीली तीन आँखों वाली॥५५॥

चन्द्रचूडं च कामेशीं संश्लिष्टं हृदि भावयेत्।
आवाह्य तत्र संपूज्य यथा शक्त्युपचारतः ॥५६॥

हृदय में भगवान शिव के साथ संयुक्त कामेश्वरी की भावना करे। वहाँ उनका आवाहन कर यथाशक्ति अनेक उपचारों से उनकी पूजा करे॥५६॥

दद्यात् कामेश्वरीकामेश्वराभ्यां समसाञ्जलिम्।
कामबीजादियोगेन प्राणानायम्य तेन च ॥५७॥

फिर अञ्जलिबद्ध होकर कामेश्वर महादेव के साथ भगवती कामेश्वरी को प्रणाम करे; फिर कामबीजादियोग से प्राणों को नियन्त्रित कर और उसी से॥५७॥

विन्यसेन्मूलविद्याया कामेशीं कामुकां स्मरेत्।
सम्पूज्य स्थापयेदग्निं तद्विधिं शृणु वच्मि ते ॥५८॥

मूलविद्या से उनका विन्यास अर्थात् समञ्जन करे और कामातुरा कामेशी का स्मरण करते हुए उनकी पूजा कर अग्नि की स्थापना करे। **अग्निस्थापन की विधि** मैं तुम्हें आगे बतलाता हूँ उसे सुनो॥५८॥

अरण्याद्युद्भवं वह्निमादायास्त्रेण शङ्करि।

त्यजेन्निर्ऋतिभागे तु क्रव्यादांशं फडुच्चरन् ॥ ५९ ॥

हे शिवे! अस्त्र से जंगली आग को उठाकर लायें। नैर्ऋत्य कोण में क्रव्याद अर्थात् हिंसक जन्तुओं के भाग को 'फट्' उच्चारण करते हुए रख दे ॥ ५९ ॥

एकमङ्गारकं पश्चात् समानेन पिधाय च ।
धेनुं प्रदर्श्य मूलेन सप्तधा त्वभिमन्त्रयेत् ॥ ६० ॥

पश्चात् एक प्रज्वलित अङ्गारे को समान रूप से ढँककर, धेनुमुद्रा प्रदर्शित कर, मूलमन्त्र से उसे सात बार अभिमन्त्रित करे ॥ ६० ॥

विवृत्य भ्रामयेत् त्रिर्वै तस्योपर्योमितीरयन् ।
ध्यायन् कामेशवीर्यं तु तस्या योनौ निधापयेत् ॥ ६१ ॥

चक्कर काटकर तीन बार 'ॐ' का उच्चारण करते हुए उसे उसपर घुमाये। फिर, कामेश महादेव के वीर्य का ध्यान करते हुए उसकी योनि में डाल दे ॥ ६१ ॥

दद्यादाचमनं ताभ्यां जठराग्निं नियोजयेत् ।
आवाहनक्रमेणैव आंसोहंविद्या सह ॥ ६२ ॥

उन दोनों को आचमन कराकर गर्भाशय की अग्नि का नियोजन करे। फिर, 'आंसोहं' विद्या के साथ आवाहन क्रम से ही ॥ ६२ ॥

वह्निचैतन्याय नम इत्येवमभिमन्त्रणात् ।
चैतन्यमग्नेः संयोज्य निक्षिपेदिन्धनादिकम् ॥ ६३ ॥

चैतन्य अर्थात् वह परम शक्ति जो सभी प्रकार की संवेदनाओं का स्रोत और सब प्राणियों का मूल तत्त्व समझा जाता है, वैसी अग्नि को 'नमः' इस तरह के विशेष मन्त्र को पढ़कर चैतन्य अग्नि का संयोजन कर हवनीय लकड़ियों को डाल दे ॥ ६३ ॥

कामबीजाद् वह्निमूर्तये नमः प्रपठन् शिवे ।
प्रज्वालयेत् चित्तमलं जपेत् तं समुपस्थितः ॥ ६४ ॥

हे शिवे! कामबीज से ''वह्निमूर्त्तये नमः'' पढ़ते हुए अग्नि को प्रज्वलित करे। उस अग्नि के सामने 'चित्तमलम्' इत्यादि मन्त्र का जप करे ॥ ६४ ॥

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥ ६५ ॥

जातवेदस और हुताशन नामक प्रज्वलित अग्नि को प्रणाम करे। ये अग्नि दिव्य सोने की तरह चमकीली और प्रज्वलित हैं। इनके मुख चारों ओर हैं ॥ ६५ ॥

उपस्थायेति मन्त्रेण प्रणम्योपविशेत्ततः ।
आग्नेयमनुना प्राणायामं कृत्वा ततः परम् ॥ ६६ ॥

उसके बाद 'उपस्थाय' इस मन्त्र से उस प्रज्वलित अग्नि को प्रणाम कर बैठ जाय। इसके बाद आग्नेय मन्त्र से ही प्राणायाम करे॥ ६६॥

ऋष्यादि विन्यसेत् तस्य ध्यायेत्तं तु समाहितः।
पद्मस्थं च वराभीतिपद्मशक्तिधरं शुचिम्॥ ६७॥

तत्पश्चात् ऋष्यादि का विन्यास कर एकनिष्ठ चित्त से उनका ध्यान करे। अत्यन्त पवित्र पद्म पर अवस्थित, चारों हाथों में क्रमशः वरदान, अभयदान, पद्म और शक्ति धारण किये का ध्यान करे॥ ६७॥

त्रिणेत्रमरुणं श्वेतवसनं हृदि संस्मरेत्।
चित्पिङ्गलेति विलिखेत् द्विर्हन दह वै पच॥ ६८॥

श्वेत वस्त्र पहने, लाल-लाल तीन आँखोंवाली भगवती कामेश्वरी का हृदय में ध्यान करे। दो साल तक कठोर तप कर इन्होंने यह पूर्णता प्राप्त की है। फिर, 'चित्पिङ्गल' मन्त्र का उस वेदी पर उल्लेख करे॥ ६८॥

(**चित्पिङ्गल मन्त्र का स्वरूप**—''ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञा ज्ञपय स्वाहा।'')

सर्वज्ञा ज्ञापयोक्त्वा च स्वाहा तारचतुर्मुखः।
वैश्वानरान्ते जातोक्त्वा वेदोक्त्वा च इहावह॥ ६९॥

'सर्वज्ञा ज्ञापय' (सब कुछ जानने वाली जानो) इसका उच्चारण कर भव्य चतुर्मुख 'स्वाहा' का ध्यान करे। फिर, 'वैश्वानरान्त' मन्त्र का उच्चारण करते हुए वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों ही विधि से हवन करे॥ ६९॥

(**वैश्वानर मन्त्र का स्वरूप**—''ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा॥'')

लोहिताक्ष सर्वकर्मा विलिख्य च णि साधय।
स्वाहाऽयं मन्त्र आग्नेयो भृगुस्तु ऋषिरीरितः॥ ७०॥

'लोहिताक्ष सर्वकर्मा' (लाल लाल आँखों वाले सब कर्म करनेवाले) लिखकर 'णि' का साधन करे, यह स्वाहा मन्त्र है। इस आग्नेय मन्त्र के भृगु ऋषि हैं॥ ७०॥

गायत्रीछन्द उद्दिष्टं रां रीमित्यादि विन्यसेत्।
पात्राण्यासादयेद् गौरि अग्नेरुत्तरभागतः॥ ७१॥

यहाँ गायत्री छन्द विशेष रूप से कहकर 'रां रीं' इत्यादि मन्त्र का विन्यास करे। फिर हे गौरि! अग्नि के उत्तर भाग में हवन में काम आनेवाले बरतन रक्खे॥ ७१॥

पश्चात् प्रागन्तकं तत्र कुशेषु स्रुक्स्रुवौ तथा।
आज्यपात्रं प्रणीतां च प्रोक्षणीं चरु भाण्डकम्॥ ७२॥

तत्पश्चात् प्रारम्भ से अन्त तक वहाँ कुशों पर स्रुक् (लकड़ी का बना एकप्रकार का चमचा जिसके द्वारा यज्ञाग्नि में घी की आहुति दी जाती है।) स्रुवा (प्रायः ढाक या खदिर का बना चमचा जिससे यज्ञ में आहुतियाँ दी जाती हैं), घी का बरतन, प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र एवं चरूभाण्ड को रक्खे॥ ७२॥

विशेष—आज्य— घृतं वा यदि वा तैलं पयो दधि च यावकम्।
संस्कारयोगादेतेषु आज्य शब्दोऽभिधीयते॥
(यज्ञपार्श्व परिशिष्ट)

स्रुक्— प्राणिप्रमाणवदना हंसान्त्यैकप्रणालिका।
विलान्विता मूलदण्डा बाहुमात्रा शुभप्रदा॥ (यज्ञमीमांसा)

स्रुवा— खादिरस्य स्रुवा कार्या हस्तमात्रप्रमाणतः।
अंगुल पर्वखातं स्यात् सर्वकामार्थसिद्धये॥

× × × ×

खादिरस्य स्रुवा कार्या हस्तमात्रप्रमाणतः।
अंगुष्ठपर्वखातं स्यात् त्रिभागं दीर्घपुष्करम्॥ (संस्कारभास्करम्)

प्रणीता—प्रणीता कारणाग्राह्या द्वादशांगुलिसम्मिता।
खातेन हस्ततलवद्वा कृत्वा पद्मपत्रवत्॥

प्रोक्षणी—वारणं पाणिमात्रं च द्वादशाङ्गुलिविस्तृतम्।
पद्मपत्राकृतिर्वापि प्रोक्षणी पात्रमीरितम्॥

× × × ×

होमद्रव्याणि परिधान् दूर्वादिप्रमुखान्यपि।
स्रुगादिपात्रमुत्तानं प्रोक्षयेत्तु प्रणीतिकाम्॥ ७३॥

होमीय सामग्रियों को, वस्त्र तथा दूब प्रभृति अन्य वस्तुओं को स्रुवा, प्रणीता एवं प्रोक्षणी पात्रों को वहाँ फैलाकर पवित्र जल से सिंचित करे॥ ७३॥

कुशेषु न्यस्य पुरतस्तोयमापूर्य तत्र तु।
उत्तराग्रपवित्रेण त्रिरुत्पूय ततः पुरः॥ ७४॥

कुशों पर उन्हें रखकर जलपात्रों में जल भर दे। उत्तराग्र कुश से तीन बार उसे पवित्र कर उसके बाद उन्हें सामने रख दे॥ ७४॥

निक्षिप्योदकबिन्दुं च घृतबिन्दुं च वल्लभे।
आनासिकं तदुद्धृत्य स्थापयेदुत्तरांशतः॥ ७५॥

हे वल्लभे! जलविन्दु और घृतविन्दु का उनपर छिड़काव कर दे। फिर उन्हें उत्तर की ओर से नाक की ऊँचाई तक ऊपर उठाकर सामने स्थापित कर दे॥ ७५॥

कुशोत्तराधरं कृत्वा संरक्षेदासमाप्तितः ।
पवित्रान्तरसंयुक्ते प्रोक्षण्याः पूर्ववद्विधिः ॥ ७६ ॥

कुश को उत्तर की ओर उलट कर रख दे और उसी स्थिति में हवनसमाप्ति तक रहने दे। प्रोक्षणी पात्र को पहले बतलाई गई विधि से दूसरे कुश के साथ रख दे ॥ ७६ ॥

पुरतः स्थापनादीनि प्रोक्षण्युत्पवनान्ततः ।
दत्त्वा प्रणीता तोयं च तेनाभ्युक्षेत् सुसाधनम् ॥ ७७ ॥

आगे से इन यज्ञीय सामग्रियों की स्थापना कर अन्ततः प्रोक्षणी से उनका मार्जन या शोधन करे। फिर प्रणीता में जल डालकर उस जल से सुन्दर हवन करने के सभी उपकरणों का अभिसिंचन करे ॥ ७७ ॥

पूर्वतस्तु प्रणीताया निषाद्य परिषेचयेत् ।
परिस्तीर्य परिधिकां न्यस्य मूर्तित्रयं क्रमात् ॥ ७८ ॥

अपने से पूर्व या सामने प्रणीता को रखकर उसका जल से सिंचन करे। फिर आगे परिधि को फैला कर उनपर क्रमशः तीनों मूर्तियों की स्थापना करे ॥ ७८ ॥

यष्ट्वा तेष्वथ ब्रह्माणं होमार्थे वृणुयाद् द्विजम् ।
पवित्रान्तरयुक्ते तत्पात्रे सम्पूर्य वैं घृतम् ॥ ७९ ॥

उनकी पूजा कर किसी नैष्ठिक ब्राह्मण का हवन कार्य के लिए ब्रह्मा के रूप में वरण करे। फिर, उस पात्र में दूसरा कुश रखकर उन्हें घी से भर दे ॥ ७९ ॥

धेनुं ताक्ष्यं प्रदर्श्याथ मूलं तु नवधा जपेत् ।
अग्निसूर्यसोमकलाः प्रजपेत् तत्र शङ्करि ॥ ८० ॥

हे शङ्करि! पहले धेनु एवं गरुड़ मुद्रा का प्रदर्शन कर मूलमंत्र का नौ बार जप करे। वहाँ हे देवि! अग्नि, सोम, सूर्य और कला के मंत्र का जप करे ॥ ८० ॥

अङ्गारेऽधिश्रयेद् दर्भौ ज्वलितौ तत्र निक्षिपेत् ।
परितोऽन्यैर्ज्वलद्भिश्च कृत्वा भूयः प्रदर्शयेत् ॥ ८१ ॥

दहकते अङ्गारे में दो कुशों को लहका कर होम कुण्ड में डाल दे। कुण्ड के चारों ओर जलती समिधाओं का प्रदर्शन करते हुए बार-बार उनका प्रदर्शन करे ॥ ८१ ॥

अखिलान् प्रक्षिपेदग्नावुत्तार्याज्यमुदग्दिशि ।
अङ्गारान्निक्षिपेदग्नौ जलं स्पृष्ट्वा पुरो न्यसेत् ॥ ८२ ॥

उन सारी समिधाओं को आग में उठाकर डाल दे और उत्तर की ओर उनमें घी भी डालें। अँगारे से आग लेकर उसमें डालें, फिर जल का स्पर्श कर उन्हें आगे रक्खें ॥ ८२ ॥

उत्पूयाज्यं स्त्रुक्स्त्रुवयोस्तप्त्वा सम्मार्जयेत् कुशैः ।

सम्प्रोक्ष्य सन्ताप्य पुनरग्नौ तान् सोदकान् क्षिपेत् ॥ ८३॥

पहले घी को आग पर चढ़ाकर पिघला लें, फिर स्रुक और स्रुवा को आग पर तपाकर कुश से झाड़-पोंछकर साफ कर दे और अभिमंत्रित जल का उसपर छिड़काव कर फिर आग पर उन्हें चढ़ाकर उन पर जल का सिंचन करे॥ ८३॥

प्रजप्य बालां तत्कण्ठे नमसा सूत्रवेष्टनम् ।
भुवनां प्रासादकं च न्यस्य सम्पूजयेत्ततः ॥ ८४॥

भगवती बाला के मन्त्र का जपकर, उन्हें प्रणामकर उनके कण्ठ में मांगलिक धागा लपेट दे। तीनों लोक के मन्दिर में उन्हें स्थापित कर उनका पूजन करे॥ ८४॥

पीठमभ्यर्चयेदग्नौ नवशक्तिसमावृतम् ।
पीता श्वेतारुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा स्फुलिङ्गिनी ॥ ८५॥
रुचिर्ज्वालिनीति रं वै सर्वतत्त्वक वै मला ।
सनाय नमसोपेतमिति सर्वं समर्चयेत् ॥ ८६॥

नवशक्ति से समावृत भगवती की पीठ पूजा उस प्रज्ज्वलित अग्नि में करे। भगवती की ये नौ शक्ति हैं—पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिङ्गिनी, रुचि और ज्वालिनी। ये नौ शक्तियाँ परमपूज्य एवं श्लाघनीय हैं। इन्हें नमस्कार कर सर्वतो भावेन इनकी पूजा करे॥ ८५-८६॥

प्राग् ध्यातं तु समावाह्य वह्निं सम्पूज्य शक्तितः ।
आज्यं त्रिधा विभक्तव्यं कुशाभ्यां च ततो हुनेत् ॥ ८७॥

पहले जिनका ध्यान किया है उनका आवाहन कर अग्निपूजन सामर्थ्य भर करे। फिर आज्य को तीन भागों में बाँटकर दो कुशों से हवन करे॥ ८७॥

नाडीरूपं विचिन्त्याथाज्यं त्रिधा भावितं पुरा ।
दक्षाद् वामान्मध्यभागात् स्त्रुवेणादाय वै क्रमात् ॥ ८८॥

भगवती को नाड़ी रूप में सोचकर पहले से तीन खण्डों में विभाजित आज्य से दक्ष से बायें मध्यभाग से स्रुव द्वारा उस पिघले घी से क्रमशः॥ ८८॥

व्याहृत्या तु त्रिधा हुत्वा नेत्रेष्वग्निं च सोमकम् ।
तौ च हुत्वा स्विष्टकृतं जुहुयात् परमेश्वरि ॥ ८९॥

व्याहृति से तीन आहुति डालकर नेत्रों में अग्नि और सोम को दो आहुतियाँ डालकर स्विष्टकृत की आहुति परमेश्वरि के नाम दे॥ ८९॥

हुत्वैवं नेत्रवक्त्राणामुद्घाटं तु विभावयेत् ।
व्याहृत्याऽपि चतुर्धा वै त्रिधाग्निं च क्रमाद्धुनेत् ॥ ९०॥

इस तरह हवन कर भगवती की आँखें और मुँह खुलने की भावना करे। व्याहृत से भी चार बार और तीन बार अग्नि का क्रमशः हवन करे॥ ९०॥

एतावद्धोमशेषं तु प्रोक्षण्यां पातयेदनु ।
संस्कारार्थं हुनेत् पश्चाद् गर्भाधानादितः क्रमात् ॥ ९१॥

हवन कुण्ड में डाले गये घी के बाद स्रुवा में लगे घी को पीछे प्रोक्षणी पात्र में डालते जाय। पीछे गर्भाधानादि संस्कार निमित्तक क्रमशः हवन करे॥ ९१॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तं जातकर्म च ।
नालच्छिदिर्नामकृतिर्निष्क्रमं प्राशनं ततः ॥ ९२॥
चौलं चोपनयस्तद्वत् त्रिव्रतं च समावृतिः ।
विवाहं तु त्रिधा होम एतत्संपत्तये शिवे ॥ ९३॥

गर्भाधान—जिस कर्म के द्वारा पुरुष स्त्री में अपना वीर्य स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहते हैं। [गर्भः संधार्यते येन कर्मणा तद् गर्भाधानमित्यनुगतार्थकर्मनामधेयम् (पूर्वमीमांसा) अ० १, पाठ ४७।]

पुंसवन—पुंसवन का अभिप्राय सामान्यतः उस कर्म से है या जिसके अनुष्ठान में पुरुष संतान के जन्म की कामना हो। (पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम्।

सीमन्त—सीमन्तोन्नयन गर्भ का तीसरा संस्कार है, इस नाम का कारण यह है कि इस कर्म में गर्भिणी स्त्री के केशों को (सीमन्त) को ऊपर उठाया जाता था। (सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् तत् सीमन्तोन्नयनकर्मनामधेयम्।)।

जातकर्म—स्त्री और नवजात शिशु की प्रसवजन्य कष्ट से मुक्ति के लिए जो कर्म किये जाते हैं, उसे जातकर्म कहा जाता है।

नालच्छेद—जातकर्म संस्कार के बाद नाभि की गुण्डी को काटकर अलग किया जाता है। इस विधान को नालच्छेद कहा जाता है।

नामकरण—शिशु के नाम का चुनाव सामान्यतः धार्मिक भावनाओं से सम्बद्ध होता है।

निष्क्रमण—शिशु को विधि विधानपूर्वक प्रथम बार घर से बाहर निकालने की क्रिया का नाम निष्क्रमण कहा जाता है।

प्राशन—छः महीने की उम्र से बालक को माता के स्तन से अलग हटाकर प्रथम बार ठोस आहार देने की विधि को अन्नप्राशन कहा जाता है।

षण्मासं चैवमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च—(सुश्रुत-शारीर स्थान पृ० ६४)

चौलम्—चौल अर्थात् चूड़ाकरण, धर्मशास्त्रों के अनुसार संस्कार्य व्यक्ति के लिए दीर्घायु, सौन्दर्य तथा कल्याण की प्राप्ति इस संस्कार प्रयोजन था। [''तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये।'']

उपनयन—उपनयन वह कृत्य है जिसके द्वारा बालक गुरु, वेद, यम, नियम का व्रत और देवता के सामीप्य के लिए दीक्षित किया जाय। ''गुरोर्व्रतानां वेदस्य यमस्य नियमस्य च। देवतानां समीपं वा येनासौ नीयते द्विज:।'' इसी तरह त्रिव्रत अर्थात् त्रिरात्रव्रत की महत्ता है।

त्रिव्रत—उपनयनसम्बन्धी विधि विधानों की समाप्ति पर विद्यार्थी तीन दिन पर्यन्त कठोर संयम के व्रत का पालन करता था, जिसे त्रिरात्र व्रत कहा जाता है। यह व्रत १२ दिन या एक वर्ष का भी होता है। यह छात्रजीवन के कठोर अनुशासन का प्रारम्भ था।

समावर्त्तन—समावर्त्तन का अर्थ है वेदाध्ययन के अनन्तर गुरुकुल से घर की ओर प्रत्यावर्त्तन—''तत्र समावर्त्तनं नाम वेदाध्ययनानन्तरं गुरुकुलात् स्वगृहागमनम्।''

विवाह—हिन्दू संस्कारों में विवाह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। विवाह स्वयं एक यज्ञ माना जाता था, जो व्यक्ति विवाह कर गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश नहीं करता था, उसे अयज्ञीय या यज्ञहीन कहा जाता था। [''अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीक:।'' (तैतरीय ब्रा० २/२/२/६।)।]

हे शिवे! सम्पदा के लिये उपर्युक्त सभी संस्कारों में तीन तरह के होम आवश्यक कहे गये हैं॥ ९२-९३॥

ततोऽग्नये सप्तधा तु जुहुयाद् रसनेन्द्रिये।
हिरण्या कनका रक्ता कृष्णवर्णा स्वयम्प्रभा॥ ९४॥
अतिरक्ता बहुरूपा बीजाद्येन हुनेत् क्रमात्।
यरौ ऋतुस्वरगतौ सबिन्दू सप्तधास्थितौ॥ ९५॥

इसके बाद अग्नि के लिए उनके जीभ में सात गुणवाले सात प्रकार से हवन करना चाहिए। ये सात हैं—हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णवर्णा, स्वयंप्रभा, अतिरक्ता, बहुरूपा, इनका बीज मंत्र से क्रमश: हवन करे। इन सातों में विन्दु के साथ ऋतु स्वरगत य और र सात प्रकार से अवस्थित हैं॥ ९४-९५॥

यादिसान्तं विलोमेन तेषामादौ निधापयेत्।
कामाग्निरिति कर्तव्यं नाम तस्य महेश्वरि॥ ९६॥

य से लेकर स तक उलटे क्रम से उनके आगे निर्धारित करे। हे महेश्वरि! इनका नाम कामाग्नि रखे॥ ९६॥

ततस्ताभ्यां घृताक्तं तु समिधां पञ्चकं हुनेत्।
यथा विभवतोऽभ्यर्च्य विसृजेत् तदनन्तरम्॥ ९७॥

इसके बाद उनके लिए घी में भिंगा कर समिधा से पाँच आहुति डालें। फिर, अपने विभव के अनुसार उनकी पूजा कर विसर्जन कर दे॥ ९७॥

अग्निमन्त्रेणाष्टधा तु जुहुयाद् गणपं ततः ।
मनुवारं तु जुहुयात् तत्प्रकारं ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥

अग्निमन्त्र से फिर आठ बार हवन करे। तत्पश्चात् मनुवार को श्रीगणेश का हवन करे, इस हवन के प्रकार मैं बतलाता हूँ॥ ९८॥

आरम्भादेकवर्णेन द्वाभ्यां च त्रिभिरेव च ।
चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिरेकादशकषोडशैः ॥ ९९ ॥

शुरू एक वर्ण से करे, फिर दो से, तीन से, चार से, पाँच से, छः से, ग्यारह से और सोलह से॥ ९९॥

एकविंशतिभिः सर्वैः पञ्चधेति क्रमाद्धुनेत् ।
अग्निमेव तु संसाध्य श्रपयेदत वै चरुम् ॥ १०० ॥

इक्कीस से, सबको मिलाकर पाँच बार हवन करे। आग सुलगाकर उसपर चरु तैयार करे॥ १००॥

गोक्षीरे तु पचेत् सम्यक् तण्डुलं मूलमन्त्रितम् ।
स्थालीमस्त्रेण प्रक्षाल्य निक्षिपेत् तण्डुलं ततः ॥ १०१ ॥

मिट्टी के बरतन में अस्त्र के साथ धोकर उसमें चावल डालें। चावल को मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित कर गाय के दूध में ठीक से चरु पकाये॥ १०१॥

हुमित्याच्छाद्य मूलेन प्रेक्षयेन्न तु चालयेत् ।
अत्यन्ता शिथिला शुष्कं श्रपयेच्चरुमद्रिजे ॥ १०२ ॥

हे पार्वति! उस चरु को 'हुम्' का उच्चारण कर ढँक दे और मूलमन्त्र पढ़ते हुए उसे देखें, पर चलाये नहीं, अत्यन्त ढीली पर सूखी चरु तैयार करे॥ १०२॥

अभिधार्य घृतेनैतत् कुशेषु विनिधापयेत् ।
अग्नौ तु देवतापीठं सम्पूज्यावाहयेत् पराम् ॥ १०३ ॥

मनसा इनकी कामना कर, घी के साथ इन्हें कुश पर इन्हें स्थापित करे। अग्नि में पूर्व स्थापित देवपीठ की पूजा कर पराशक्ति का आवाहन करे॥ १०३॥

पूजयेत् तु यथाशक्त्या सावृतिं तर्पयेत् तथा ।
अष्टोत्तरशताकृत्या तर्पयेन्मूलदेवताम् ॥ १०४ ॥

अपनी शक्ति के अनुसार पराशक्ति की पूजाकर आवृत्ति के साथ तर्पण करे, मूल देवता की १०८ आकृति बनाकर उनका तर्पण करे॥ १०४॥

अग्नये मूलदेव्यै च शतधा हावयेत् पृथक् ।
अग्निदेवतयोस्तेन वक्त्रैक्यं भावयेदुमे ॥ १०५ ॥

हे उमे, अग्नि और पराशक्ति के निमित्त अलग अलग सौ-सौ आहुतियाँ दे। अग्नि और उस मूल देवता के एक ही मुख की भावना होता को करनी चाहिए॥ १०५॥

नाडीनामेकतासिद्ध्यै हावयेच्छतधा पुनः ।
नित्यादिसमयान्तानामावृतीनां तु हावयेत् ॥ १०६॥

नाड़ियों की एकता की सिद्धि के लिए फिर सौ आहुतियाँ डाले। नित्यादि समयान्त के लिए चक्रानुक्रम से पुनः हवन करे॥ १०६॥

चरुणा मूलदेव्यै च हावयेदष्टधा ततः ।
दूर्वादिकं तु जुहुयाद् घृताक्तं मूलविद्यया ॥ १०७॥

इसके बाद आठ आहुतियाँ चरु से मूलदेवी के लिए दे। मूलविद्या से घी में भिंगोकर पूर्वादि से हवन करे॥ १०७॥

दूर्वा च वटपत्रं च गुडूची हेमदुग्धकम् ।
सोमवल्लीं तु प्रत्येकमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ १०८॥

दूब, बरगद के पत्ते, गुडूची अर्थात् गिलोय, गूलर और सोमलता, प्रत्येक को एक हजार आठ की संख्या में इकट्ठा कर ले॥ १०८॥

शतमष्टोत्तरं वापि मूलेन तु पृथक् पृथक् ।
मृद्भिः संस्नापयेच्छिष्यं मूलाष्टावृत्तिमन्त्रितैः ॥ १०९॥

एक सौ आठ कुँए वा सरोवर से अलग अलग मिट्टी संकलित कर मूलमंत्र से उसे आठ बार अभिमंत्रित कर शिष्य को स्नान करायें॥ १०९॥

रक्षाबन्धनकं कृत्वा पञ्चगव्येन प्राशयेत् ।
संविदं चापि सम्प्राश्य हुतशेषाज्यमञ्जयेत् ॥ ११०॥

इसके बाद शिष्य का रक्षाबन्धन कर पञ्चगव्य का प्राशन करा दे। प्रतिज्ञापूर्ण भी बन जाय, तत्पश्चात् हवन से बचे घी से अञ्जन करे॥ ११०॥

व्याहृतीस्तु ततो हुत्वा समर्पणहुतिं हुनेत् ।
हुनेत् स्विष्टं कृतं चैव ततः पूर्णाहुतिं त्रिधा ॥ १११॥

इसके बाद व्याहृति त्रय से हवन करे, इसके बाद समर्पण की आहुति डाले। फिर स्विष्टकृत की आहुति डालें। तत्पश्चात् तीन तरह से पूर्णाहुति डाले॥ १११॥

स्विष्टकृच्चरुणा पूर्णाहुतिः पुष्पफलाज्यकैः ।
द्विधावदानमन्यत्र घृतपूर्वोत्तरं तथा ॥ ११२॥

चरु से स्विष्ठकृत तथा फल, फूल और घी से पूर्णाहुति करे। इन्हें दो खण्डों में बाँटकर आहुति डालें, अन्यत्र पूर्वोत्तर क्रम से घी की आहुति डाले॥ ११२॥

सकृदत्रावदानं स्यादभिधारो द्विधा स्मृतः ।
उद्वास्य देवतामग्नेः परिधीश्च परिस्तरम् ॥ ११३ ॥

यहाँ एकबार अवदान तथा दो बार अभिधार कहा गया है। अग्नि देवता का उद्वासन कर कुण्ड से चारों ओर पलाशादि की समिधा को फैलाकर उसके चारों ओर हवनसामग्रियों को फैला दे॥ ११३ ॥

अग्नौ विनिक्षिपेत् पश्चात् परिषेकं ततश्चरेत् ।
प्रणीतापात्रमादाय संस्थाप्य पुरतः पुनः ॥ ११४ ॥

उन समिधाओं को कुण्डस्थ अग्नि में डाल दे फिर उसका अभिसिंचन करे। फिर प्रणीतापात्र लेकर कुण्ड के आगे उसे स्थापित कर दे॥ ११४ ॥

जलं किञ्चिद् विनिक्षिप्य सम्पूज्य प्रजपेत् त्रिधा ।
तच्चतुर्दिक्षु तत्तोयं विनिक्षिप्य ततः शिवे ॥ ११५ ॥

हे शिवे, थोड़ा जल लेकर उन हवनीय सामग्रियों को अभिसिंचित कर मूलमन्त्र से उनकी पूजा कर उस मन्त्र का तीन बार जप करे। फिर प्रणीतापात्र से जल लेकर चारों ओर छींटे॥ ११५ ॥

प्राग्विनिक्षिप्ततोयेन सशिष्यं प्रोक्षयेत् स्वयम् ।
उद्वासयेत्तु ब्रह्माणं यष्ट्वा वासोविभूषणैः ॥ ११६ ॥

जल से जो पहले अभिषिक्त किया गया है शिष्य के साथ गुरु स्वयं उसका प्रोक्षण करे। फिर ब्रह्मा को आसन दे, यज्ञ कर उन्हें वस्त्राभूषण दे॥ ११६ ॥

समाप्य होमं पश्चात् तु पूजयेन्मण्डलं ततः ।
पाशच्छेदं ततः कुर्यादुपवेश्य स्वदक्षिणे ॥ ११७ ॥

फिर हवन समाप्त कर पीछे मण्डल की पूजा करे। अपने से दक्खिन की ओर बैठकर पाशच्छेद करे॥ ११७ ॥

उत्तराभिमुखत्वेन विशेषार्घ्यस्थबिन्दुभिः ।
पात्रत्रयेण क्रमतः समन्त्रं कारयेद्धुतिम् ॥ ११८ ॥

उत्तराभिमुख होकर विशेषा अर्घ्य पात्र की विन्दुओं से तीनों पात्रों के साथ क्रमशः मन्त्रोच्चार के साथ हवन करे॥ ११८ ॥

आत्मपाशं तथा विद्यापाशं कर्माख्यपाशकम् ।
स्वाहान्तेन त्रिधैवं तु नान्यत् किञ्चित् समाचरेत् ॥ ११९ ॥

बन्धन तीन ही हैं आत्मपाश, विद्यापाश तथा कर्मपाश, इन्हीं के अन्त में स्वाहा लगाकर तीन तरह की उपासना करनी चाहिए, अन्यत् कुछ भी नहीं॥ ११९ ॥

तर्पणं पूजनं शेषग्रहणं न च विद्यते ।
न किञ्चिद् भक्षयेदत्र नश्येत् तस्याधिवासनम् ॥ १२० ॥

तर्पण, पूजन एवं शेषग्रहण इसमें नहीं होता। शिष्य को कुछ भी नहीं खाना चाहिए खाने से शिष्य का अधिवासन व्रत समाप्त हो जाता है ॥ १२० ॥

भोजयेद्धुतशेषेण शिष्यं देवि ततः परम् ।
क्षीरवृक्षोद्भवं काष्ठं नमसा मन्त्रितं तु यत् ॥ १२१ ॥

शिष्य को हुतशेष खिला देना चाहिए। हे देवि, इसके बाद क्षीरवृक्षोद्भव काष्ठ (क्षीरवृक्ष) अर्थात् बरगद, शमी, गूलर, पीपल या महुए की टहनी को जो दतुअन के लिए अनुकूल हो, उन्हें अभिमंत्रित करे ॥ १२१ ॥

दन्तान् विशोधयेत् तेन कृत्वा गण्डूषणं ततः ।
आचम्य वषडा बद्ध्वा शिखामधिवसेत् ततः ॥ १२२ ॥

उस दतुअन से दाँतों की सफाई कर कुल्ली करे। फिर आचमन करे। इसके बाद वषट् मंत्र शिखा बाँधकर उसे अधिवासित करे ॥ १२२ ॥

ध्यायन् देवीं स्वहृदये कृतकृत्यऽपरेऽहनि ।
अष्टात्रिंशत्कलान्यासं श्रीचक्रन्यासमेव च ॥ १२३ ॥

अपने हृदय में देवी का ध्यान करते हुए अपने को धन्य धन्य समझें। दूसरे दिन ३८ कला का न्यास करे पुनः श्रीचक्र का न्यास करे ॥ १२३ ॥

रश्मिन्यासं तथा षोढान्यासं वाग्देवताभिधम् ।
नित्यन्यासानपि तथा कुर्याच्छिष्यकलेवरे ॥ १२४ ॥

शिष्य के शरीर में वाग्देवता नामक रश्मिन्यास, षोडान्यास तथा नित्यन्यास करे ॥ १२४ ॥

समर्च्य चक्रराजं तु कलशस्थां च देवताम् ।
सहस्रं साधिते वह्नौ तिलैः श्वेतैस्तु हावयेत् ॥ १२५ ॥

इस तरह चक्रराज की पूजाकर फिर कलशाधिष्ठित देवताओं की पूजा कर साधित अग्नि में सफेद तिल की हजार आहुतियाँ दे ॥ १२५ ॥

सुवासिनीमुखानिष्ट्वा वाद्यगीतादिभिः सह ।
पीठे त्वलङ्कृते शिष्यमुपवेश्येशादिङ्मुखम् ॥ १२६ ॥

सुवासिनी मुख को ध्यान में रखते हुए गीत और बाजे-गाजे के साथ उनकी पूजा सम्पन्न कर उस साधनापीठ पर अलंकृत शिष्य को ईशान कोण की ओर मुखकर बैठायें ॥ १२६ ॥

पल्लवान्मूर्ध्नि निक्षिप्य मूलमावर्तयन् गुरुः ।
अभिषिञ्चेत् समुद्धृत्य कलशं सुविधानतः ॥ १२७॥

गुरु भगवती का मूल मन्त्र पढ़ते हुए आम्रपल्लव विधानपूर्वक कलश में डुबाकर शिष्य के शिर को अभिषिक्त करे॥ १२७॥

अङ्गमन्त्राण्युपदिशेद् देवतासविधे स्थितः ।
प्राङ्मुखायोपविष्टाय स्वयं सोमदिशामुखः ॥ १२८॥

देवता के समीप पूर्वाभिमुख बैठे शिष्य के अङ्गों को उत्तरमुख बैठे गुरु मंत्र पूत करे॥ १२८॥

रक्तकौशेयखण्डेन बद्ध्वा नेत्रं ततो गुरुः ।
षोडशीमादिशेत् तस्मै मुद्राः संक्षोभिणीमुखाः ॥ १२९॥

लाल रेशमी वस्त्र खण्ड से गुरु शिष्य की आँखें बाँध दे। उसके बाद संक्षोभिणी मुख मुद्रा प्रदर्शित कर षोडशी मन्त्र का उपदेश करे॥ १२९॥

शङ्खाद्या अपि तत्पश्चाद् धर्मान् समयसम्भवान् ।
उपदिश्याथ शिष्येण भक्त्या शक्त्या प्रपूजितः ॥ १३०॥

भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार शिष्य के द्वारा पूजित गुरु तत्पश्चात् समय संभव धर्मोपदेश कर शंखादि मुद्रा का भी उपदेश करे॥ १३०॥

ब्रह्माद्यान् विसृजेत् सर्वान् दक्षिणाद्यैः सुसत्कृतान् ।
गुरवे स्वं च सर्वस्वं निवेद्याराधयेच्छिवे ॥ १३१॥

ब्रह्मा प्रभृति को पूर्ण सत्कार के साथ यथेच्छ दक्षिणा देकर सबका विसर्जन कर दे। हे शिवे, अपना सर्वस्व गुरु को समर्पित कर उनकी आराधना करे॥ १३१॥

एवं दीक्षां पञ्चदश्याः षोडश्या वाऽपि शैलजे ।
सम्प्राप्य देवताभक्त्या सर्वथोपास्तितत्परम् ॥ १३२॥

हे पार्वती, इतना हो जाने पर पञ्चदशी एवं पात्रानुसार षोडशी मन्त्र का उपदेश प्राप्त कर उस देवता की भक्तिपूर्वक तत्परता से उपासना करे॥ १३२॥

चिरसेवासुप्रसन्नो गुरुः शिष्यं परीक्ष्य च ।
अचुम्बकमसन्दिग्धमनास्तिकमकौटिलम् ॥ १३३॥

चिरकालीन सेवा से शिष्य पर अत्यन्त प्रसन्न गुरु उस शिष्य की परीक्षा लेकर जो कामुक या धूर्त्त न हो, सन्देह से परे हो, आस्तिक हो और धूर्त न हो॥ १३३॥

सर्वलक्षणसम्पन्नमनन्यशरणं ह्यमे ।
पूर्णाभिषेकयोगेन योजयेत् तदनन्तरम् ॥ १३४॥

पूर्णाभिषेक : हे उमे, अनन्य शरणागत, सब शुभ लक्षणों से सम्पन्न शिष्य को शुभ परीक्षण के पश्चात् **पूर्णाभिषेक** करना चाहिए॥ १३४॥

तत्रोपास्तिः पूर्णतां वै समेति प्राणवल्लभे ।
महाश्रीषोडशी यत्र श्रीमहापादुकापि च ॥ १३५॥

वहाँ उसकी उपासना पूर्णता के तुल्य है, क्योंकि, जहाँ श्रीमहापादुका या महाश्रीषोडशी का मन्त्रोपदेश हो॥ १३५॥

ऊर्ध्वाम्नायोऽनुत्तरश्च प्राप्यते साधकेन वै ।
ज्ञानं शाक्तं दिव्यमपि चोपास्तिर्देहसंश्रया ॥ १३६॥

ऊर्ध्वाम्नाय तथा अनुत्तराय के मन्त्रादि के उपदेश साधक को प्राप्त होते हैं। उन्हें देहाश्रित दिव्य शाक्तज्ञान भी प्राप्त होता है॥ १३६॥

अन्तराराधनाख्याता पादुकाप्यात्मनस्तथा ।
स वै पूर्णाभिषेकाख्यो न तस्यान्यो गुरुर्भवेत् ॥
सम्पूर्णाधिकृतिस्तस्य नान्येषां तु कदाचन ॥ १३७॥

श्रीविद्या की उपासना आत्मशक्ति की आराधना है। इस उपासना का नाम अन्तः आराधना है। पादुका भी तो आत्मा की ही है। यही नाम पूर्णाभिषेक का भी है। उसका कोई गुरु नहीं होता है। सम्पूर्ण अधिकार उसी का है, दूसरे का बिल्कुल नहीं है॥ १३७॥

अन्यत्रत्या हि या दीक्षा सा क्षुद्रा सुलभा तथा ।
पूर्णाभिषेकरूपा तु महती बहुदुर्लभा ॥ १३८॥

इससे भिन्न जो दीक्षा है वह तुच्छ है इसलिये सर्वत्रसुलभ है। किन्तु पूर्णाभिषेक रूपी दीक्षा महती है, बहुतों के लिए दुर्लभ है॥ १३८॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम् ।
स्वात्मनः श्रीगुरोर्देवि तेनैव कृतकृत्यता ॥ १३९॥

इसलिये प्रयासपूर्वक पूर्णाभिषेचन करना चाहिए। अपने और अपने गुरु के पूर्णाभिषेचन में ही जीवन की सार्थकता है॥ १३९॥

पूर्वोक्तवच्छुभे देशे काले च समुपक्रमेत् ।
तत्रादौ श्रीगुरुं देवं प्रार्थयेद् दण्डवन्नतः ॥ १४०॥

पहले बतलाये गये नियमानुसार शुभ समय एवं स्थान में यह उपक्रम प्रारम्भ करना चाहिए। वहाँ सर्वप्रथम श्रीगुरु को फिर देवता को दण्डवत् प्रणाम कर प्रार्थना करे॥ १४०॥

भो स्वामिन् गुरुनाथार्य मामार्तं शरणागतम् ।
संसारसागरात् तीर्णं कृपया कुरु मां गुरो ॥ १४१॥

'हे स्वामिन्, हे गुरो, हे नाथ, हे आर्य! मैं आर्त्त हूँ, आपका शरणागत हूँ। हे गुरो, संसाररूपी सागर से पार करने के लिए मुझपर कृपा करो'॥ १४१॥

प्रार्थ्यैवमाज्ञया तस्य सङ्कल्पादिकमाचरेत् ।
आचार्यो वेदिकामध्ये सर्वतो भद्रमण्डलम् ॥ १४२॥

इस तरह उनकी प्रार्थना कर उनकी आज्ञा से संकल्प प्रभृति क्रियाएँ करे। सर्वतोभद्र मण्डल वेदिका के बीच आचार्य बनायें॥ १४२॥

आगमोक्तेन विधिना रचयेच्छुभदर्शनम् ।
प्रागादिधान्यपुञ्जेषु कलशान् पञ्च विन्यसेत् ॥ १४३॥

वेदशास्त्र में वर्णित सिद्धान्त के अनुसार विधि-विधान के साथ शुभदर्शन सर्वतोभद्र का निर्माण करना चाहिए। आगे अर्थात् अपने से पूरब जौ या धान के ढेर पर पाँच कलशों को स्थापित करे॥ १४३॥

समाः सर्वे मध्यमो वा प्रोक्तमानेन संयुतः ।
पूर्वाद्युत्तरकुम्भान्तमाम्नायाद्याः प्रपूजयेत् ॥ १४४॥

जो मांप बतलाया गया है, उसी मांप के अनुसार सभी कलश समान या उत्तम मध्यम क्रम से हों, उनमें पूर्वादि उत्तर कुम्भान्त में आम्नाय आदि की पूजा करे॥ १४४॥

ऊर्ध्वाम्नायादिकामध्ये षोडशीं कलशे यजेत् ।
साङ्गाश्च समयास्तत्र यष्ट्वा प्रत्येकमद्रिजे ॥ १४५॥

ऊर्ध्वाम्नायादि के बीच वाले कलश में हे पार्वती, भगवती षोडशी की पूजा करे। फिर प्रत्येक कलश में सिद्धान्तानुसार साङ्ग पूजा करे॥ १४५॥

समष्ट्या वापि सम्पूज्य प्रत्येकं कलशेषु वै ।
पूर्ववन्मुख्यविद्याश्चाङ्गविद्याः प्रजपेत् पृथक् ॥ १४६॥

अथवा प्रत्येक कलश में एक साथ पूजाकर, पहले की तरह मुख्यविद्या तथा अङ्गविद्या का अलग-अलग जप करे॥ १४६॥

सर्वा आम्नायविद्याश्च प्रजप्य तु सकृत् सकृत् ।
चक्रराजं ततोऽभ्यर्च्य महद्भिरुपचारकैः ॥ १४७॥

सारी आम्नाय विद्याओं को एकसाथ जपकर, विशिष्ट उपचार से चक्रराज की पूजा करनी चाहिए॥ १४७॥

कलशान्तरदेव्यश्च मुख्यदेव्यास्तु सम्मुखाः ।
मुख्यां तु मध्यमे कुम्भे षोडशीं विद्धि पार्वति ॥ १४८॥

बीच के कलश में मुख्यदेवी का आवाहन होता है; अतः मध्य कलश में ही षोडशी की पूजा करे। हे पार्वती, कलशान्तर में अन्य देवियों का पूजन करे॥ १४८॥

प्राग्वत् सङ्कल्प्य होमं तु कृत्वा नेत्राञ्जनावधि ।
तन्मूर्ध्नि श्रीचक्रराजं ध्यायेन्निश्चलमानसः ॥ १४९ ॥

पहले की ही तरह संकल्प लेकर आकाश में तारे दिखलाई पड़े, उस समय तक हवन करे। फिर निश्चल मन से उसके माथे में श्रीचक्रराज का ध्यान करे॥ १४९॥

तत्र सावरणां देवीं यजेन्मानसवर्त्मना ।
तत्तन्मन्त्रोल्लेखपूर्वं ततः स्वात्मानमद्रिजे ॥ १५० ॥

हे पर्वतनन्दिनी, वहाँ मानसमार्ग से आकाश से आवरण के साथ देवी की पूजा करे, फिर, उन मंत्रों के उल्लेखपूर्वक अपनी आत्मा को देवीस्वरूप में चिन्तन करे॥ १५०॥

प्रदीपकलिकाकारं प्रविष्टं भावयेद् दृशा ।
तद्धृदिस्थां जीवकलां स्वात्मन्येव निवेशयेत् ॥ १५१ ॥

दीपकलिका अर्थात् दीपक के फूल के आकार में अर्थात् दीप की लौ के आकार में आँखें स्थिर कर भगवती की भावना करे। फिर उस ज्योति को जीवन ज्योति के रूप में शिष्य के ही हृदय में अनुभूत करे॥ १५१॥

निवृत्त्यादि पञ्चकलां विन्यसेत् तत्कलेवरे ।
निवृत्तिं पादयोर्नाभौ प्रतिष्ठां हृदि मूर्धनि ॥ १५२ ॥

निवृत्ति आदि पाँच कलाओं को उस शिष्य के शरीर में विन्यस्त करे। उस निवृत्ति को दोनों पैरों में, नाभि में, हृदय में, मस्तिष्क में प्रतिष्ठित करे॥ १५२॥

विद्यां च शान्तिमगजे शान्त्यतीतां विधेर्बिले ।
नाभौ हृदि मुखे तत्त्वत्रयमात्माख्यतत्त्वकम् ॥ १५३ ॥

हे पर्वतपुत्री, विद्या और शान्ति, अतीत की शान्ति विधि के बिल अर्थात् शरीर में ही है। आत्माख्य तत्त्वत्रय विधिनिर्मित इस शरीर की नाभि में, हृदय में और मुख में अवस्थित है॥ १५३॥

विद्यातत्त्वं शिवाख्यं च षट्त्रिंशद्भेदभेदितम् ।
भुवनत्रितयं तद्वदधोमध्योर्ध्वसंस्थितम् ॥ १५४ ॥

विद्यातत्त्व और शिवाख्य छत्तीस खण्डों में विभाजित हैं। ये तीनों भुवन की तरह अधः, मध्य और अपर कोटि में अवस्थित है॥ १५४॥

चतुर्विंशतिसंयुक्तं द्विशतेन सुसम्मितम् ।
वर्णांस्तु मातृकान्यासप्रोक्तवद् विन्यसेदुमे ॥ १५५ ॥

चौबीस वर्णों के साथ दो सौ वर्णों के बराबर वर्ण-मातृकान्यास पूर्वोक्त की तरह कहलाता है। हे उमे, इसी वर्णिकान्यास की स्थापना करनी चाहिए॥ १५५॥

सत्क्रिया सदिति पदं त्रिविधं विन्यसेत् तथा ।
एकाशीतिविभेदाख्यं मन्त्रं सद्वत् त्रिधा स्थितम् ॥ १५६ ॥

सत्क्रिया के सत् पद को तीन प्रकार से विन्यस्त करे, तथा ८१ भेद वाले उस मंत्र को भी जो उसी तरह तीन खण्डों में उपस्थित हैं ॥ १५६ ॥

बीजं पिण्डश्च माला च सप्तकोटिप्रभेदितम् ।
एवं षडध्वान् विन्यस्य पुनर्मन्त्रांस्तु विन्यसेत् ॥ १५७ ॥

बीज, पिण्ड और माला इनके सात करोड़ भेद बतलाये गये हैं। इसी तरह छः मार्गों का विन्यास कर, फिर मन्त्रों का विन्यास करे ॥ १५७ ॥

तत्तन्मन्त्रोच्चारपूर्वं ललाटे च हिमाद्रिजे ।
भुवनं तत्त्वसंयुक्तं कलायां तु विलापयेत् ॥ १५८ ॥

हे पार्वती, ललाट में उन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए तत्त्वयुक्त भुवन को कला में विलापित करे ॥ १५८ ॥

मन्त्रं पदेन संयुक्तं वर्णे तु प्रविलापयेत् ।
कलां वर्णे च तं शक्तो तामात्मनि विलापयेत् ॥ १५९ ॥

पदयुक्त मंत्र और वर्ण में विलापन करे, उसे कला, वर्ण और शक्ति में तथा उन्हें अपनी आत्मा में आत्मसात् करे ॥ १५९ ॥

ततस्तिलैरष्टषष्टिमन्त्रैर्होमं समाचरेत् ।
अध्वमन्त्रैरष्टधापि प्रतिमन्त्रं हुनेत् तथा ॥ १६० ॥

इसके बाद अष्टषष्टि मंत्र से तिल लेकर हवन करे। फिर अध्व मन्त्र से आठ बार आहुतियाँ डाले ॥ १६० ॥

विलापितान् प्रागुत्पाद्य हृदि जीवं निवेशयेत् ।
ततः परदिने सर्वं पूर्ववत् तु समाचरेत् ॥ १६१ ॥

इस तरह विलापितों को पहले उत्पन्न कर हृदय में जीव को प्रवेश करायें। इसके बाद दूसरे दिन पहले की तरह व्यवहार करे ॥ १६१ ॥

अभिषेकात् पूर्वतस्तु कुर्याद् दीक्षास्तु सप्तधा ।
मातृकां परमेशानीं वर्णक्लृप्तशरीरिणीम् ॥ १६२ ॥

अभिषेक से पहले ही सात तरह की दीक्षा ग्रहण करे। वर्णक्लृप्त शरीर वाली परमेश्वरी मातृका का ध्यान करे ॥ १६२ ॥

ध्यात्वोत्पत्तिं तु वर्णानां शिष्यदेहे निरूपयेत् ।
इयं वर्णमयी दीक्षा कलादीक्षामधः शृणु ॥ १६३ ॥

वर्णों की उत्पत्ति का ध्यान कर शिष्य के देह में निरूपित करे। इसे ही **वर्णमयी** दीक्षा कहते हैं। आगे **कलामयी** दीक्षा कहेंगे, सुनो॥ १६३॥

पादाज्जान्वन्तकं तस्मान्नाभ्यन्तं तत आगलम् ।
ततः फालान्तकं तस्माद् ब्रह्मरन्ध्रान्तकं न्यसेत् ॥ १६४॥

पैर से घुटने तक, घुटने से नाभि तक, नाभि से आगल अर्थात् छाती तक, छाती से सीमन्त तक वहाँ से ब्रह्मरन्ध्र तक न्यास करे॥ १६४॥

निवृत्त्यादिकलाः पश्चाद्विलाप्य प्रथमं क्रमात् ।
शान्त्यतीतामात्मनि च पुनरुत्पादयेत् क्रमात् ॥ १६५॥

पीछे निवृत्ति आदि कलाओं को प्रथमादि क्रम से कहकर, शान्ति और अतीत कलाओं को क्रम से अपनी आत्मा में उत्पन्न करे॥ १६५॥

कूर्चेन विन्यसेत् पश्चाद्विपरीतक्रमेण च ।
कृत्वैवं तु कलादीक्षां दक्षिणे करमध्यतः ॥ १६६॥

पीछे विपरीत क्रम से मुट्ठी भर कुश से विन्यास करे। इस तरह **कलादीक्षा** सम्पन्न कर दाहिने हाथ के बीच में॥ १६६॥

ध्यात्वा गुरुं मातृकाङ्गमूलविद्यां जपन् ततः ।
मूर्ध्नि स्पृशेत् स्पर्शदीक्षा, वाग्दीक्षा प्रोच्यतेऽधुना ॥ १६७॥

गुरु का ध्यान कर, मातृका के अङ्ग मूलविद्या का जप करते हुए माथे का स्पर्श करे, यह स्पर्श दीक्षा हुई। आगे **वाग्दीक्षा** बतलाते हैं॥ १६७॥

मन्त्रान् शिवात्मकान् ध्यात्वा ध्यायन् स्वं च शिवात्मकम् ।
मन्त्रानुपदिशामीति वदेदेषा तु वाङ्मयी ॥ १६८॥

'शिवात्मक मन्त्रों का ध्यान कर, शिवस्वरूप अपने आपका ध्यान करते हुए मन्त्रों का मैं तुम्हें उपदेश करता हूँ', ऐसा गुरु कहे, यही **वाङ्मयी दीक्षा** है॥ १६८॥

मन्त्रात्मिकां परां ध्यायन्निर्विकल्पः क्षणं स्थितः ।
पश्येत् प्रसन्नया दृष्ट्या दृग्दीक्षेयं समीरिता ॥ १६९॥

एक क्षण निर्विकल्प भाव से स्थिर होकर मन्त्रस्वरूपा पराशक्ति का ध्यान कते हुए प्रसन्न दृष्टि से शिष्य की ओर देखें, इसे ही **दृग्दीक्षा** कहते हैं॥ १६९॥

वेधदीक्षामथो वक्ष्ये भावनैकशरीरिणीम् ।
प्रविशेन्नेत्रमार्गेण शिष्यदेहान्तरं गुरुः ॥ १७०॥

एक मात्र भावना शरीर वाली **वेधदीक्षा** के सम्बन्ध में अब कहेंगे। इस दीक्षा में गुरु नेत्रमार्ग से शिष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं॥ १७०॥

कुण्डलिन्या षडाधारस्थितयोगिनिमुख्यकैः ।
गणेशादौ योजनेन नयेदूर्ध्वं सुषुम्णया ॥ १७१ ॥

कुण्डलिनी के षडाधार स्थित योगिनीप्रमुखों में गणेशादि देवताओं का संयोजन करे। उन्हें सुषुम्णा के माध्यम से ऊपर की ओर ले जाय॥ १७१ ॥

क्रमेण ब्रह्मरन्ध्रस्थपूर्णपीयूषवर्षिणि ।
गुरौ संयोज्य किञ्चित्तु विश्रम्योन्मनभावकः ॥ १७२ ॥

क्रमशः ब्रह्मरन्ध्र में स्थित अमृतवर्षा करनेवाली शक्ति को थोड़ा गुरु से संयोजित कर उन्मन भाव से विश्राम करे॥ १७२ ॥

सुधावर्षैः समाप्लाव्य पुनरुत्पादयेत् क्रमात् ।
देवतौघमयं शिष्यं ध्यायेन्निश्चलमानसः ॥ १७३ ॥

अमृत वर्षा से सबको समान रूप से भिंगोकर क्रमशः फिर उत्पादन करे। निश्चल मन से देवतासमूहमय शिष्य का ध्यान करे॥ १७३ ॥

इत्याख्याता वेधदीक्षा, मन्त्रदीक्षा ततो भवेत् ।
क्रमात् पूर्वादिकलशैरभिषिच्योक्तवर्त्मना ॥ १७४ ॥

इसे वेधदीक्षा कहा जाता है। मन्त्रदीक्षा इसके बाद होती है। पहले बतलाये गये तरीके से पूर्वादि क्रम से रक्खे कलशों से ज्ञापन करे॥ १७४ ॥

पूर्वाद्याम्नायषट्कं च क्रमादुपदिशेदुमे ।
दृष्टिबन्धं विधायैव पादुकामुपदेशयेत् ॥ १७५ ॥

हे उमे! पूर्वादि तथा आम्नाय षटक् का क्रमशः उपदेश करे। फिर, दृग्दीक्षा अर्थात् दृष्टिबन्ध का विधान कर अभिषेच्य शिष्य को पादुकोपदेश करे॥ १७५ ॥

अनुत्तराम्नायशेषमुपदिश्य हिमाद्रिजे ।
पुनर्दृष्टिं बन्धयित्वा श्रीमहाषोडशीं पराम् ॥ १७६ ॥

हे पार्वती, अनुत्तरा, आम्नाय का अवशिष्ट शेष भाग का उपदेश देकर पुनः दृष्टिबन्ध का विधान कर महाषोडशी का मन्त्रोपदेश करे॥ १७६ ॥

प्रकाश्य पश्चान्मुद्राश्च विदिशेदखिला अपि ।
संक्षोभिणीं विद्राविणीमाकर्षिणीं वशङ्करीम् ॥ १७७ ॥

पूजामुद्रा : पीछे मुद्राओं को प्रकाश में लाकर सारी मुद्रायें बतलायें। यथा— संक्षोभिणी, विद्राविणी, आकर्षिणी, तथा वशङ्करी॥ १७७ ॥

उन्मादिनीमङ्कुशां च खेचरीं बीजयोनिके ।
पाशाङ्कुशे चापबाणौ पूजामुद्रास्त्रयोदश ॥ १७८ ॥

उन्मादिनी, अंकुशा, खेचरी, बीजयोनिका, पाशाङ्कुशा, चाप, वाण, ये तेरह पूजामुद्रा कहलाती हैं ॥ १७८ ॥

जपमुद्रा जपादौ तु सुन्दरीतुष्टिदायिकाः ।
शङ्खं चक्रं गदां खड्गं पद्मं योनिं त्रिशूलकम् ॥ १७९ ॥

त्रिपुरसुन्दरी को प्रसन्नता देनेवाली जप प्रारंभ करने के पूर्व जो मुद्राएँ प्रदर्शित की जाती हैं, उन्हें **जपमुद्रा** कहते हैं। ये मुद्राएँ हैं—शंख, चक्र, गदा, खड्ग, पद्म, योनि, त्रिशूल ॥ १७९ ॥

तार्क्ष्यं धेनुं च डमरुं शार्ङ्गं नाराचकौस्तुभौ ।
श्रीवत्सं मुसलं चेति पञ्चदश्याः प्रदर्शयेत् ॥ १८० ॥

तार्क्ष्य, धेनु, डमरु, शार्ङ्ग, नाराच, कौस्तुभ, श्रीवत्स, मुसल—ये कुल पन्द्रह मुद्राएँ प्रदर्शित करे ॥ १८० ॥

त्रिखण्डया युताश्चेमाः षोडश्यास्तु प्रदर्शयेत् ।
ततो ज्येष्ठक्रमात् सर्वान् प्रणमेद् भक्तिभावतः ॥ १८१ ॥

तीन खण्डों से युक्त इन षोडशी का प्रदर्शन करना चाहिए। इसके बाद ज्येष्ठ क्रम से भक्तिभावपूर्वक सबको प्रणाम करे ॥ १८१ ॥

मत्वा कृतार्थमात्मानं गुर्वादीन् पूजयेदथ ।
शिष्यस्य तत्त्वशुद्धिं वै कारयेत् तदनन्तरम् ॥ १८२ ॥

शिष्य अपने आपको कृतार्थ मानकर गुरु प्रभृति की पूजा करे। इसके बाद शिष्य की तत्त्वशुद्धि गुरु करवाये ॥ १८२ ॥

हृत्तर्पणान्ते शिष्येण स्पर्शयेत् तस्य चाङ्गकम् ।
तन्मातृकावर्णमुखं नाम कर्तव्यमद्रिजे ॥ १८३ ॥

हे पार्वती, हृत्तर्पण के बाद शिष्य गुरु के अंगों का समन्त्र स्पर्श करे, फिर मातृका वर्णमुख **शिष्य का नामकरण** करे ॥ १८३ ॥

आनन्दनाथशब्दान्तं पुंसामम्बान्तिमं स्त्रियः ।
द्व्यक्षरादि विशिष्टार्थं तेन नाम्ना युतेन तु ॥ १८४ ॥

पुरुष-शिष्य के नाम के अन्त में आनन्द या नाथ शब्द जुटा हो और नारी के नाम के अन्त में अम्बा शब्द जुड़ा हो, दो या चार सार्थक वर्णों से ही नामकरण होना चाहिए। जैसे—योगानन्द, रामानन्द, रामनाथ, पराम्बा प्रभृति ॥ १८४ ॥

आत्मनः पादुकायास्तु मन्त्रेणाधारमण्डले ।
शक्तिशेषा हि पूर्वं तु शोधयेत् तत्त्वपञ्चकम् ॥ १८५ ॥

आधार मण्डल में अपने आपका और अपनी पादुका का मन्त्र से शक्तिशेष करते हुए तत्त्वपञ्चक का शुद्धिकरण करे॥ १८५॥

प्रयच्छेन्नवरत्नैस्तु पूर्णपात्रं गुरूत्तमे।
सर्वान् सन्तोषयेन्मानपूजावस्त्रधनादिभिः।
एवं पूर्णाभिषेकस्तु कथितो हिमशैलजे॥ १८६॥

इसके बाद उत्तम गुरु को नये रत्न और पूर्णपात्र प्रदान करे; उन्हें सम्मान, पूजा, वस्त्र, धनादि देकर सन्तुष्ट करे। हे हिमशैलजे, इस कर्म को ही शिष्य का **पूर्णाभिषेक** कहा गया है॥ १८६॥

देव्युवाच

महेश कैलासपते श्रुता दीक्षा त्वयेरिता।
अनेकमन्त्राङ्गयुता विद्वदेकसमाश्रया॥ १८७॥

देवी ने कहा—

हे महेश्वर, हे कैलासाधिपते, दीक्षा के सन्दर्भ में आपने जो कुछ एकमात्र विद्वानों के समाश्रित साङ्ग अनेक मंत्र कहे मैंने सुन लिये। ॥ १८७॥

अतिश्रद्धावतां देव मूढानां नित्यरोगिणाम्।
प्रोक्ता दीक्षातिगहना कथं स्याद् वद मे विभो॥ १८८॥

मूर्ख, नित्यरोगी आदि की दीक्षाविधि : जो श्रद्धालु अत्यन्त मूर्खजन हैं, नित्य रोगी हैं, हे विभो, उन्हें यह अतिगहन दीक्षा कैसे दी जाय, मुझ को कृपया बतलायें॥ १८८॥

ईश्वर उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया देवि दीनवात्सल्यभावतः।
योग्यस्तवायं प्रश्नो वै नैवं प्रश्नोऽन्यसंश्रयः॥ १८९॥

महादेव ने कहा—

दुःखी जनों के प्रति दया की भावना से प्रेरित होकर तुमने बड़ा ही सुन्दर प्रश्न पूछा है। यह तुम्हारे ही अनुरूप प्रश्न है। ऐसा प्रश्न अन्याश्रित हो ही नहीं सकते॥ १८९॥

परोपकृतिशीलायाः प्रश्नरत्नो भवेदयम्।
शृणवत्र तेऽभिधास्यामि समाधानं नगोद्भवे॥ १९०॥

हे पार्वती, परोपकार तो तुम्हारा स्वभाव है, इसीलिए तुम्हारा ऐसा प्रश्नरत्न है। सुनो देवि! मैं इस प्रश्न का समाधान तुम्हें सुनाता हूँ॥ १९०॥

ये मूढा व्यापृताश्चैव योषितश्चातुरास्तथा।
तेषां तु योग्यता ज्ञात्वा मुख्यमन्त्रानुदीरयेत्॥ १९१॥

जो भूले-भटके हैं, अनर्गल काम में बँधे हैं, औरत हैं, बीमार हैं, अशक्त हैं, उनकी योग्यता जानकर मुख्य मन्त्र का उपदेश करे॥ १९१॥

अथवा श्रीगुरोर्नाम तथा श्रीषोडशाक्षरीम्।
हृल्लेखां षोडशीबीजं द्वयमेकमथापि वा ॥ १९२॥

अथवा श्रीगुरु का नाम तथा श्रीषोडशाक्षरी, हृल्लेखा एवं षोडशी बीज ये अथवा इनमें से कोई एक बतलायें॥ १९२॥

इति योषिन्मूढरोगयुतानां दीक्षणं भवेत्।
तेषां यावति शक्तिः स्यात् तावदेव निरूपयेत् ॥ १९३॥

यही औरत, मूर्ख एवं रोगी की दीक्षा है, उनकी जितनी शक्ति है, उतना ही निरूपण करना चाहिए॥ १९३॥

तैर्यावच्छक्यते कर्म कर्त्तुं तावदुदीरयेत्।
दीक्षाकाले मुख्यमन्त्रानुपदिश्याद्रिकन्यके ॥ १९४॥

हे पार्वती, ये जितना कर्म कर सकते हैं, उतना ही उपदेश दे। दीक्षाकाल में मुख्य मंत्र का उपदेश करे॥ १९४॥

दीक्षाकालेऽनन्तरं वा शेषमन्त्रानुदीरयेत्।
एवंविधानां देवेशि गुरुत्वं नैव विद्यते ॥ १९५॥

दीक्षाकाल में या बाद में शेष मंत्र बतलायें। हे देवेशि, इस तरह नहीं करने पर गुरुत्व नहीं रहता॥ १९५॥

योषित्सु नियमो नास्ति सर्वास्ता गुरुरीरिताः।
मुख्यमन्त्रमात्रवती या सापि गुरुरुत्तमा ॥ १९६॥

स्त्रियों के लिए कोई खास नियम नहीं है। वे सभी गुरु कही गई हैं। केवल मुख्य मंत्र जिनके पास हैं, वे स्त्री भी उत्तम गुरु कहलाती हैं॥ १९६॥

मुख्यमन्त्रानुपदिशेदन्यत् पुस्तकमर्पयेत्।
नैवं पुंसोऽधिकारः स्यात् स्त्रीर्यतः परदेवता ॥ १९७॥

स्त्री-गुरु शिष्य को मुख्य मंत्र का केवल उपदेश करे। शेष क्रिया के लिए पुस्तक हाथ में थमा दे। यह अधिकार पुरुषगुरु के लिए नहीं है। क्योंकि, नारीगुरु परमेश्वरी की प्रतिमूर्त्ति होती है॥ १९७॥

एवंविधानां दीक्षायाः करणं प्रोच्यतेऽधुना।
योषिद्वा शक्तिहीनो वा गुरुर्यदि महेश्वरि ॥ १९८॥

अब मैं इस तरह की दीक्षा का आवश्यक साधन बतलाता हूँ। हे महेश्वरि, गुरु यदि अशक्त हो अथवा स्त्री हो॥ १९८॥

उपदेशं विना सर्वमुपाचार्येण कारयेत् ।
यथाशक्त्या गुरुः कुर्यादन्यत् तेन तु कारयेत् ॥ १९९ ॥

उपदेश को छोड़कर याज्ञिक सारी क्रियायें उपाचार्य से करवाये। यथाशक्ति गुरु स्वयं करे जो गुरु न कर सके, उनका सम्पादन उपाचार्य से करवाने का विधान है ॥ १९९ ॥

अध्वशोधनकं देवि स्पृशन्नाचार्यमीरितम् ।
एवं देवेशि सम्प्रोक्तः पूर्णदीक्षाविधिः शिवे ॥ २०० ॥

हे देवि, प्रक्रिया का शुद्धिकरण तो आचार्य के स्पर्श करते हुए ही हो जाता है। हे शिवे, हे देवि, इस तरह पूर्ण दीक्षाविधि मैंने बतला दी है ॥ २०० ॥

आदौ बाला पञ्चदश्योर्दीक्षां प्राप्यतु तत्परम् ।
किञ्चित्कालमुपासित्वा प्रोक्तदीक्षाधिकारिता ॥ २०१ ॥

प्रारम्भ में वाला और पञ्चदशी की दीक्षा के अनन्तर ही षोडशी मंत्र ग्रहण करना चाहिए। इन मंत्रों के प्राप्त हो जाने पर कुछ समय इनकी उपासना करने पर ही पूर्ण दीक्षा पाने का अधिकार मिलता है ॥ २०१ ॥

दीक्षासमर्थ आदौ तु बालां पञ्चदशीमपि ।
मन्त्रग्रहणरीत्या तु गह्रीत्वोपास्य वै क्रमात् ॥ २०२ ॥

पहले दीक्षासमर्थ व्यक्ति बाला और पञ्चदशी का मन्त्र ग्रहण कर विधिवत् क्रमशः इनकी उपासना करे ॥ २०२ ॥

पूर्णदीक्षा ततो ग्राह्या तद्विधानं शृणु प्रिये ।
प्रार्थितो गुरुराड् देवि कलशे यन्त्रकेऽथवा ॥ २०३ ॥

इसके बाद ही पूर्ण दीक्षा ग्रहण करे। हे प्रिये, उसका विधान मैं बतलाता हूँ, सुनो। कलश में अथवा मन्त्र में गुरुराट् की प्रार्थना करे ॥ २०३ ॥

सम्पूज्योपदिशेन्मन्त्रं बालां पञ्चदशीं तथा ।
गुरुत्रयं गणेशश्च बालाङ्गं प्रोच्यते शिवे ॥ २०४ ॥

हे शिवे, इनकी अच्छी तरह पूजा कर ही मन्त्रोपदेश करे। इनमें बाला, पञ्चदशी, गुरुत्रय, गणपति और बाला के अङ्ग ॥ २०४ ॥

मन्त्रिणी दण्डिनी नित्यास्तिरस्कृतिरिति क्रमात् ।
अङ्गं सौभाग्यविद्याया उपास्यैवं तु दीक्षयेत् ॥ २०५ ॥

मन्त्रिणी, दण्डिनी, नित्याएँ, तिरस्करिणी, सौभाग्यविधा, का उपदेश देकर ही शिक्षा ग्रहण कराये ॥ २०५ ॥

दीक्षाक्रमं विना देवि षोडशीं पादुकामपि ।

मन्त्रग्रहणरीत्या तु गृहीत्वा पापभाग् भवेत् ॥ २०६ ॥

षोडशी और पादुका यन्त्र यदि बिना दीक्षाक्रम के मंत्रग्रहण रीति से ही लिया जाय तो लेनेवाला पापभागी होता है॥ २०६॥

षोडशीं पादुकां चापि मन्त्रग्रहणरीतितः ।
प्रमादादपि शिष्याय दत्त्वा पातित्यमाप्नुयात् ॥ २०७ ॥

षोडशी और पादुका मंत्र केवल मन्त्रग्रहणरीति से ही अगर शिष्य को भूल से भी दिया जाय तो गुरु पतित हो जाता है॥ २०७॥

पादुकोपासने देवि द्विजानामधिकारिता ।
श्रीमहाषोडशी विद्या तथैव स्यान्नगात्मजे ॥ २०८ ॥

हे देवि, पादुकामंत्र की उपासना का अधिकार जैसे द्विज मात्र को है, उसी तरह हे नगात्मजे, महाषोडशी विद्या की उपासना का अधिकार भी द्विजमात्र को ही है॥ २०८॥

न लभ्यते स्वल्पपुण्यैः श्रीमहाषोडशाक्षरी ।
राज्यं देयं शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी ॥ २०९ ॥

महाषोडशाक्षरी मन्त्र स्वल्प पुण्य से उपलब्ध नहीं होते हैं। राज्य दे दो, शिर कटा दो, पर अनधिकारी को षोडशाक्षरी मत दो॥ २०९॥

एतमन्यायतो दत्त्वा गुरुघ्नः स्यान्न संशयः ।
इयं न शूद्रे देया स्यादयोग्ये वा कदाचन ॥ २१० ॥

अन्यायपूर्वक यह मंत्र अयोग्य शिष्य को देनेवाला व्यक्ति गुरुहन्ता होता है, इसमें संशय नहीं है। यह मन्त्र अयोग्य एवं कर्मच्युत शूद्र को कदापि न देना चाहिए॥ २१०॥

अयोग्ये दानतो यद्वत् तथा शूद्रेऽपि पापभाक् ।
इति तेऽभिहितं सर्वं यन्मां त्वं पृष्टवत्यसि ॥ २११ ॥

अयोग्य शिष्य को तथा कर्मच्युत शूद्र को भी यह महामंत्र देकर गुरु पाप का भागी बन जाता है। हे देवि, तुमने जो कुछ पूछा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया॥ २११॥

दीक्षाभेदविधानं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे दीक्षाविधिः प्रथमस्तरङ्गः ॥

हे देवि, पुनः तुम दीक्षाभेदविधान के बाद क्या सुनना चाहती हो तो सुनो॥

इस तरह श्री त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) की २११ श्लोकों में
'दीक्षाविधि' नामक प्रथम तरङ्ग की हिन्दी विमला-व्याख्या समाप्त हुई॥

●

अथ द्वितीयस्तरङ्गः

(दैनिकसाधनाविधिः)

श्रीदेव्युवाच

महादेव प्रियतम दीक्षाविधिरुदाहृतः ।
श्रोतुमिच्छामि चेदानीं दीक्षाप्राप्तेरनन्तरम् ॥ १ ॥
कर्तव्यं प्रातरारभ्य साधकेन यथोचितम् ।
तन्ममाचक्ष्व भगवान् विस्पष्टं च यथातथम् ॥ २ ॥

श्रीदेवी ने कहा—

हे महादेव, आपने दीक्षाविधि तो समझा दी है। किन्तु, हे प्रियतम, दीक्षाप्राप्ति के पश्चात् की बातें सुनना चाहती हूँ। **दीक्षाविधि के पश्चात् प्रातःकाल से साधक को क्या क्या करना चाहिए?** वह स्पष्ट रूप से हमें आप समझा दे॥ १-२॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु पार्वति श्रीदेव्याः साधने सुविधिं ब्रुवे ।
सङ्गृह्य सारसर्वस्वं यत्प्रोक्तं त्रिपुरार्णवे ॥ ३ ॥

श्री महादेव ने कहा—

अब मैं हे पार्वति, श्रीदेवी की साधना की सुन्दर विधि तुम्हें बतलाता हूँ। इस सन्दर्भ में त्रिपुरार्णव में जो कुछ गया है उसका सार संगृहीत कर बतला रहा हूँ॥ ३॥

साधकस्तु त्यजेन्निद्रामुषःकाले सुपावने ।
स्थिरपद्मासनः शान्तचित्तः श्रीगुरुमामृशेत् ॥ ४ ॥

प्रातः पवित्र उषःकाल में उठकर साधक को पद्मासन में स्थिर शान्तचित्त गुरु का स्मरण करना चाहिए॥ ४॥

सुषुम्णोर्ध्वं सुधारश्मिकोटिकान्तिसमप्रभम् ।
अधोमुखं गुरुस्थानं सहस्त्रदलशोभितम् ॥ ५ ॥

श्री गुरु का स्थान सुषुम्णा से ऊपर सहस्त्रदल में अधोमुख है जहाँ से अमृत-किरण की करोड़ों कान्तियों की तरह प्रभाएँ फूटती रहती हैं॥ ५॥

तत्रैव द्वादशान्तस्य कमलस्य सुकर्णिके ।
श्रीगुरुं चन्द्रसङ्काशं ध्यात्वा तदनु पार्वति ॥ ६ ॥

हे पार्वति, वहाँ ही बारह दलवाले कमल के सुन्दर पद्मबीज कोष में चन्द्रमा के समान वर्णवाले गुरु का ध्यान कर, उसके बाद॥ ६॥

सुषुम्णाधो रक्तवर्णं सहस्त्रदलपङ्कजम् ।
कुलाख्यं कर्णिकासंस्थकुलकुण्डे स्थिता हि या ॥ ७ ॥

सुषुम्णा के नीचे लाल वर्ण के सहस्रदल कमल, कुलनाम से ख्यात है। इसी कुल कुण्ड में अवस्थित पद्मबीज कोष में जो बैठी है॥७॥

त्रिपुरा या पराशक्तिः सर्वकारणकारणम् ।
तां संस्मरेत् तडित्कोटिप्रभाप्रतिमतेजसम् ॥ ८ ॥

वह त्रिपुरा पराशक्ति जो सारे कारणों की कारणस्वरूपा हैं, करोड़ों विद्युत्-प्रभा से समन्वित, अतुलनीय तेज से सम्पन्न है, उनका स्मरण (ध्यान) करना चाहिए॥८॥

कुण्डलिन्यात्मिकां सार्धमण्डलत्रयशोभिनीम् ।
प्रबोध्य कुम्भकेनाथो षट् चक्राणि विभिद्य च ॥ ९ ॥

तदनन्तर सार्ध त्रिवलया कुण्डलिनी का प्रबोधन ऊपर कुम्भक से वाक्-चक्र भेदन पूर्वक॥९॥

प्रविष्टा श्रीपरशिवरूपे गुरुसुधाकरे ।
ध्यात्वा तदुद्‌गतासारसुधाधाराप्लुतं स्मरन् ॥ १० ॥

पर शिव स्वरूप गुरु में प्रवेश का ध्यान कर उससे स्रवित सुधा धाराओं में स्वयं को आप्लुत अर्थात् स्नपित होने की भावना करे॥१०॥

आत्मानं संघट्टमुद्रान्यासपूर्वं वराङ्गने ।
केवलं पादुकामन्त्रं मनसैव सकृत् स्मरेत् ॥ ११ ॥

हे वराङ्गने! तदनन्तर संघट्टमुद्रा का न्यास करके मानसिक रूप से गुरुपादुकामंत्र का एक बार स्मरण करे॥११॥

गुरुनामसमायुक्तमन्ते निश्चलमानसः ।
जपपूजातर्पणादौ दीक्षानाम प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

पादुकामंत्र के साथ गुरु का नाम भी संयुक्त करे। फिर अडिग मन से जप, पूजा तर्पण आदि में दीक्षा-नाम का उपयोग होना चाहिए॥१२॥

व्यावहारिकमन्यत्र प्रयोगादौ महेश्वरि ।
अपादुकानां तत्स्थाने गुरुत्रयजपो भवेत् ॥ १३ ॥

जपादि से भिन्न स्थानों में व्यावहारिक नाम का प्रयोग करे। हे महेश्वरि, यदि पादुका मन्त्र प्राप्त नहीं हुआ हो, तो अपने गुरुत्रय का स्मरण करे॥१३॥

पादुकां तु विमृश्याथ पूजयेन्मनसा गुरुम् ।
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः क्रमतः शिवे ॥ १४ ॥

हे शिवे, पादुकामन्त्र का चिन्तन कर, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य से गुरु की मानसिक पूजा करे॥ १४॥

पञ्च मुद्राः प्रदर्श्याथ स्तुवीत स्तोत्रमन्त्रकैः ।
स्तम्भनं चतुरस्त्रं च मत्स्यकूर्मौ च योनिकम् ॥ १५॥

पञ्च मुद्रा : स्तम्भन, चतुरस्त्र, मत्स्य, कूर्म और योनि—ये पाँच मुद्रायें दिखाकर, स्तोत्र और मन्त्रों से गुरु का स्तवन करना चाहिए॥ १५॥

ऋज्वङ्गुलं हस्तयुगमूर्ध्वाग्राङ्गुष्ठपार्श्वयुक् ।
आद्येयमेव चाग्राग्रा द्वितीया परिकीर्तिता ॥ १६॥

दोनों हाथ की सीधी अंगुलियाँ ऊपर की ओर उठे दोनों अँगूठे, दोनों के बगल भी उठे यह **पहली मुद्रा** हुई और **दूसरी मुद्रा** आगे आगे की ओर उठी हुई कही गई है॥ १६॥

वामपृष्ठे दक्षतलं संयोज्याधोमुखं शिवे ।
ऋज्वङ्गुलयुतं पार्श्वे विरलाङ्गुष्ठयुग्मकम् ॥ १७॥

बायें हाथ के पीठ पर दायीं हथेली को रक्खें और हे शिवे उन्हें अधोमुख बना दे, बगल में सारी अँगुलियाँ सीधी हों और दोनों अँगूठे पार्श्व में सीधे रक्खे॥ १७॥

तृतीयेयं पुनश्चेयं तर्जनी च कनिष्ठिका ।
अधोमुखी चतुर्थी स्यान्मध्यमाग्रे तु योजयेत् ॥ १८॥

यह **तीसरी मत्स्य मुद्रा** हुई। फिर, यह तर्जनी और कनिष्ठा को अधोमुखी बनाकर कूर्म मुद्रा बनायें मध्यमा के अग्रभाग में संयोजित करे, यह **चतुर्थ मुद्रा** हुई॥ १८॥

तत्पृष्ठेऽनामिकायुग्मं वामोर्ध्वं व्यत्ययीकृतम् ।
तर्जनीभ्यां धृताग्रं च कनिष्ठे मध्यमोदरे ॥ १९॥

उसकी पीठ पर दोनों हाथों की अनामिका अंगुलियों को व्यतिक्रम अर्थात् उलट-फेर कर, दोनों तर्जनी को आगे रखकर, कनिष्ठा को मध्यमा के बीच में रखकर॥ १९॥

संयुक्तेऽङ्गुष्ठयोरग्रयुते स्यात् पञ्चमी त्वियम् ।
एवं मुद्राः प्रदर्श्याथ गुरुस्तोत्रं समीरयेत् ॥ २०॥

दोनों अग्रयुक्त अंगूठे को मिलाकर **पाँचवीं** अर्थात् **योनिमुद्रा** बनती है, इस तरह की पाँच मुद्राओं का प्रदर्शन कर गुरुस्तोत्र पढ़ना चाहिए॥ २०॥

[मुद्रा की परिभाषायें निम्न क्रम में भी उपलब्ध होती हैं—

मत्स्यमुद्रा— ''वामोपरिष्टात्संस्थाप्य दक्षहस्तं प्रक्षारयेत्।
अंगुष्ठौ युतयोः पार्श्वे मत्स्यमुद्रेयमीरिताः॥''

× × × ×

योनिमुद्रा—

''मिथः कनिष्ठके बध्वा तर्जनीभ्यामनामिके।
अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टं दीर्घमध्यमयोरधः॥
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यसेत् योनिमुद्रेयमीष्टिता॥'' इत्यादि॥]

तद्वदामि शृणु गिरितनुजे निश्चलान्तरा।
श्रीनाथस्तोत्रमेतत्तु सर्वस्मादुत्तमोत्तमम्॥२१॥

उसे मैं बतलाता हूँ, हे गिरिजे! इसे तुम स्थिर मन से सुनो। यह श्रीनाथ जी का स्तोत्र है। स्तोत्रों में यह सर्वाधिक श्रेष्ठ स्तोत्र है॥२१॥

ब्रह्मरन्ध्रे स्थितं पद्मं सहस्त्रश्वेतपत्रकम्।
अधोमुखं चन्द्रकोटिप्रतीकाशं भजाम्यहम्॥२२॥

गुरुस्तोत्र : ब्रह्मरन्ध्र में (अर्थात् मस्तक के मध्य में माना जानेवाला एक छेद, जिससे होकर प्राण निकलने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होना माना जाता है) अवस्थित एक कमल का फूल है जिसमें हजारों सफेद पँखड़ियाँ हैं जो औंधा लटका है तथा जिससे करोड़ों चन्द्रमा की प्रतिमूर्त्ति झलकती हैं, उस गुरु को मैं भजता हूँ॥२२॥

तदन्तर्द्वादशान्ताख्यं पद्मं श्वेताष्टपत्रकम्।
तत्कर्णिकायां संक्लृप्तं भजे मातृत्रिकोणकम्॥२३॥

उसके भीतर द्वादशान्त नामक आठ सफेद पँखड़ियों वाला कमल है, उसके पद्मबीज कोष में लगे मातृ-त्रिकोण को मैं भजता हूँ॥२३॥

तदन्तः पूर्णपीयूषकरकोटिसमद्युतिम्।
चिन्तये श्रीनाथपदद्वन्द्वमानन्दमन्दिरम्॥२४॥

इसके बाद करोड़ों अमृत करों की कान्ति से प्रभासित श्रीनाथ के आनन्दमन्दिर स्वरूप चरणयुगल का चिन्तन करता हूँ॥२४॥

रक्तशुक्लप्रभामिश्रछविछादितदिक्तटम्।
माणिक्यपादुकापृष्ठसंसक्तोदरपल्लवम्॥२५॥

माणिक्य की पादुका पृष्ठ में लगे उदर पल्लव के लाल और सफेद रंग के सम्मिलित सौन्दर्य से दिशायें प्रोद्भासित हो रही हैं, उस चरण की मैं वन्दना करता हूँ॥२५॥

नखचन्द्रप्रभापुञ्जमूर्छनाविशदाखिलम्।
एवंविधपदद्वन्द्वं शोभितं गुरुमामृशे॥२६॥

नखचन्द्र की प्रभा के समूह से सारी दिशायें चमत्कृत हैं। ऐसे सुन्दर चरणवाले गुरु की मैं वन्दना करता हूँ॥२६॥

चित्पुस्तकवराभीतिकरं नेत्रत्रयोज्ज्वलम् ।
श्वेतचन्दनकौशेयभूषापुष्पविराजितम् ॥ २७॥

एक हाथ में चित् अर्थात् विवेक, दूसरे में पुस्तक, तीसरे में वर और चौथे में अभय वरदान, प्रभापूर्ण तीन आँखें, श्वेत चन्दन, रेशमी वस्त्र, आभूषण एवं पुष्प से सुशोभित हैं॥ २७॥

वामाङ्कनिलयारक्तशक्त्याऽऽश्लिष्टकलेवरम् ।
श्रीनाथममुकानन्दनाथात्मानं समुल्लिखेत् ॥ २८॥

हल्के गुलाबी रंग के स्वरूपवाली महाशक्ति से आलिङ्गित देहवाले, तथा जिनकी बायीं गोद को अपना वास स्थान बना लिया हो महाशक्ति ने, उस श्रीनाथ को जिनके स्वरूप में आत्मलीन कर लिया हो जिसने, उस गुरु के नाम का उल्लेख करना चाहिए॥ २८॥

इति स्तोत्रं गुरोः कृत्वा देवतां चन्द्रमण्डलात् ।
हृदयाम्भोजगां ध्यात्वा वरिवस्येत् तु मानसैः ॥ २९॥

इन स्तोत्रों से गुरु की स्तुति कर हृदय कमल में अवस्थित चन्द्रमण्डल के देवता का ध्यान कर उन्हें मनमन्दिर में बसा ले॥ २९॥

प्रजप्य मूलविद्यां च यथाशक्त्या मनोमयीम् ।
स्तुवीत सूक्तिभिर्देवीं त्रिपुरां परमेश्वरीम् ॥ ३०॥

मनोमयी त्रिपुरा परमेश्वरी के मूलमन्त्र का यथाशक्ति जपकर सूक्ति से देवी की स्तुति करे॥ ३०॥

मन्त्रे स्तोत्रे तथान्यत्र नाम सामान्यतः स्थितम् ।
तत्र तत्तन्नामयोगपूर्वकं तु प्रयोजयेत् ॥ ३१॥

सामान्यतः मन्त्र में, स्तोत्र में तथा दूसरी जगह इष्ट का नाम ही अवस्थित हैं जहाँ उस नाम का योगकरणप्रवृत्ति का कारणभूत उद्देश्य होना चाहिए॥ ३१॥

एवं प्रातःस्मृतिं कृत्वा ततः स्नानं समाचरेत् ।
कृत्वा तु वैदिकस्नानं द्विजस्तान्त्रिकमाचरेत् ॥ ३२॥

प्रभातवेला में इनका स्मरण कर, इसके बाद स्नान करना चाहिए। पहले **वैदिक स्नान** कर, द्विजों को **तान्त्रिक स्नान** करना चाहिए॥ ३२॥

त्रैवर्णिकैर्वैदिकान्ते तान्त्रिकं क्रियतेऽखिलम् ।
अन्यथा तान्त्रिकं व्यर्थमधिकारं विना शिवे ॥ ३३॥

प्रथम तीन वर्ण के लोग पहले वैदिक स्नान के बाद तान्त्रिक स्नान करे। अन्यथा, हे शिवे, तान्त्रिक स्नान अधिकार के बिना व्यर्थ सिद्ध होगा॥ ३३॥

आचम्य तत्त्वैः स्वाहान्तैः कूटाद्यैः पर्वतात्मजे ।
चतुर्धा च ततः प्राणायामं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ३४॥

यथार्थ सिद्धान्त के अनुसार आचमन कर आदि में कूट और अन्त में स्वाहा का प्रयोग करते हुए हे पर्वतनन्दिनि, इसके बाद चार गुणा या चार प्रकार से **प्राणायाम** सतर्क भाव से करे॥ ३४॥

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्नासां धृत्वा तु कुम्भके ।
मूलं त्रिधोल्लिखेदेवं प्राणायामविधिः स्मृतः ॥ ३५॥

कनिष्ठा, अनामिका और अंगूठे नाक के पुरे को दबाकर मूलमन्त्र का तीन बार उल्लेख करे यही **प्राणायाम की विधि** कही गयी है॥ ३५॥

सङ्कल्प्य स्वपुरोभागे श्रीयन्त्रं तु समालिखेत् ।
तोये तत्र परां देवीमावाह्याभ्यर्च्य मानसैः ॥ ३६॥

पहले संकल्प लेकर अपने आगे श्रीयन्त्र का उल्लेख करे, वही जल में उस परादेवी का आवाहन कर मानसिक पूजा करे॥ ३६॥

यन्त्रादिलेखने देवि विधानं शृणु संयता ।
अनामयाऽविशेषे तु लिखेत् सर्वत्र शङ्करि ॥ ३७॥

हे देवि, संयत भाव से **यन्त्रादिलेखन का विधान** सुनो। हे शङ्करि, सर्वदा अनामय एवं अविशेष यन्त्र लिखना चाहिए॥ ३७॥

तत्र तीर्थं सूर्यबिम्बादाह्वयेद् हिमशैलजे ।
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे! ॥ ३८॥

हे पार्वती, ब्रह्माण्ड की कुक्षि में अनेक तीर्थ हैं जिनका स्पर्श सूर्य अपने किरणों से स्पर्श करते हैं। अतः वहाँ सूर्य बिम्ब से आहूत कर तीर्थोल्लेख करे॥ ३८॥

तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ।
आकृष्य चाङ्कुशेनाथो निक्षिपेद्यन्त्रमध्यतः ॥ ३९॥

हे देव, हे दिवाकर, इसी सत्य के बल पर आप मुझे तीर्थ दे। अपने अंकुश से इन्हें खींचकर यन्त्र के बीच से फेंक दे॥ ३९॥

अमृतीकृत्य धेन्वा तु निर्विषीकृत्य तार्क्ष्यतः ।
प्रोक्षेत् षोडशधा मूलैर्मस्तके तत्त्वमुद्रया ॥ ४०॥

धेनुमुद्रा से अमृत बनाकर और तार्क्ष्यमुद्रा से निर्विष बनाकर, तत्त्वमुद्रा से सोलह बार मूलमन्त्र से शिष्य के मस्तिष्क का मार्जन करे॥ ४०॥

अभिषिञ्चेन्मूर्धभुजहृन्मुखेष्वष्टधा क्रमात् ।

मूलेन कुम्भरूपिण्या मुद्रया गिरिराट्सुते ॥ ४१ ॥

हे गिरिजे, कुम्भरूपिणी मुद्रा से मूलमन्त्र पढ़ते हुए क्रमशः माथे, बाहु, छाती और मुख का आठ बार अभिषिञ्चन करे॥ ४१ ॥

अप्सु मग्नः स्मरन् देवीं तीर्थरूपां महेश्वरीम् ।
ततस्तु तर्पयेदौघगुरून् कामेश्वरीमुखाः ॥ ४२ ॥

जल में मग्न तीर्थस्वरूपा महेश्वरी देवी का ध्यान करते हुए, कामेश्वरीमुख अघोर गुरु का तर्पण करना चाहिए॥ ४२ ॥

एवं स्नानं विधायाऽथ सन्ध्यां कुर्यात् सुसाधकः ।
रोगाद्युपद्रुतः स्नाने त्वसमर्थो यदा तदा ॥ ४३ ॥

जो अच्छे साधक हैं वे पूर्वोक्त रीति से स्नान कर संध्या करे। यदि साधक रुग्ण हो, स्नान करने में असमर्थ हो तो॥ ४३ ॥

वस्त्रेणार्द्रेण चाङ्गानां कृत्वा प्रोञ्छनमादितः ।
मूलं जपन् सप्तधा तु आपादतलमस्तकम् ॥ ४४ ॥

भींगे वस्त्र से सम्पूर्ण शरीर को पोंछ दे, मूलमन्त्र जपते हुए शिर से पैर तक मूलमन्त्र पढ़ते हुए पोंछ डाले॥ ४४ ॥

तलाभ्यां संस्पृशेद् देवि मन्त्रस्नानं प्रकीर्तितम् ।
एतत् स्नानमशक्तस्य विहितं शुद्धिहेतवे ॥ ४५ ॥

दोनों तलहथियों से मन्त्र पढ़ते हुए सारे शरीर का स्पर्श करे, इसे ही **मन्त्रस्नान** कहते हैं। मन्त्रस्नान अशक्त लोगों की शुद्धि के लिए विहित है॥ ४५ ॥

स्नात्वैवं परिधायाथ वाससी भस्मलाञ्छितः ।
आचम्य प्राणानायम्य सङ्कल्प्य न्यस्य पूजयेत् ॥ ४६ ॥

इस तरह स्नान कर वस्त्र पहनकर भस्म लगा लें। फिर आचमन, प्राणायाम एवं सङ्कल्प लेकर पूजन प्रारम्भ करे॥ ४६ ॥

तोये श्रीयन्त्रराजं तु ध्यात्वा देवीं समावहेत् ।
हृदि ध्यात्वा समावाह्य चावृत्त्या सहितां शिवाम् ॥ ४७ ॥

जल में श्रीयन्त्रराज का ध्यान करके देवी का आवाहन करे। पुनः आवृति के साथ भगवती शिवा का हृदय में ध्यान कर आवाहन करे॥ ४७ ॥

यथोपचारैः सम्पूज्य चावृतिं कुसुमैर्यजेत् ।
ततो वामेन हस्तेन जलमादाय साधकः ॥ ४८ ॥

यथोपचार से उनकी पूजा कर अनेक बार फूलों से उनका यजन करे। इसके बाद साधक बायें हाथ से जल लेकर॥ ४८ ॥

गृहीत्वा दक्षिणे हस्ते वामेनाच्छाद्य शङ्करि ।
मूलं जपेत्तु नवधा पुनर्वामेन धारयेत् ॥ ४९ ॥

हे शङ्करि, उस जल को दाहिने हाथ में लेकर बायें हाथ से ढँककर, नौ बार मूल मन्त्र का जप करे। फिर, उस जल को बायें हाथ में ले ले ॥ ४९ ॥

तच्छाखासन्धिगलितं मुद्रया तत्त्वसंज्ञया ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या मूर्ध्नि प्रोक्षेन्महेश्वरि ॥ ५० ॥

उस शाखा से संयुक्त तत्त्वसंज्ञक मुद्रा से ही महेश्वरि १०८ बार शिर पर अभिसिंचन करे ॥ ५० ॥

तत आचम्य तु पुनर्जलमादाय शङ्करि ।
अकुलामृतसंयुक्तं तेजोरूपं विभावयेत् ॥ ५१ ॥

हे शङ्करि, इसके बाद फिर आचमन करे और फिर जल हाथ में लें, और शिवरूपयुक्त तेजोमयी महाशक्ति का चिन्तन करे ॥ ५१ ॥

पुरुषं पापसंज्ञं तु वामकुक्षौ विचिन्तयेत् ।
अधोमुखं कृष्णवर्णं खड्गखेटकधारिणम् ॥ ५२ ॥

बायीं कोख में पापनामक पुरुष को सोचें जो नीचे मुंह लटकाये काले रङ्ग का हाथ में तलवार और ढाल लिए हो ॥ ५२ ॥

पातकोपपातकाङ्गं ब्रह्महत्योत्तमाङ्गकम् ।
स्वर्णस्तेयपार्श्वयुगं सुरापानमयोदरम् ॥ ५३ ॥

इस पापी का अङ्ग पातक (पाप) उपपातक (छोटा पाप) होता है। इसका उत्तमाङ्ग अर्थात् मुख ब्रह्महत्या जैसे पाप होता है। इसके दोनों पार्श्व सोना की चोरी है तथा सुरापान इसका पेट है ॥ ५३ ॥

गुरुतल्पपदद्वन्द्वं तत्संसर्गतनूरुहम् ।
अनृतत्वक्परिवृतमतिपातककीकसम् ॥ ५४ ॥

उसके दोनों पैर गुरु की शय्या है, उसके संसर्ग रोमावली है, असत्य त्वचा है, इससे घिरी उसकी बुद्धि है; उसकी हड्डियाँ पातक हैं ॥ ५४ ॥

एवंविधं चिन्तयित्वा नासिकायाः सुवर्त्मना ।
प्रविष्टं तज्जलं ध्यात्वा पापपुरुषसंयुतम् ॥ ५५ ॥

इस तरह सोचते हुए नाक के छेद की राह से उस पाप पुरुष के साथ जलप्रवेश का ध्यान करे ॥ ५५ ॥

तत्तोये तं विलीनं तु विरेच्येतरवर्त्मना ।

वामे कार्ष्णायसभुवि प्रक्षिपेत् तोयरूपिणि ॥ ५६ ॥

दूसरी राह से उस जल में उस पाप को विलीन करते हुए, अपने से बायें जलरूपी उस पाप को धरती पर फेंक दे॥ ५६ ॥

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य त्रिरर्घ्यं विनिवेदयेत् ।
गायत्र्या मूलया पश्चात् तर्पणं मूलया तथा ॥ ५७ ॥

दोनों हाथों को धोकर पहले आचमन करे फिर मूल गायत्री मंत्र से तीन अर्घ्य दे, फिर मूलमन्त्र से ही तर्पण करे॥ ५७ ॥

अर्घ्यं च तर्पणं चैव सूर्यमन्त्रेण तु त्रिधा ।
कालत्रयेऽपि चैतावत् समानं शङ्करीरितम् ॥ ५८ ॥

फिर अर्घ्य और तर्पण सूर्य मन्त्र से तीन बार करे। हे शङ्करी, तीनों काल में यह कर्म समान रूप से ही करना चाहिए॥ ५८ ॥

ततः कालत्रयो मूलानाहताज्ञासु वै क्रमात् ।
बालाबीजत्रयं पीतरक्तशुक्लप्रभं स्मरन् ॥ ५९ ॥

प्रातः सायं और मध्याह्न इन तीनों काल में, मूल, अनाहत और आशा में पीत,रक्त और शुक्ल प्रभावाले बाला के बीजत्रय का स्मरण करे॥ ५९ ॥

सुषुम्णावर्त्मना न्यस्त आवाह्याकाशसंस्थिते ।
अग्न्यर्कचन्द्ररूपे तु मण्डले तत उत्थितम् ॥ ६० ॥

सुषुम्णा की राह से आकाश में संस्थित उस धरोहर को जो अग्नि, सूर्य और चन्द्ररूप में उत्थित हैं उनका आवाहन करे॥ ६० ॥

वाग्भवीं कामराज्ञीं चामृतेशीं विमृशेद् धिया ।
पीतवर्णां पीतवस्त्रस्त्रग्भूषासमलङ्कृताम् ॥ ६१ ॥

पीतवर्ण अर्थात् गौराङ्गी, पीले वस्त्र, पीली माला, पीतवर्ण स्वर्णाभूषणों से सजी वाग्भवा, कामराज्ञी तथा अमृतेशी की बुद्धि में चिन्तन करे॥ ६१ ॥

जपमालापुस्तहस्तां बालां त्रिनयनां स्मरेत् ।
रक्तवर्णां रक्तवस्त्रस्त्रग्भूषासमलङ्कृताम् ॥ ६२ ॥

लाल वर्णवाली, लाल वस्त्र, लाल माला, लाल आभूषणों से अलङ्कृत, तीन आँखों वाली, जपमाला और पुस्तक हाथ में लिये, देवी बाला का स्मरण करे॥ ६२ ॥

पाशाङ्कुशवराभीतिधरां तारुण्यसंयुताम् ।
शुक्लवर्णां शुक्लवस्त्रस्त्रग्भूषासमलङ्कृताम् ॥ ६३ ॥

अपने चारो हाथों में क्रमशः बेड़ी या जंजीर, अङ्कुश वर, अभयदान, धारण करनेवाली, युवती, श्वेतवर्ण, श्वेतमाला, और श्वेत आभूषणों से अलंकृत॥ ६३ ॥

पाशाङ्कुशाक्षस्त्रक्पुस्तधरां वृद्धां त्रिलोचनाम्।
ध्यात्वैवं मानसैरिष्ट्वा त्रिरर्ध्यं परिकल्पयेत्॥६४॥

अपने चारो हाथों में क्रमशः पाश, अङ्कुश, अक्षमाला और पुस्तक धारण करनेवाली तीन आँखों वाली वृद्धा का ध्यान कर, मानस पूजा के बाद तीन अर्घ्य दे॥६४॥

वाक्कामशक्तिसंज्ञाभिर्गायत्रीभिः क्रमादुमे।
त्रिः सन्तर्प्य च तद्बीजैराचम्य प्रजपेदथ॥६५॥

वागीश्वरी, कामेश्वरी तथा शक्तिश्वरी नामक गायत्री से क्रमशः हे उमे, तीन बार अच्छी तरह तर्पण कर, उनके बीजाक्षरों से अलग अलग आचमन कर उनका जप करे॥६५॥

शतधा मूलगायत्रीं तत्तद्गायत्रिकां तथा।
उपतिष्ठेत् ततो देवीं स्तोत्रमन्त्रैर्जपान्ततः॥६६॥

मूल गायत्री मन्त्र का सौ प्रकार से या सौ खण्डों में जप करे फिर उनकी गायत्रिका करे। इसके बाद देवी के समीप बैठे और अन्ततः स्तोत्र और मन्त्र का जप करे॥६६॥

वागीश्वरीं विद्महे च कामेश्वरीं च धीमहि।
तन्नः शक्तिः प्रचोदयान्मूलगायत्रिका त्वियम्॥६७॥

वागीश्वरी को मैं जानता हूँ, कामेश्वरी को मैं समझता हूँ, ये महाशक्ति मुझे सही दिशा में प्रेरित करे। यही मूलगायत्रिका कहलाती हैं॥६७॥

एतत्कूटत्रयादौ तु मूलकूटत्रयं न्यसेत्।
वागीश्वरीं कामेश्वरीं शक्तीश्वरीं च धीमहि॥६८॥

ये प्रारम्भिक कूटत्रय (विषम प्रश्नमय) हैं। तत्पश्चात् मूल कूट त्रय को रक्खें। मैं वागीश्वरी, कामेश्वरी और शक्तीश्वरी की विभावना करता हूँ॥६८॥

मुक्तिः क्लिन्नाऽमृतान्ते तु वदेद् देवि प्रचोदयात्।
त्रिपुरां देविं विद्महे सर्वाद्यं कूटमीश्वरि॥६९॥

अन्त में अमृत से भींगी मुक्ति देनेवाली देवी मुझे प्रेरित करे। सर्वप्रथम कूट ईश्वरी त्रिपुरा देवी को मैं जानता हूँ॥६९॥

सर्वादावेकशो बीजमेवं गायत्रिकात्रयम्।
एवं सन्ध्यां समाप्याथाचम्य वै प्रजपेदुमे॥७०॥

हे उमे, सर्वप्रथम एक एक कर तीनों गायत्रिका के बीज का उपस्थापन करे। इस तरह संध्या समाप्त कर आचमन करे, फिर जप करे॥७०॥

नाथात्मकत्वेन तथा घटिकात्मकत्वेन च।

नवधा षष्टिधा चैवं पारायणमथापि वा ॥ ७१ ॥

नामपारायण, घटिकापारायण नवधा अथवा षष्टिधा विधान करे॥ ७१ ॥

एवं सन्ध्यामुपासित्वा त्वजपाजपमाचरेत् ।
प्रातःस्मृत्युत्तरं वापि शुचिर्भूतो महेश्वरि ॥ ७२ ॥

इस तरह सन्ध्या की उपासना कर अजपा जप करे। प्रातःकाल इष्ट स्मरण के बाद, हेमहेश्वरि, पवित्र होकर॥ ७२ ॥

प्राणानायम्य मन्त्रेण पूर्वजप्तं निवेदयेत् ।
सङ्कल्पयेत् तत्र चादौ कालेनैतावता कृतम् ॥ ७३ ॥

फिर, मन्त्र से प्राणों को फैलाकर पूर्वकृत जप को समर्पित करे। यथावसर किये गये ये जप सर्वप्रथम संकल्प कर ही समर्पित करे॥ ७३ ॥

एतावत्संख्यकं देवि उच्छ्वासाद्यात्मकं जपम् ।
गणेशादिदेवताभ्यस्त्वर्पयामीति शङ्करि ॥ ७४ ॥

हे देवि शङ्करि, वायुरन्ध्रादि द्वारा किये गये इतनी संख्या के ये जप गणेशादि देवताओं के लिए मैं समर्पित करता हूँ॥ ७४ ॥

सङ्कल्प्यैवं देवताभ्यो यथाभागं निवेदयेत् ।
वादिवर्ण चतुष्कोणयुक्ते पीतचतुर्दले ॥ ७५ ॥

इस तरह सङ्कल्प कर वादिवर्ण चार कोणों से युक्त पीले रङ्ग के चतुर्दल पर देवताओं के लिए हिस्से के मुताबिक निवेदित करे॥ ७५ ॥

आधारे तु गणेशाय षट्शतं जपमर्पये ।
बादिवर्णाख्यषट्पत्रे विद्रुमाभे स्वयम्भुवे ॥ ७६ ॥

आधार पर श्रीगणेश के लिए छः सौ जप समर्पित करे। वादिवर्णाख्य मूँगे की आभावाले षट्पत्र पर स्वयंभुव अर्थात् ब्रह्मा के लिए जप समर्पित करे॥ ७६ ॥

स्वाधिष्ठाने षट्सहस्त्रसंख्याकं जपमर्पये ।
डादिवर्णयुते विद्युन्निभे दशदलोज्ज्वले ॥ ७७ ॥

स्वाधिष्ठान में डादिवर्णयुक्त बिजली की तरह कान्तिवाले दश उज्ज्वलदल पर छः हजार संख्या का जप समर्पित करे॥ ७७॥

विष्णवे मणिपूरे षट्सहस्त्रं जपमर्पये ।
काद्यक्षरयुते नीलप्रभे द्वादशपत्रके ॥ ७८ ॥

कादि अक्षरयुक्त नीले रंग के बारह पत्तेवाले मणिपूर में विष्णु के लिए छः हजार जप समर्पित करे॥ ७८ ॥

अनाहते षट्सहस्रजपं रुद्राय चार्पयेत् ।
स्वरयुक्ते धूम्रवर्णे षोडशच्छदशोभिते ॥ ७९ ॥

स्वरयुक्त धूमवर्ण, सोलह पत्तों से सुशोभित अनाहत में छः हजार जप रुद्र के लिए समर्पित करे ॥ ७९ ॥

जीवात्मने विशुद्धाख्ये सहस्रं जपमर्पयेत् ।
हक्षयुक्ते तप्तहेमनिभे द्विदलसंयुते ॥ ८० ॥

ह-क्षयुक्त, तपे सोने की तरह दमकते दो दलों से युक्त विशुद्धाख्य में जीवात्मा के लिए एक हजार जप अर्पित करे ॥ ८० ॥

सहस्रं जपमाज्ञायामर्पयेत् परमात्मने ।
अशेषमातृकायुक्ते चन्द्राभे शतपत्रके ॥ ८१ ॥

अशेष मातृका से युक्त चन्द्रशोभा समन्वित शतपत्र वाले आज्ञाचक्र में एक हजार जप परमात्मा के लिए अर्पित करे ॥ ८१ ॥

अकुलाख्ये श्रीगुरवे सहस्रं जपमर्पयेत् ।
अजपाजपमेवं वै समर्प्य परमेश्वरि ॥ ८२ ॥

हे परमेश्वरि, अकुल नामक अजपाजप की तरह ये सहस्रसंख्याक जप श्रीगुरु को समर्पित करे ॥ ८२ ॥

श्वासोच्छ्वासैः षष्टिसंख्यैरेकः प्राणोऽभिधीयते ।
षट्प्राणैर्घटिका प्रोक्ता षष्टिघट्यो दिनं भवेत् ॥ ८३ ॥

साठ श्वास-उच्छ्वास के एक प्राण होता है और छः प्राणों अर्थात् साँसों की एक घटिका होती है और साठ घटिका का एक दिन होता है ॥ ८३ ॥

एकविंशतिसाहस्रं षट्शतं कीर्तितं दिने ।
हंसमन्त्रः प्राणरूपी दिनरात्रं प्रवर्तते ॥ ८४ ॥

दिन में इक्कीस हजार को षट्शत कहा जाता है। प्राणरूपी हंसमन्त्र दिनरात में प्रवर्तित होता है ॥ ८४ ॥

प्रोक्तसंख्याजपस्तेन प्राणिनामजपं भवेत् ।
अज्ञानान्मोहितः प्राणी न विजानात्यमुं जपम् ॥ ८५ ॥

ऊपर बतलाई गयी संख्या का जप प्राणियों के लिए अजपाजप कहलाता है। अपने अज्ञान से मोहित प्राणी इस जप को नहीं जानते ॥ ८५ ॥

ज्ञात्वा फलं समाप्नोति संकल्पाच्च समर्पणात् ।
अद्यैतत्कालमारभ्य भाविकालावधीश्वरि ॥ ८६ ॥

इसे जानकर फल प्राप्त होता है। हे महेश्वरि, संकल्प से, समर्पण से आज इस समय से प्रारम्भ कर आनेवाले काल की अवधि तक एकरूपता होती है॥ ८६॥

श्वासोच्छ्वासात्मकं प्रोक्तसंख्यं संकल्पयेत् ततः।
न्यसेद् ऋष्यादिकं तस्य तत्प्रकारं शृणु प्रिये॥८७॥

श्वास–उच्छ्वासात्मक बतलाई गई संख्या का इसके बाद संकल्प करे। इसके बाद ऋष्यादि का न्यास करे। इसका प्रकार मैं बतलाता हूँ, हे प्रिये, तुम सुनो॥ ८७॥

ऋषिर्हंसोऽव्यक्तगायत्रीच्छन्दः सम्प्रकीर्तितम्।
देवता परमो हंसो हंसमित्यादि वै न्यसेत्॥८८॥

इस मंत्रके अव्यक्त परब्रह्म ऋषि हैं और गायत्री छन्द है, परमात्मा देवता है तथा परब्रह्म ही न्यास है॥ ८८॥

एकैकं बीजकं शक्तिः कीलकं चोभयं भवेत्।
विनियोगस्तु मोक्षार्थं ध्यायेत् तदनु शङ्करि॥८९॥

एक एक बीज शक्ति है; और दोनों ओर कीलक हैं; और मोक्ष के लिए विनियोग। हे शङ्करि, इसके बाद ध्यान करना चाहिए॥ ८९॥

चिद्विमर्शमयं दिव्यं शिवशक्तियुगात्मकम्।
भोक्तृभोग्यस्वरूपं च स्वस्वभावमहं भजे॥९०॥

चिद्विमर्शमय, परमदिव्य, शिवशक्तियुक्त, भोक्तृभोग्यस्वरूप अपने स्वभाव स्वरूप उस अभीष्ट को मैं भजता हूँ॥ ९०॥

दक्षाङ्गे स्फटिकाभासं शूलमालालसत्करम्।
भस्माक्षचर्मसर्पाद्यैः शोभितं जटिलं शिवम्॥९१॥

दाहिने अङ्ग में स्फटिक की आभा है, त्रिशूलमाला से हाथ सुशोभित है, भस्म, रुद्राक्ष, व्याघ्रचर्म सर्प आदि से जटाधारी शिव सुशोभित हैं॥ ९१॥

वामाङ्गे तप्तहेमाभं पाशचापलसत्करम्।
नवरत्नविभूषादिवस्त्रकोटीरशोभितम्॥९२॥

उस अर्द्धनारीश्वर शिव का बायाँ अङ्ग शुद्ध सुवर्ण की आभा से युक्त है, पारा और चाप से हाथ शोभित हैं, नवरत्न के आभूषण तथा वस्त्रकोटीर से सुशोभित हैं॥ ९२॥

अर्धनारीश्वरं देवमहङ्कारतनुं स्मरेत्।
मानसैस्तु ततोऽभ्यर्च्य चैवं प्रतिदिनं भवेत्॥९३॥

इस तरह अर्द्धनारीश्वर देव महादेव जिनका शरीर अहंकार का है, उनका स्मरण करना चाहिए। इसके बाद प्रतिदिन मानसिक पूजन करे॥ ९३॥

एवं देवेशि सम्प्रोक्तस्त्वजपाविधिरुत्तमः ।
एवमाचरतां नित्यं मुक्तिः करतले स्थिता ॥ ९४॥

हे देवेशि! इस तरह मैंने अजपाजप की विधि बतला दी है। इस तरह जो नित्य आचरण करता है, मुक्ति उसके हाथ में ही रहती है॥ ९४॥

नैतस्य सदृशो देवि जपोऽन्यो भुवि विद्यते ।
एतत् पातकदावानां प्रलयानलसम्मितम् ॥ ९५ ॥

हे देवि, इस संसार में इसकी तरह कोई अन्य जप है ही नहीं। यह पापरूपी जंगल के लिये, प्रलयाग्नि की तरह है॥ ९५॥

सुभक्ताय विरक्ताय साधवे समुदीरयेत् ।
नान्यस्य लोभान्मोहाद् वा चान्यथा नाशमाप्नुयात् ॥ ९६ ॥

सुन्दर भक्त, विरक्त, एवं साधु पुरुषों को ही यह विधि बतलानी चाहिए। लोभ, मोह अथवा किसी अन्य विशेष कारण से अनुपयुक्त व्यक्ति को यदि यह विधि बतलाई जाय तो उसका नाश निश्चित रूप से हो जाता है॥ ९६॥

एवं देवेशि सन्ध्यादि कर्त्तव्यं नित्यमेव तु ।
अशौचे सति देवेशि न कुर्यात् पूजनं तथा ॥ ९७॥

हे देवेशि, इस तरह **प्रतिदिन सन्ध्या** करनी चाहिए। हाँ, यदि अशौच हो जाय तो अशौच में पूजन नहीं करना चाहिए॥ ९७॥

सन्ध्यादि संक्षेपतो वै कुर्यान्नैव त्यजेत् क्वचित् ।
मन्त्रोच्चारो मानसः स्यात् कर्मसन्ध्यादिकं चरेत् ॥ ९८ ॥

संक्षेप में भी हे देवि, प्रतिदिन सन्ध्या करनी चाहिए, कभी इसका त्याग न करे। मंत्र का उच्चारण मानसिक होना चाहिए। कर्मसन्ध्यादि तो अवश्य करे॥ ९८॥

अशौचे मुख्यमेव स्यान्नाङ्गमेवं महापदि ।
आलस्येनान्यथा वापि चाङ्गलोपे पतत्यधः ॥ ९९ ॥

अशौच मुख्याचार ही करना चाहिए। महाविपत्ति में आङ्गिक प्रयोग ही करना चाहिए। आलस्यवश अङ्गलोप करनेवाले अधोगामी होते हैं॥ ९९॥

जाताऽशौचे न्यासजपौ यथावत् तु समाचरेत् ।
बुद्धिपूर्वकृतेऽङ्गस्य लोपे साकल्यलोपतः ॥ १००॥

अशौच हो जाने पर न्यास और जप यथावत् करना चाहिए। बुद्धिपूर्वक अर्थात् जान-बूझकर अङ्गलोप करने पर सम्पूर्ण क्रिया का लोप हो जाता है॥ १००॥

यत्पापं तद्भवेद् देवि तस्माद् बुद्ध्या न लोपयेत् ।

अर्घ्यस्तथा मूलदेव्या जपः सन्ध्यासु मुख्यकम् ॥ १०१ ॥

इसके लिए जिन पापों का विधान है, वह होता ही है; इसीलिए जान-बूझकर इसका त्याग नहीं करना चाहिए। अर्घ्य तथा मूलदेवी का जप सन्ध्या में मुख्य कर्म है ॥ १०१ ॥

अन्यदङ्गं क्रमाल्लोपे शतधा दशधा जपः ।
सनक्षत्रः समानार्कस्तथार्धार्कस्तु मुख्यकः ॥ १०२ ॥

दूसरा अङ्गलोप होने पर क्रमशः शतधा एवं दशधा जप करना चाहिए। सनक्षत्र, समानार्क एवं अर्धार्क ही मुख्य होता है ॥ १०२ ॥

प्रातर्मध्याह्नसन्ध्याख्यकालो मध्यः प्रकीर्तितः ।
द्वितीयकालपर्यन्तो गौणकालः प्रकीर्तितः ॥ १०३ ॥

प्रातः, मध्याह्न एवं सायं सन्ध्या कही गई है, इनमें मध्य सन्ध्या ही विशेषरूप से कही गईहै क्योंकि, द्वितीय काल पर्यन्त गौणकाल कहलाता है ॥ १०३ ॥

प्रातःसन्ध्या प्राङ्मुखेन कर्तव्याऽन्यत्र वै शिवे ।
उदङ्मुखेन सूर्याभिमुखश्चार्घ्यं जपं चरेत् ॥ १०४ ॥

हे शिवे, प्रातः सन्ध्या पूर्वाभिमुख करनी चाहिए, अन्यत्र उत्तराभिमुख करना चाहिए, सूर्याभिमुख अर्घ्य दे और जप करे ॥ १०४ ॥

इत्येवं कथितं प्रातःकृत्यं सन्ध्यादिकं तथा ।
संक्षेपादर्णवप्रोक्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १०५ ॥

इस तरह मैंने प्रातःकृत्य बतलाया तथा सन्ध्यादि का वर्णन किया। संक्षेप में मैंने अर्णव की व्याख्या की, फिर आगे क्या सुनना चाहती हो, बोलो ॥ १०५ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे सन्ध्याविधिर्द्वितीयस्तरङ्गः ॥ २ ॥

इस तरह श्री त्रिपुरार्णव में कर्मफल बतलाकर सन्ध्याविधि नामक
यह द्वितीय तरङ्ग समाप्त हुआ ॥

●

अथ तृतीयस्तरङ्गः

(सन्ध्योपास्तेरनन्तरकर्माणि)

गौर्युवाच

महेश्वर महादेव सन्ध्योपास्तेरनन्तरम् ।

यत् कर्त्तव्यं तद् वदस्व यथोक्तवदतिस्फुटम् ॥ १ ॥

हे महेश्वर, हे महादेव, सन्ध्योपासना के बाद किये जाने वाले जो कर्म हैं उन्हें पूर्वोक्त की तरह साफ-साफ शब्दों में हमें समझा दे ॥ १ ॥

महेश्वर उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि त्रिपुरार्णवसंस्थितम् ।
संक्षेपादेव सन्ध्यायाः पश्चात्कर्तव्यमद्रिजे ॥ २ ॥

महादेव : हे देवि, सुनो, त्रिपुरार्णव में एकत्र किये गये विषयों को, हे पार्वति! मैं अत्यन्त संक्षेप में तुम्हें बतलाता हूँ कि संध्योपासना के बाद साधकों को क्या करना चाहिए? ॥ २ ॥

निरुक्तविधिना सन्ध्यामुपासित्वाऽथ साधकः ।
पूजामन्दिरमागच्छेदागमोक्तसुलक्षणम् ॥ ३ ॥

निरुक्त विधि से सन्ध्योपासना के बाद साधक आगम विधि से निर्मित पूजा मन्दिर में प्रवेश करे ॥ ३ ॥

तत्र द्वारे यजेद् देवि तद्विधानं वदामि ते ।
सामान्यार्घ्यस्य विधिना मण्डलेऽर्घ्यं प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥

हे देवि, वहाँ द्वारपूजा करनी चाहिए। उस पूजा का विधान मैं तुम्हें बतलाता हूँ। सामान्य अर्घ्य की विधि से मण्डलार्घ्य की पूजा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

अखण्डमण्डलाकारं विश्वं व्याप्य व्यवस्थितम् ।
त्रैलोक्यं मण्डितं येन मण्डलं तत् सदाशिवम् ॥ ५ ॥

अविकल अर्थात् सम्पूर्ण मण्डलाकार गोल, समस्त विश्व में फैलकर तीनों लोक की शोभा बढ़ाते हुए जो व्यवस्थित है, वे सदाशिव हैं ॥ ५ ॥

इत्यभ्यर्च्य मण्डलेशं तर्पयेत् पूजयेदपि ।
अविघ्नं च महालक्ष्मीं तद्वदेव सरस्वतीम् ॥ ६ ॥

इस तरह पूजन कर मण्डलेश का पूजन और तर्पण करे। विघ्नरहित लक्ष्मी का पूजन करे, ठीक उसी तरह सरस्वती का भी पूजन करे ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वे सम्पूज्य गणपक्षेत्रपालौ तथैव च ।
पूज्ये च गङ्गा यमुने तथा धात्रीविधात्रिके ॥ ७ ॥

दरवाजे के ऊपरी भाग में गणपति और क्षेत्रपाल, दोनों पार्श्व भागों में गङ्गा, यमुना, धात्री और विधात्री की पूजा करे ॥ ७ ॥

शङ्खपद्मनिधी चैव पार्श्वयोर्दक्षवामतः ।
देहल्यामस्त्रदेवीं च ब्राह्म्यादिमातृकाष्टकम् ॥ ८ ॥

साथ ही पार्श्व में शङ्ख और पद्मनिधि की भी पूजा करे। देहली में अस्त्र देवी, और ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करे॥ ८॥

असिताङ्गमुखानष्टभैरवाँश्चापि पार्श्वयोः ।
अविघ्नाद्यास्तु द्वारेशास्तत्तत्स्थाने वरानने ॥ ९ ॥

दरवाजे के दोनों बगलों में असिताङ्गादि अष्ट भैरवों की पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार हे वरानने, अविघ्न आदि द्वारों की पूजा तत्तत् स्थानों पर करनी चाहिए॥ ९॥

नामोऽन्तनामभिश्चोक्तैः सन्तर्प्याः कुसुमोद्धृतैः ।
सूर्यास्त्रन्यासमन्त्रेण सन्तर्प्यार्चास्त्रदेवताः ॥ १० ॥

उक्त नाम तथा अन्तनामों से फूल हाथ में लिए, सूर्यास्त्रन्यासमन्त्र से सन्तर्पित कर अस्त्र देवता की पूजा करे॥ १०॥

एवं द्वारे मण्डलं तु पूजयेत् परमेश्वरि ।
इदं तन्मण्डलं देवि प्रारभ्यैतस्य पूजनम् ॥ ११ ॥

हे परमेश्वरि, इस तरह द्वार पर मण्डल पूजन करे। हे देवि, यह उस मण्डल से प्रारम्भ कर उसका पूजन करे॥ ११॥

मार्तण्डभैरवार्घ्यान्तं मण्डलं प्रोच्यते शिवे ।
सदाशिवात्मकं यस्मान्मण्डलं तन्मयत्वतः ॥ १२ ॥

हे शिवे, मार्तण्डभैरव के अर्घ्य तक ही मण्डल कहा गया है। मण्डल सारा शिवात्मक है। अतः मण्डल को तन्मयत्व कहा गया है॥ १२॥

सर्वे सदाशिवात्मानः प्रविष्टास्तस्य मध्यतः ।
सर्वे द्विजातयस्तत्र सदाशिवमयत्वतः ॥ १३ ॥

उसके बीच में सबके सब शिवात्मक ही प्रविष्ट हैं। सदाशिवमयत्व होने के कारण ही सब द्विजातियाँ वहाँ उपस्थित हैं॥ १३॥

नान्तरं तत्र वै पश्येत् पश्चात्सर्वे यथा पृथक् ।
मध्ये भेदं बहिश्चैक्यं कृत्वा पातित्यमाप्नुयात् ॥ १४ ॥

इनमें कोई अन्तर न देखें, पश्चात् सबके सब यथा पूर्व पृथक् होते हैं। मध्य में भेद और बाहर ऐक्य देखने वाले पतित हो जाते हैं॥ १४॥

मण्डले ये तु सम्प्रोक्ता धर्मास्तेऽत्रैव सम्मताः ।
ततः प्राणस्य मार्गेण वामां सङ्कोचयेत् तनुम् ॥ १५ ॥

मण्डल में जो बतलाये गये हैं, वे यहाँ ही धर्मसम्मत हैं। इसके बाद प्राणों के मार्ग से श्रीगौरी को शरीर में प्रवेश कराये॥ १५॥

प्रविशेत् पूजनगृहे देवतायास्तु सम्मुखे ।
कल्पयेदासनं स्वस्य चैलाजिनकटात्मकम् ॥ १६ ॥

इस तरह पूजागृह में देवता के सन्मुख प्रवेश करे। देवता के सन्मुख अपने लिए कपड़े या मृगछाल या हस्तिचर्म का आसन बिछायें॥ १६॥

कार्पासपट्टोर्णजातं वस्त्रं वेत्रसमुद्भवम् ।
दर्भजं मुञ्जजं वापि कटं व्याघ्रसमुद्भवम् ॥ १७ ॥

रूई के वस्त्र या ऊन के वस्त्र, या बेंत के बने आसन, दूब, मुञ्ज की बनी चटाई, या व्याघ्रासन होना चाहिए॥ १७॥

हरिणं सिंहजं वापि समग्रं खण्डमेव वा ।
लोमहीनं कीटजग्धं दुर्गन्धं चापि वर्जयेत् ॥ १८ ॥

मृगचर्म या सिंहचर्म पूरा हो या अधूरा आसन होना चाहिए। पर यही लोमहीन, कीड़े लगा दुर्गन्धयुक्त आसन नहीं होना चाहिए॥ १८॥

ऊर्ध्वपृष्ठं च तत् कुर्यात् समग्रे मस्तके विशेत् ।
दक्षिणाग्रं वर्जयेद् वै दग्धं च स्फुटितं तथा ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वपृष्ठ आसन अर्थात् ऊपर की ओर पीठ वाले सम्पूर्ण आसन के मस्तक पर बैठें। दक्षिण की ओर अग्रभाग, जले या फटे आसन पर नहीं बैठना चाहिए॥ १९॥

अधश्चर्ममयं चोर्ध्वे वस्त्रजं परिकल्पयेत् ।
भूमौ समाविश्य कर्म विधिनाऽपि कृतं शिवे ॥ २० ॥

हे शिवे, चर्मासन नीचे की ओर और वस्त्रासन ऊपर की ओर करना चाहिए। ये आसन धरती पर बिछाकर विधिपूर्वक अपना कर्म करे॥ २०॥

तन्निरर्थकतामेति भिन्नकुम्भस्थतोयवत् ।
भूतानुत्सार्य भूमिं तु प्रार्थयेत् पर्वतात्मजे ॥ २१ ॥

फूटे घड़े में जल-संग्रह का प्रयास जैसे निरर्थक है, विधिहीन कर्म भी उसी तरह का निष्फल प्रयास है। हे पार्वती, इसके बाद भूतोत्सारणपूर्वक भूमि की प्रार्थना करे॥ २१॥

'भूमि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्' ॥ २२ ॥

हे भूमि, तुमने संसार को धारण किया है और हे देवि, तुम्हें भगवान् विष्णु ने पकड़ रक्खा है और तुमने मुझे धारण किया है, अतः हे देवि, मेरे आसन को तुम पवित्र करो॥ २२॥

इति सम्प्रार्थ्य भूं भूम्यै नम इत्यर्चयेद् भुवम् ।
आसनं ह्रीमनन्तासनाय इत्यभिपूजयेत् ॥ २३ ॥

इस तरह भूमि की प्रार्थना कर 'ॐ भूँ भूम्यै नमः' इस मंत्र से धरती की पूजा करे। इसी तरह 'ॐ ह्रीं अनन्तासनाय नमः' इस मन्त्र से आसन की पूजा करे॥ २३॥

उपविश्यासने पश्चाद् दक्षवामांसयोर्हृदि ।
गुरून् गणपतिं मूलदेवतां प्रणमेत् क्रमात् ॥ २४ ॥

पहले आसन पर बैठकर बाद में दाँये-बायें कन्धे और हृदय में क्रमशः गुरु, गणपति, मूलदेवता को प्रणाम करे॥ २४॥

त्रिर्वामपार्ष्णिघातं तु आसनाधो विधाय च ।
फडित्यतो नमः पश्चात् सुदर्शनपुरःसरम् ॥ २५ ॥

आसन के नीचे तीन पदाघात बायें पैर से करे। 'फट्' पहले और 'नमः' पीछे सुदर्शनपूर्वक उच्चारण करे॥ २५॥

अस्त्रमन्त्रेण विन्यस्य कुर्याद् दिग्बन्धनं ततः ।
तलभूखेचरान् विघ्नान् त्रिभिरेवं निरस्य च ॥ २६ ॥

अस्त्रमन्त्र से विन्यास करे। इसके बाद दिग्बन्धन करे। आकाश, पाताल और पृथ्वी के विघ्नों को इस तरह तीन बार निष्कासन करे॥ २६॥

विभावयेत् स्वपरितो वह्निप्राकारमद्रिजे ।
भूशुद्धिमेव निर्वर्त्य भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ २७ ॥

हे पार्वती, अपनी चारों ओर आग की चहार दीवारी का अनुभव करे, फिर भूशुद्धि करके भूतशुद्धि करे॥ २७॥

प्राणानायम्य हंसेन प्राणवायुं विचिन्तयेत् ।
प्रदीपकलिकाकारं ततस्तेनाभिघातिताम् ॥ २८ ॥

प्राणवायु को अर्थात् साँसों को नियन्त्रित कर, हंस अर्थात् परमात्मा के स्वरूप में उस प्राण वायु को दीपक की कलिका के आकार में सोचे, इसके बाद उससे अभिघात करे॥ २८॥

मूलाधारे संस्थितां तां कुण्डलिन्यभिधां पराम् ।
प्रोत्थितामूर्ध्वमार्गेण जीवेन सहितां तथा ॥ २९ ॥

मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी नामक उस ब्रह्मविद्या अर्थात् नादरूपी वाणी को ऊर्ध्वमार्ग से जीव के साथ ऊपर उठाये॥ २९॥

देहस्थदेवताभिश्च सर्वोर्ध्वस्थे परे शिवे ।
प्रविश्यैक्यं गतां ध्यात्वा देहं शून्यं विचिन्तयेत् ॥ ३० ॥

देह में उपस्थित देवताओं के साथ सबसे ऊपर हे शिवे, परब्रह्म हैं। भीतर प्रविष्ट होकर एकरूपता को प्राप्त उस परमेश्वर का ध्यान कर, देह को शून्य के रूप में सोचे॥ ३०॥

पूर्वोक्तवद् वामकुक्षौ चिन्तयेत् पापपूरुषम्।
तद्युक्तं तं स्थूलदेहं यं रं वं प्रोच्चरेत् क्रमात्॥ ३१॥

पहले कही गयी विधि की तरह बायीं कोख में पापपुरुष की उपस्थिति को सोचें। उसके उपयुक्त उसकी स्थूल देह को क्रमशः यं रं वं का उच्चारण करे॥ ३१॥

पुरकुम्भरेचकेषु यावत् स्याद्वेगरोधनम्।
संशोषितं विनिर्दग्धं तद् भस्माप्लावितं तथा॥ ३२॥

पूरक, कुम्भक और रेचक नामक प्राणवायु का गतिरोध करने की जब तक क्षमता है, तब तक उन्हें शुद्ध कर तथा विनिर्दग्ध कर उसी तरह उन्हें भस्माप्लावित करे॥ ३२॥

वायुर्वह्न्यमृतैलं हं सोहं चोच्चार्य पूर्ववत्।
आचरन् पूरकाद्यं तु घनीभूतं च चेतितम्॥ ३३॥

फिर, वायु, वह्नि और अमृत से पहले की तरह लं, हं, सोऽहम् का उच्चारण कर पूरक प्रभृति को चेतना से घनीभूत बनाये॥ ३३॥

हृद्यागतं तथा जीवं भावयेत् प्राणवल्लभे।
जीवात्मानो निर्गताश्च स्वं स्वं स्थानं समाश्रिताः॥ ३४॥

हृदय में आये वैसे जीवों की हे प्राणवल्लभे भावना करे। देह से जीवात्मा के बाहर निकल जाने पर समागत जीव अपनी अपनी जगह पकड़ ले॥ ३४॥

देवताः कुण्डलिन्याद्या ध्यायेद् देवमयीं तनुम्।
भूतशुद्धिं विधायाथ प्राणस्थापनमाचरेत्॥ ३५॥

इस देवमय शरीर में कुण्डलिनी आदि देवताओं का ध्यान करे। इसके बाद भूतशुद्धि का विधान कर प्राण की स्थापना करे॥ ३५॥

मम प्राणा इह प्राणा मम जीव इह स्थितः।
मम सर्वेन्द्रियाणीति इह पश्चात् स्थितानि च॥ ३६॥

मेरे प्राण इसमें, प्राण में मेरे जीव इसमें स्थित हों। तत्पश्चात् मेरी सारी इन्द्रियाँ इसमें प्रतिष्ठित हो॥ ३६॥

मम वाङ्मन इत्यन्ते श्रोत्रत्वक्चक्षुरेव च।
जिह्वा-घ्राण-पद-प्राणा इहागत्य सुखं चिरम्॥ ३७॥

मेरी वाणी, मेरा मन अन्ततः इसमें प्रतिष्ठित हों, कान, त्वचा, आँखें, जिह्वा, घ्राण, पदप्राण, प्रभृति यहाँ आकर, सुखपूर्वक चिरकाल तक निवास करे॥ ३७॥

तिष्ठन्त्वग्निप्रिया चैवं खण्डानां स्याच्चतुष्टयम् ।
ममादिकं तदादौ तु प्रत्येकं बीजयोजना ॥ ३८ ॥

चार खण्डों में विभक्त होकर, अग्निप्रिया ठहरें। ममादिक प्रत्येक के आदि में बीजयोजना अर्थात् बीजमन्त्र या बीजाक्षर रूप ध्वनि की पूर्व कल्पना करे ॥ ३८ ॥

आं ह्रीं क्रीं यादिसान्तं तु सबिन्दुं हों ध्रुवं च क्षम् ।
सं हं सश्चापि ह्रीं ॐ वै वदेदष्टादशोन्मितम् ॥ ३९ ॥

आँ, ह्रीँ, क्लीँ य आदि सान्त एवं सविन्दु तथा ह्रीं ध्रुव क्ष सं हंसः भी, ह्रीँ, ॐ— ये अष्टादशोन्मित बोले ॥ ३९ ॥

क्षमादिषट्कं सर्वान्ते प्राणस्य स्थापने मनुः ।
ऋषिर्मूर्तित्रयं छन्दो वेद-त्रितयमेव च ॥ ४० ॥

मन्त्र में प्राण की प्रतिष्ठा या स्थापना में क्षम् आदि छः का सबसे अन्त में विधान किया है। इसका ऋषिमूर्त्तित्रय अथवा वेदत्रय छन्द हैं ॥ ४० ॥

प्राणशक्तिर्देवता च नियोगः प्राणसंस्थितौ ।
आद्यैस्त्रिभिर्बीजशक्तिकीलकानि प्रविन्यसेत् ॥ ४१ ॥

प्राणशक्ति देवता है और प्राणसंस्थिति नियोग है। प्रारंभिक तीन बीजाक्षर कीलक हैं। इसी तरह इनका विशेष विन्यास करना चाहिए ॥ ४१ ॥

ह्रां ह्रीं इत्यादिषट्केन न्यसेत् करषडङ्गकम् ।
बन्धूककुसुमाभासां त्रिनेत्रां लोहिताम्बराम् ॥ ४२ ॥

ह्राँ, ह्रीँ, इत्यादि छः बीजाक्षर से करषडङ्गक न्यास करना चाहिए। गुलदुपहरिया फूल की तरह चमकवाली, तीन आँखोंवाली, लाल-लाल वस्त्रवाली ॥ ४२ ॥

अङ्कुशं च तथा पाशं पौण्ड्रं चापं त्रिशूलकम् ।
कपालं रक्तभरितं दधानां पञ्चसायकान् ॥ ४३ ॥

अंकुश, लोहे का टेढ़ा एक नियन्त्रक हथियार, पाश (सरकनेवाली फंसरीदार रस्सी), पौण्ड्र (एक शंख विशेष), चाप (धनुष), त्रिशूल, लहू से भरे कपाल और पाँच बाणों को धारण करनेवाली ॥ ४३ ॥

रक्ताम्भोधिस्थनौकायां ध्यायेद् रक्ताम्बुजासनाम् ।
इति ध्यात्वा च सम्पूज्य त्रिर्जपेद्धृदयं स्पृशन् ॥ ४४ ॥

रक्तसागर में नाव पर, लाल कमल के आसन पर बैठी देवी का ध्यान करे। ऐसा ध्यान कर, उनकी पूजा कर तीनवार मूलमन्त्र का जपकर हृदय का स्पर्श करे ॥ ४४ ॥

ततस्तु मातृकान्यासं कुर्यात् तद्विधिरुच्यते ।

ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्रीछन्दो देवी सरस्वती ॥ ४५ ॥

इसके बाद मातृका-न्यास करे। **मातृका-न्यास की विधि** बतलाता हूँ। इसके ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और देवी सरस्वती हैं ॥ ४५ ॥

हलो बीजानि तद्वत्तु स्वराः शक्तय ईरिताः ।
व्यक्तिश्च कीलकं मूर्ध्नि वक्रे हृद्गुह्यपादयोः ॥ ४६ ॥
नाभौ च विन्यसेदेतत् क्रमात् साधकपुङ्गवः ।
अं आं मध्ये कवर्गं स्यादिं ईं मध्ये चवर्गकम् ॥ ४७ ॥

ह, ल, बीज हैं, उसी तरह शक्ति स्वर हैं, और व्यक्ति कीलक हैं, माथे, मुँह, हृदय, गुप्ताङ्ग, दोनों पैर और ठोढ़ी में श्रेष्ठ साधक क्रमशः अं और आं के बीच कवर्ग का विन्यास करे, इं और ईं के बीच चवर्ग का विन्यास करे ॥ ४६-४७ ॥

उं (ऊं) मध्ये टवर्गं तु एं ऐं मध्ये तवर्गकम् ।
ओं औं मध्ये पवर्गं तु अं अः मध्ये यष(श)द्वयम् ॥ ४८ ॥

उं और ऊँ के बीच में टवर्ग तथा एं और ऐँ के बीच में तवर्ग का और औं और औँ के बीच में पवर्ग तथा अं और अः के बीच में य, ष (श) का विन्यास करे ॥ ४८ ॥

एवं षडङ्गं विन्यस्य ध्यायेन्मूर्ध्न्यकुलाह्वये ।
कर्णिकायां तु ह्सौःकारं केसरेषु स्वरद्वयम् ॥ ४९ ॥

इस तरह छः अङ्गों का षडङ्ग विन्यास कर मस्तिष्क में शिव का ध्यान करे। कर्णिका (पद्मबीज कोष) में ह्सौः का तथा केसर में स्वरद्वय का आधान करे ॥ ४९ ॥

कचटास्तपयाः शो ल इति पत्रेषु वर्गकान् ।
चतुरस्त्रं बहिस्तस्य वं ठः दिक्कोणयोः क्रमात् ॥ ५० ॥

क, च, ट, त, प, य, श, ल, इन वर्गों को पत्र के चारों कोण पर और उससे बाहर दोनों दिक्कोण पर क्रमशः वं ठः लिखे ॥ ५० ॥

एवं श्रीमातृकादेव्या यन्त्रं ध्यात्वा विभावयेत् ।
मूलाधारात् कुण्डलिनीं षट्चक्रक्रमभेदतः ॥ ५१ ॥

इस तरह **मातृका देवी के यन्त्र का ध्यान** करे और क्रम भेद से षट्चक्र का मूलाधार से कुण्डलिनी की विभावना करे ॥ ५१ ॥

अनुसंरुध्य तन्नादं बिलस्थ-विधुमण्डले ।
प्राणसंरोधसङ्घात-प्रबुद्धां परमेश्वरीम् ॥ ५२ ॥

बिल में उपस्थित वायुमण्डल में उस नाद को रोककर प्राणवायु को अवरुद्ध करे। फिर, प्राण संरोध सङ्घात से प्रबुद्ध उस परमेश्वरी को ॥ ५२ ॥

निविश्य मिलितां तस्मात् प्रस्त्रवामृत-विप्रुषः ।
मातृकार्णा इति स्मृत्वा न्यसेदाधारवर्त्मसु ॥ ५३ ॥

उस बिल में प्रवेश कर उससे टपकती अमृत धारा की बूँदों को, मातृकार्णा का स्मरण कर आधार मार्ग में रक्खे ॥ ५३ ॥

शुद्धावनाहते पूरे स्वाधिष्ठानेऽथ मूलके ।
आज्ञायां नृपसूर्यांशा षट्चतुर्द्विदलं स्मरेत् ॥ ५४ ॥

मूलाधारचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरचक्र, अनाहतचक्र, विशुद्धचक्र, आज्ञाचक्र में नृप, सूर्य और उनके अंश स्वरूप छः, चार और दो दल कलिका स्मरण करे ॥ ५४ ॥

अकडाद्यान् बवाद्यांश्च लक्षौ च क्रमतो न्यसेत् ।
प्रादक्षिण्यात् प्राग्दलादि-चतुस्तार-नमोऽन्तरान् ॥ ५५ ॥

अ क ड आदि तथा ब और व आदि को लाखों की संख्या में क्रमशः न्यास करे, इसी तरह प्रदक्षिणा क्रम से भीतरी प्राग्दलादि एवं चारों तारों को नमस्कार करे ॥ ५५ ॥

न्यसेदेकैकशो वर्णान् पश्चाद् बाह्ये प्रविन्यसेत् ।
स्वराननां स्पर्शशाखा-मध्याङ्गीं यादिसन्धिनीम् ॥ ५६ ॥

एक एक वर्णों का न्यास करे, बाद में बाहरी विन्यास करे। उस देवी के स्वर मुख है, स्पर्श शाखा है, मध्य उनका अज है, यकारादि उनका मध्य जोड़ है ॥ ५६ ॥

चन्द्रचूडां चन्द्रनिभां त्रिनेत्रां पद्मवासिनीम् ।
अक्षमालां सुधाकुम्भं पुस्तकं वरदानकम् ॥ ५७ ॥

जिनकी चोटी में चन्द्रमा विराजित है, चन्द्रमा की तरह मुख की कान्ति है, तीन आँखें हैं, पद्मकोष में निवास करती है। हाथों में अक्षमाला, अमृतकलश, पुस्तक और वरदान हैं ॥ ५७ ॥

दधानां वाङ्मयीं ध्यायेद् विद्याभेदौघमातरम् ।
एवं ध्यात्वा सुपूज्याथ न्यसेद् वक्त्रादिषु क्रमात् ॥ ५८ ॥

ऊपर निर्दिष्ट वस्तुओं को धारण करनेवाली वाङ्मयी देवी का ध्यान करना चाहिए। विद्या के परा-अपरा भेदस्वरूपा औघमाता हैं। इस तरह की देवी का पूजा कर क्रमशः मुखादि में न्यास करे ॥ ५८ ॥

मूर्ध्न्यास्यमण्डले नेत्रश्रोत्रनासाकपोलयोः ।
ओष्ठदन्तयुगे जिह्वा ब्रह्मरन्ध्रे स्वरान् न्यसेत् ॥ ५९ ॥

इसके मण्डल में माथे, आँख, कान-नाक-गाल, होठ, दाँत, जीभ और ब्रह्मरन्ध्र में स्वरों का न्यास करे ॥ ५९ ॥

स्कन्धादि-सन्धिषु तथा शाखामूलतदग्रयोः ।
बाह्वोरेवं पादयोश्च पार्श्वपृष्ठेषु शाङ्करि ॥ ६० ॥

कन्धे आदि के जोड़ों में तथा बाँह, उसकी जड़ तथा उसके अगले हिस्से, हे शंकरि बाँहों की तरह ही दोनों पैरों में, दोनों बगलों में और पीठ भाग में ॥ ६० ॥

नाभौ च जठरे स्पर्शान् क्रमादेकैकशो न्यसेत् ।
हृदि स्कन्ध-द्विककुदि वान्तं चापि प्रविन्यसेत् ॥ ६१ ॥

नाभि में, पेट में, एक-एक का स्पर्श करते हुए उनका न्यास करे। हृदय में, कन्धे पर, दोनों ऊपर उठे भागों पर, उगली हुई वस्तु पर भी न्यास करे ॥ ६१ ॥

हृदयादग्रपर्यन्तं हस्तयोः पादयोस्तथा ।
नाभ्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रान्तं शादिषट्कं प्रविन्यसेत् ॥ ६२ ॥

हृदय से लेकर अग्रपर्यन्त हाथ एवं पैरों में नाभि के अन्त एवं ब्रह्मरन्ध्र के अन्त तक शकारादि छः का विन्यास करे ॥ ६२ ॥

त्रिर्व्यापयेत् ततः पश्चान्मातृकाविद्यया शिवे ।
अन्तर्न्यासस्तु मनसा चानामाङ्गुष्ठमध्यमैः ॥ ६३ ॥

हे शिवे, तत्पश्चात् तीन बार व्यापक करे, इसके बाद मातृका विद्या से अन्तर्न्यास करे। यह न्यास मन से अनामिका, मध्यमा और कनिष्ठा से अन्तर्न्यास करे ॥ ६३ ॥

दक्षहस्तेन बाह्यस्य तस्मिन् वामकरेण तु ।
व्यापकं तु तलाभ्यां स्यात् करयोः परमेश्वरि ॥ ६४ ॥

दायें हाथ से बाहरी न्यास करे, और उसमें बायें हाथ से व्यापक करे, हे महेश्वरि, दोनों हाथों का व्यापक करतल से करना चाहिए ॥ ६४ ॥

ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं चतुस्तारमेतदन्ते मनुं पठन् ।
कर्माणि कुर्यात् सर्वाणि फलं सम्यगभीप्सता ॥ ६५ ॥

सुन्दर कर्मफल पाने के अभिलाषी व्यक्ति को मन्त्र के अनुसार सबसे अन्त में 'ॐ ऐं ह्रीँ श्रीँ' ये चतुस्तार मन्त्र पढ़ते हुए सब कर्म करना चाहिए ॥ ६५ ॥

एतद्बीजैरयोगे तु नेप्सितं सिध्यति क्वचित् ।
अवश्यं कामनासिध्यै बीजान्येतानि योजयेत् ॥ ६६ ॥

ऊपर लिखित इन चार बीज मंत्रों के संयोग के बिना कहीं किसी की कुछ भी अभीप्सित सिद्ध नहीं होते। अतः कामनासिद्धि के लिए इन बीज मंत्रों को अवश्य योजित करे ॥ ६६ ॥

ततस्तु वशिनीन्यासं मूर्ध्नि फाले भ्रुवोऽन्तरे ।

कण्ठहृन्नाभिगुह्येषु पादान्मूर्धान्तमेव च ॥ ६७ ॥

इसके बाद माथे, दोनों भौंहों के बीच फाल में, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुप्ताङ्ग में पैर और चोटी में **'वशिनी' नामक न्यास** करे ॥ ६७ ॥

स्वरान् कचटतान् पञ्च यशौ वर्गान् मनूंस्तथा ।
वशिनी वाग्देवतायै नम एवं प्रविन्यसेत् ॥ ६८ ॥

स्वर, क च ट त ये पाँच, य वर्ग एवं स वर्गों को तथा मन्त्र को एवं वशिनी वाग्देवता को प्रणाम कर विन्यास करे ॥ ६८ ॥

वशिनी कामेश्वरी च मोदिनी विमला तथा ।
अरुणा जयिनी सर्वेश्वरी पश्चात्तु कौलिनी ॥ ६९ ॥

वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला तथा अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी, तथा कौलिनी ॥ ६९ ॥

ततो मूलाक्षरान् देहे मूर्ध्नि फाले दृशोस्तथा ।
वक्त्रे कण्ठे च हृत्पार्श्वनाभिषूपस्थगुह्ययोः ॥ ७० ॥

इसके बाद मूलाक्षरों को देह में, माथे में फालदेश में, आँखों में, मुँह में, कण्ठ में, हृदय में, बगल में, नाभि में, गुप्ताङ्गों में ॥ ७० ॥

ऊरुद्वयेऽङ्घ्रौ क्रमतो न्यसेत् पञ्चदशक्रमात् ।
कामेश्वरीं च वज्रेशीं भगमालिनिकां तथा ॥ ७१ ॥

दोनों कंधे और दोनों पैरों में क्रमशः पन्द्रह का न्यास करना चाहिए। कामेश्वरी, वज्रेशी तथा भगमालिती का ॥ ७१ ॥

आधारानाहताज्ञासु मूर्ध्नि श्रीत्रिपुराम्बिकाम् ।
समष्टिव्यष्टिकूटान्ते नमोऽन्तैर्नामभिर्न्यसेत् ॥ ७२ ॥

मूलाधार, अनाहत और आज्ञाचक्र में और माथे में श्रीत्रिपुराम्बिका को समष्टि और व्यष्टिरूप कूटान्त में नमस्कार पूर्वक नामों से न्यास करे ॥ ७२ ॥

अं आं सौरिति द्विधा तु अङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत् ।
करशुद्धिं विधायेत्थं षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ ७३ ॥

अं आं सौं इन्हें दो प्रकार से अंगूठे आदि में विन्यास करे। इस तरह करशुद्धि का विधान कर षडङ्गन्यास करे ॥ ७३ ॥

ऋष्यादिकं प्रवक्ष्यामि षोडशी-पञ्चदश्ययोः ।
आनन्दभैरव ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः प्रकीर्तितम् ॥ ७४ ॥

षोडशी और पञ्चदशी के ऋष्यादि बतलाता हूँ। इसके आनन्द भैरव ऋषि हैं और पंक्ति इसका छन्द है ॥ ७४ ॥

देवता त्रिपुरसुन्दरी सौभाग्यादि-विद्यका।
कूटत्रयेण क्रमतो बीजं शक्तिश्च कीलकम् ॥ ७५ ॥

महात्रिपुर सुन्दरी इसके देवता हैं, सौभाग्य आदि विद्याएँ हैं, कूटत्रय क्रमशः बीज, शक्ति और कीलक हैं ॥ ७५ ॥

न्यासोऽपि च कराङ्गानां षोडश्याः शृणु ते ब्रुवे।
पञ्चत्रिपञ्चषड्वर्णैः चतुर्भिः पञ्चभिः क्रमात् ॥ ७६ ॥

षोडशी के कर अङ्ग का न्यास भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ सुनो। पाँच तीन, पाँच, छः वर्णों से, चार से और पाँच से न्यास करे ॥ ७६ ॥

ततो न्यसेत् तु चरणान् कूटयष्टिसमष्टिकम्।
हंसो रक्तात् तु चरणाभ्यां नमस्त्वाद्यकूटतः ॥ ७७ ॥

कूट, यष्टि और समष्टि के साथ चरण का न्यास करे; आद्यकूट से रक्ताभ चरणों वाले हंस को नमस्कार करे ॥ ७७ ॥

एवं शुक्लान् मिश्रपदान् निर्वाणाञ्चरणं वदेत्।
अन्ते च नमसा युक्ता मन्त्राश्चरणसंज्ञकाः ॥ ७८ ॥

इस तरह श्वेत मिश्रपद निर्वाण ही चरण है, अन्त में न म स से युक्त मन्त्र का नाम ही चरण कहा गया है ॥ ७८ ॥

त्रिकोणे मातृकायास्तु मध्ये मूर्ध्नि प्रविन्यसेत्।
श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यन्तयोजनात् ॥ ७९ ॥

त्रिकोण में मातृकाओं के बीच माथे पर विन्यास करे। 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' इस मंत्र को अन्त में जोड़ दे ॥ ७९ ॥

चरणाभिधमन्त्राणां प्रोक्तानां तु महेश्वरि।
ध्यानं तु ते प्रवक्ष्यामि षोडशीपञ्चदश्ययोः ॥ ८० ॥

हे महेश्वरि, चरण नामक जो मन्त्र कहा गया है, उससे षोडशी और पञ्चदशी का ध्यान बतलाता हूँ ॥ ८० ॥

कुरुविन्दसमानाभाम् अरुणाम्बरभूषणाम्।
चन्द्रचूडां त्रिनयनां कोटिकन्दर्पसौभगाम् ॥ ८१ ॥

कुरुबिन्द के समान आभावाली, लाल वस्त्र एवम् आभूषण वाली, चन्द्रमा चूड़ा में जिसे शोभते हों, तीन आँखोंवाली, करोड़ों कंदर्प की शोभा धारण करने वाली ॥ ८१ ॥

दक्षे वामे करे चाधः पुष्पबाणेक्षुकार्मुके।
तथैव सृणिपाशौ तु करयोरूर्ध्वसंस्थयोः ॥ ८२ ॥

दायें-बायें हाथों में नीचे पुष्पवाण और इक्षुधनुष है तथा ऊपर के दोनों हाथों में त्रिशूल और पाश है॥ ८२॥

लघुषोढान्यासमथो शृणु संयतमानसा ।
ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिः पङ्क्तिश्छन्दः प्रकीर्तितम् ॥ ८३॥

हे देवि, अब मैं **लघुषोढा न्यास** के बारे में कहता हूँ, इसे तुम संयत मन से सुनो, इसके ऋषि दक्षिणामूर्त्ति हैं, और पङ्क्ति छन्द हैं॥ ८३॥

न्यसेद् बालां द्विरावृत्त्या मुखे षड्वर्गयोगतः ।
मातृकान्याससम्प्रोक्तरीत्या षड्वर्गयोजनम् ॥ ८४॥

श्रीबाला का न्यास दो आवृत्ति में करनी चाहिए, मुख में षड्वर्ग को भी जोड़ देना चाहिए। मातृकान्यास भी षड्वर्ग जोड़कर पूर्वकथित रीति से करना चाहिए॥ ८४॥

एवं कराङ्गे विन्यस्य ध्यायेच्छ्रीत्रिपुरां पराम् ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभां रक्तमाल्याम्बरोज्ज्वलाम् ॥ ८५॥

इस तरह हाथ और अन्य अङ्गों का विन्यास कर परा देवता श्रीत्रिपुरा का ध्यान करे। उगते सूर्य की हजारों आभावाली, लाल माला एवं वस्त्र से प्रदीप्त देवी॥ ८५॥

पाशाङ्कुशेषु चापाढ्यां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।
गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ॥ ८६॥

पाश, अङ्कुश, चाप से सम्पन्न, तीन आँखोंवाली, शिर पर विराजित चन्द्रमा वाली, गणेश, ग्रह, योगिनी के समूह के रूपवाली॥ ८६॥

देवीं पीठमयीं ध्यायेन्मातृकां सुन्दरीं पराम् ।
सम्पूज्य मानसैरादौ गणेशन्यासमाचरेत् ॥ ८७॥

ऐसी पीठमयी परा सुन्दरी मातृका देवी का ध्यान करे। उनकी पूजा कर मन से सर्वप्रथम **गणेश का न्यास** करे॥ ८७॥

तत्र ध्यानं गणेशानां सशक्तीनां निशामय ।
तरुणादित्यसङ्काशान् गजवक्त्रान् त्रिलोचनान् ॥ ८८॥

वहाँ शक्तिसमन्वित गणेश का ध्यान सुनो। मध्याह्न के प्रचण्ड सूर्य की आभावाले, हाथी के मुँह की तरह मुँहवाले तथा तीन आँखोंवाले॥ ८८॥

पाशाङ्कुशवराभीतिकरान् शक्तिसमन्वितान् ।
तास्तु सिन्दूरवर्णाभाः सर्वालङ्कारभूषिताः ॥ ८९॥

पाश, अङ्कुश, वर, अभीतिकर, शक्तिसमन्वित, लाल सिन्दूरी रंग वाले, सभी अलङ्कारों से सुशोभित॥ ८९॥

एकहस्तधृताम्भोजा इतरालिङ्गितप्रियाः ।
ध्यात्वैवं मानसैरिष्ट्वा मातृकावत् प्रविन्यसेत् ॥ ९० ॥

एक हाथ में कमल और दूसरे हाथ से प्रिया का आलिङ्गन किये—इस तरह ध्यान करते हुए मनसा पूजा कर मातृकाविन्यास की तरह न्यास करे ॥ ९० ॥

विघ्नेश्वराय श्रियै च नम आदौ सबिन्दुकान् ।
एकैकशो मातृकार्णास्तेषां नाम क्रमाच्छृणु ॥ ९१ ॥

विन्दु के साथ विघ्नेश्वर गणेश एवं लक्ष्मी को नमस्कार सर्वप्रथम करे, इनमें एक एक कर सभी मातृका की धारा में हैं। क्रमशः इनका नाम सुनो ॥ ९१ ॥

विघ्नेश्वरो विघ्नराजो विनायक-शिवोत्तमौ ।
विघ्नकृद्विघ्नहर्तारौ विघ्नराड् गणनायकः ॥ ९२ ॥

विघ्नेश्वर, विघ्नराज, विनायक, शिवोत्तम, विघ्नकर्त्ता, विघ्नहर्त्ता, विघ्नराज, एवं गणनायक ॥ ९२ ॥

एकदन्तो द्विदन्तश्च गजवक्त्रो निरञ्जनः ।
कपर्दी दीर्घवक्त्रश्च सङ्कर्षण-वृषध्वजौ ॥ ९३ ॥

एकदन्त, द्विदन्त, गजवक्त्र, निरञ्जन, कपर्दी, दीर्घवक्त्र, सङ्कर्षण, वृषध्वज ॥ ९३ ॥

गणनाथो गजेन्द्रश्च शूर्पकर्णस्त्रिनेत्रकः ।
लम्बोदरो महानादश्चतुर्मूर्तिः सदाशिवः ॥ ९४ ॥

गणनाथ, गजेन्द्र, शूर्पकर्ण, त्रिनेत्रक, लम्बोदर, महानाद, चतुर्मूर्त्ति, सदाशिव ॥ ९४ ॥

आमोदो दुर्मुखश्चैव सुमुखश्च प्रमोदकः ।
एकपादो द्विजिह्वश्च शूरो वीरश्च षण्मुखः ॥ ९५ ॥

आमोद, दुर्मुख, सुमुख, प्रमोदक, एकपाद, विजिह्व, शूर, वीर और षण्मुख ॥ ९५ ॥

वरदो वामदेवश्च वक्रतुण्डो द्विरण्डकः ।
सेनानीर्ग्रामणीर्मत्तो विमत्तो मत्तवाहनः ॥ ९६ ॥

वरद, वामदेव, वक्रतुण्ड, द्विरण्डक, सेनानी, ग्रामणी, मत्त, विमत्त मत्तवाहन ॥ ९६ ॥

जटी मुण्डी तथा खड्गी वरेण्यो वृषकेतुकः ।
भक्षप्रियो मेघनादो गणपश्च गणेशकः ॥ ९७ ॥

जटी, मुण्डी, खड्गी, वरेण्य, वृषकेतुक, भक्षप्रिय, मेघनाद, गणप, गणेश ॥ ९७ ॥

श्रीर्ह्रीस्तुष्टिश्च शान्तिश्च पुष्टिश्चापि सरस्वती ।
रतिर्मेधा च कान्तिश्च कामिनी मोहिनी तथा ॥ ९८ ॥

श्रीं, ह्रीं, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, सरस्वती, रति, मेधा, कान्ति, कामिनी, तथा मोहिनी ॥ ९८ ॥

जटा तीव्रा ज्वालिनी च नन्दा च सुरसा तथा ।
कामरूपिणी सुभ्रूश्च जयिनी च ततः परम् ॥ ९९ ॥

जटा, तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, तथा सुरसा, कामरूपिणी, सुभ्रू, जयिनी, इसके बाद ॥ ९९ ॥

सत्या तथैव विघ्नेशी सुरूपिणी च कामदा ।
मदविह्वला विकटा धूम्रा भूतिस्तथैव च ॥ १०० ॥

सत्या, विघ्नेशी, सुरूपिणी, कामदा, मदविह्वला, विकटा, धूम्रा, भूति और इसी तरह ॥ १०० ॥

भूमिः सती रभा पश्चान्मानुषी मकरध्वजा ।
विकर्णा भ्रकुटिर्लज्जा दीर्घघोणा धनुर्धरा ॥ १०१ ॥

भूमि, सती, रमा, मानुषी, मकरध्वजा, विकर्णा, भ्रुकुटि, लज्जा, दीर्घघोणा, धनुर्धरा ॥ १०१ ॥

यामिनी च तथा रात्रिश्चन्द्रिका च शशिप्रभा ।
लोला च चपलाक्षिणी ततो ऋद्धिश्च दुर्भगा ॥ १०२ ॥

यामिनी, रात्रि, चन्द्रिका, शशिप्रभा या शशिक्रमा, लोला, चपलाक्षिणी, ऋद्धि और दुर्भगा ॥ १०२ ॥

सुभगाथ शिवा दुर्गा कालिका च ततः परम् ।
कालजिह्वा च तत्पश्चाद् भवेद् वै विघ्नहारिणी ॥ १०३ ॥

सुभगा, शिवा, दुर्गा, कालिका, इसके बाद कालजिह्वा, इसके बाद विघ्नहारिणी ॥ १०३ ॥

एवं गणेशान् शक्त्यन्तान् न्यस्य ध्यायेद् ग्रहानथ ।
रक्तं श्वेतं तथा रक्तं श्यामं पीतं च पाण्डुरम् ॥ १०४ ॥

इस प्रकार शक्त्यन्त गणेश को रखकर ग्रहों का ध्यान करे। लाल, सफेद, रक्त, श्याम, पीत और पाण्डुर ॥ १०४ ॥

धूम्रं कृष्णं तथा धूम्रं ग्रहानेवं विचिन्तयेत् ।
रविमुख्यान् कामरूपान् सर्वाभरणभूषितान् ॥ १०५ ॥

धूम्र, कृष्ण, तथा धूम्र ग्रहों को ऐसा ही चिन्तन करे। कामरूप सूर्य का प्रमुखतया ध्यान करे जो सब तरह के आभूषणों से भूषित हैं ॥ १०५ ॥

वामोरुन्यस्तहस्तांश्च दक्षिणेन वरप्रदान् ।
ध्यात्वैवं मानसैरिष्ट्वा ग्रहानेवं क्रमान्न्यसेत् ॥ १०६ ॥

बायें हाथ जंघे पर रखकर, दायें हाथ में वरदान, इस रूप का ध्यान करते हुए, मनसा पूजा कर क्रमशः ग्रहों का न्यास करे॥ १०६॥

हृदये च भ्रुवोर्मध्ये त्रिनेत्रे हृदयादधः ।
तदूर्ध्वेऽथ गले नाभौ वक्त्रे चाथ गुदे शिवे ॥ १०७॥

हे शिवे! हृदय में, दोनों भौंह के बीच, तीसरी औ में हृदय के नीचे और उससे ऊपर गले में, नाभि में, मुँह में और गुदा में॥ १०७॥

स्वैर्यकचटैर्वर्गैस्तपशाद्यैः लवर्णतः ।
सूर्यश्चन्द्रो मङ्गलश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः ॥ १०८॥

स्वर से, क, च, ट, वर्गोः, त, प, श से आदि से, ल वर्ण से, सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, और बृहस्पति॥ १०८॥

शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुरेवं नवग्रहाः ।
रेणुका चामृता धात्री ज्ञानरूपा यशस्विनी ॥ १०९॥

शुक्र, शनि, राहु, केतु, इस तरह ये नौ ग्रह हैं। तथा रेणुका, अमृता, धात्री, ज्ञानरूपा और यशस्विनी॥ १०९॥

शाङ्करी शक्तिकृष्णों च धूम्राम्बान्तास्तु शक्तयः ।
नक्षत्राणामथ न्यासस्तद्ध्यानं गिरिजे शृणु ॥ ११०॥

शाङ्करी, शक्तिकृष्णा, तथा धूम्राम्बा ये शक्तियाँ हैं। इसके बाद **नक्षत्रों के न्यास** और उनका **ध्यान** हे गिरिजा! सुनो॥ ११०॥

ज्वलत्कालाग्निसङ्काशाः सर्वाभरणभूषिताः ।
नतिपाण्योऽश्विनीमुख्या वरदाभयपाणयः ॥ १११॥

जलते हुए कालाग्नि के सदृश प्रदीप्त, सब तरह के आभूषणों से आभूषित, हाथ जोड़े, वरद और अभय हाथ वाले अश्विनी आदि प्रमुख नक्षत्र हैं॥ १११॥

ध्यात्वैवं मानसैरिष्ट्वा क्रमेण न्यासमाचरेत् ।
ललाटे नेत्रयोः कर्णनासिकायुगले गले ॥ ११२॥

इस तरह ध्यान कर, मनसा पूजा कर क्रमशः न्यास करे। ललाट में आँखों में, कान, नाक तथा गला में॥ ११२॥

स्कन्धकूर्परयुग्मे च मणिबन्ध-युगे तथा ।
तलयोश्च तथा नाभौ कट्यूरुजानुयुग्मके ॥ ११३॥

दोनों कन्धे, घुटने या कोहनी, दोनों कलाई या पहुँचे, दोनों हथेली या तलवे, तथा नाभि में, कमर, तथा दोनों घुटने में॥ ११३॥

जङ्घयोः पादयुग्मे च क्रमेणैव तु विन्यसेत् ।
अश्वीद्वयग्न्यब्धिचन्द्रेन्दुपक्षेन्द्वयश्वश्वभूद्वयम् ॥ ११४॥

दोनों जंघा तथा दोनों पैरों में क्रमशः न्यास करे। देववैद्य अश्विनी कुमार (संख्यावाचक २), अग्नि=आग, (सं० वा० ३), अब्धि=सागर, (सं०वा० २, ४ या ७ साठ), चन्द्र=चन्द्रमा (सं०वा० १), इन्दुपक्ष=शुक्लपक्ष, द्वि अश्व, द्वि=दो, अश्व घोड़े, (सं०वा० ७) और भू=धरती, स०वा० १, द्वयम्=दो॥ ११४॥

नेत्राश्विचन्द्रपक्षाग्निभूरामेन्दुशशिक्षितिः ।
नेत्रभूपक्षरामाब्धिसङ्ख्या वर्णाः सबिन्दुकाः ॥ ११५॥

नेत्र=आँख या दो की संख्या, भू=धरती, एक की संख्या, पक्ष=पखवारा, दो की संख्या, राम=समुद्र या तीन की संख्या, अब्धि=सागर, २, ४ या ७ की संख्या, इन संख्याओं के सबिन्दु वर्णों का॥ ११५॥

स्वरान्त्यौ क्षान्तनिहितौ नामादौ क्रमतो न्यसेत् ।
अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा ॥ ११६॥

स्वर एवं शब्द के अन्तिमाक्षर में, क्षान्त स्थापित है, इसके बाद नामादि का क्रमशः न्यास करे। फिर, अश्विनी, भरणी, कृतिका तथा रोहिणी॥ ११६॥

मृगशीर्षमथार्द्रा वै ततः स्यात्तु पुनर्वसुः ।
पुष्यस्तथैवाश्लेषा च मघा पूर्वादिफाल्गुनी ॥ ११७॥

मृगशिरा, आर्द्रा, इसके बाद पुनर्वसु, पुष्य, उसी तरह अश्लेषा, मघा, पूर्व-फाल्गुनी॥ ११७॥

उत्तराफल्गुनी हस्तश्चित्रा स्वाती ततः परम् ।
विशाखा चानुराधा च ज्येष्ठा मूलं ततः परम् ॥ ११८॥

उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, इसके बाद विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा मूल इसके बाद॥ ११८॥

द्विराषाढा च श्रवणो धनिष्ठा च शताद्भिषक् ।
तथा भाद्रपदायुग्मं रेवती सप्तविंशतिः ॥ ११९॥

पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रावण, धनिष्ठा, शतभिषा, तथा पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र, रेवती— इन सत्ताईस नक्षत्रों का न्यास करें॥ ११९॥

ततस्तु योगिनीन्यासं कुर्यात् तद्विधिरुच्यते ।
सितासितारुणारक्तांश्चित्रां पीतां च चिन्तयेत् ॥ १२०॥

इसके बाद योगिनीका न्यास करे। इसकी विधि बतलाता हूँ। श्वेत, कृष्ण, सिन्दूरी लाल, हल्का लाल या सुर्ख रंग, चितकबरी एवं पीतवर्णा का चिन्तन करे॥ १२०॥

चतुर्भुजाः समैर्वक्त्रैर्युता भूषणभूषिताः ।
पुस्तकं च कपालं च वराभीतिधराः शुभाः ॥ १२१ ॥

चार भुजाओं वाली, समान मुख से युक्त, अनेक भूषणों से आभूषित, पुस्तक, कपाल, वरद और अभीतिकर शुभ हाथोंवाली ॥ १२१ ॥

ध्यात्वैवं मानसैरिष्ट्वा क्रमेण न्यासमाचरेत् ।
मातृकां योगिनीविद्यामनुविद्यां ततः परम् ॥ १२२ ॥

इस तरह मूर्ति का ध्यान कर, मन ही मन इनकी पूजा कर क्रमशः इनका न्यास करे ॥ १२२ ॥

रक्ष रक्ष धातुनामात्मनो नाम नमोन्तकम् ।
स्वरैः कडबवाद्यैश्च हक्षाभ्यामादिक्षान्तकैः ॥ १२३ ॥

पञ्चभौतिक शरीर जो आतमनाम से ख्यात है, उसी की रक्षा करो, अथवा रस, रक्त, मांस आदि सात शरीरस्थ पदार्थों की रक्षा करे, महाकाल को प्रणाम। स्वरों में, क ड ब व आदि से ह क्ष आदि क्षान्तकों से ॥ १२३ ॥

ठान्तं यान्तद्वयं खाद्यं षान्तयुग्मं पषष्ठकम् ।
षड्दीर्घबिन्दुसहितं सप्तविद्यास्त्विमाः क्रमात् ॥ १२४ ॥

ठान्त और वान्त दो, खाद्य और षान्त युग्म और प छठा और षड् बिन्दु सहित इन सप्त विद्याओं को क्रमशः न्यासित करे ॥ १२४ ॥

तत्तद्वर्णोत्तरं मलवरयूं प्रोच्चरेत् क्रमात् ।
सप्तेमास्त्वनुविद्याः स्युर्धातुनामान्यपि शृणु ॥ १२५ ॥

उन सारे वर्णों के बाद क्रमशः म, ल, व, र, यूं का उच्चारण करे। ये सात अनुविद्या हैं। धातुओं के नाम भी सुनो ॥ १२५ ॥

त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्लानि सप्तधा ।
डाकिनी राकिनी पश्चाल्लाकिनी काकिनी ततः ॥ १२६ ॥

त्वचा, रक्त, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्ल ये सात धातुगत भेद हैं। डाकिनी, राकिनी, लाकिनी और उसके बाद काकिनी ॥ १२६ ॥

साकिनी हाकिनी याकिनीत्येवं योगिनीगणः ।
अकारादिविसर्गान्तं डां डीमित्यादि षट्ककम् ॥ १२७ ॥

साकिनी, हाकिनी, याकिनी—इस तरह योगिनियों के समूह अकारादि से लेकर विसर्ग तक डां डीं इत्यादि छः ॥ १२७ ॥

डमलाद्वरयूं रक्ष रक्ष पश्चात् त्वगात्मने ।

डाकिन्यै नम इत्येवं योगिनीन्यासमाचरेत् ॥ १२८ ॥

ड, म, ल, व, र, यूँ ये छः रक्षा करो, रक्षा करो। इसके बाद त्वचा में डाकिनी के लिए नमस्कार—इस तरह **योगिनी का न्यास** करे ॥ १२८ ॥

विशुद्ध्यनाहते पूरे स्वाधिष्ठाने च मूलके ।
आज्ञायां ब्रह्मरन्ध्रे च नृपार्कदशषड्दलम् ॥ १२९ ॥

विशुद्धचक्र, अनाहतचक्र, मणिपूरचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मूलाधारचक्र, आज्ञाचक्र और ब्रह्मरन्ध्रचक्र में और नृप, अर्क, दश और षड्दल ॥ १२९ ॥

वेदपक्षदलं ध्यायन् सहस्त्रारमपि क्रमात् ।
राशिन्यासं ततः कुर्यात् तद्विधानं निगद्यते ॥ १३० ॥

वेद ४, पक्ष २ अर्थात् ष ट् च क्र का ध्यान करते हुए क्रमशः सहस्त्रार (यह वह चक्र है, जिसमें शक्ति के स्थैतिक तथा गतिक रूप आपस में मिल जाते हैं) का भी अनुचिन्तन करे। इसके बाद **राशि का न्यास** करे, उसका विधान हम बतलाते हैं ॥ १३० ॥

रक्तं श्वेतं हरिद्वर्णं पाण्डुं चित्रं सितं स्मरेत् ।
पिशङ्ग-पिङ्गलौ कम्बुकर्बुरासितधूम्रभाः ॥ १३१ ॥

लाल, सफेद, हरा रंग, सफेद पीला मिला, चितकबरा, चमकीले सफेद का चिन्तन करे। ललाई लिये भूरे रंग तथा पिङ्गल वर्ण, धब्बेदार, रंग-बिरंगे, काला या नीला, तथा धूसर वर्णवाले ॥ १३१ ॥

मेषादिनामसदृशाकारान् ध्यात्वा प्रविन्यसेत् ।
मेषो वृषोऽथ मिथुनं कर्कटः सिंहकन्यके ॥ १३२ ॥

मेष, वृष, आदि नाम के ही सदृश आकार अर्थात् स्वरूप वाले का ध्यान कर न्यास करे। इन राशियों के नाम हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क वा कर्कट, सिंह एवं कन्या ॥ १३२ ॥

तुला च वृश्चिको धनुर्मकरः कुम्भमीनकौ ।
वेदपक्षाब्ध्यश्विपक्षरसभूतशरास्तथा ॥ १३३ ॥

तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, और मीन, वेद (४ की संख्या), पक्ष=पखवारा (२ की सं०), अब्धि=सागर (सं० २, ४, ७), अश्वि=अश्विनी कुमार (सं० २), पक्ष (सं० २), रस (संख्या ६), भूत= (स० ५), तथा शर=वाण (सं० ५) ॥ १३३ ॥

शरेषु शरभूतात्मसङ्ख्यवर्णान् समीरयेत् ।
स्वरान्ते शादिहान्तं तु क्षकारं वान्ततो न्यसेत् ॥ १३४ ॥

शरों में, शरभूत आत्मसंख्यक वर्णों का उच्चारण करे। फिर स्वरान्त में श से लेकर ह तक और क्ष को वान्त से विन्यास करे ॥ १३४ ॥

गुल्फे जानुनि वृषणे कुक्षिस्कन्धशिरःसु च ।
दक्षगुल्फादिके वाममूर्धादौ च क्रमान् न्यसेत् ॥ १३५॥

टखने में, घुटने में, अण्डकोष में, पेट में, कंधों में, माथे में, और दाहिने टखने में, शिर के बायें अग्र भागादि में क्रमशः न्यास करे ॥ १३५ ॥

पीठानि विन्यसेत् पश्चाद् राशीनां न्यासतः परम् ।
तद्विधानं प्रवक्ष्यामि शृणु संयतमानसा ॥ १३६॥

राशियों के न्यास से उत्कृष्ट पीठ न्यास है, जिसे करना चाहिए। इसका विधान बतलाता हूँ, संयत मन से इसे सुन ॥ १३६ ॥

सितासितारुणश्यामहरित्पीतान्यनुक्रमात् ।
पुनः पुनः क्रमादेवं पञ्चाशत्स्थानसञ्चये ॥ १३७॥

सित, असित, अरुण, श्याम, हरित और पीत के अनुक्रम से पचास स्थानसञ्चय के क्रम से न्यास करे ॥ १३७ ॥

पीठानि संस्मरेद् विद्वान् सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
अभ्यर्च्य मानसैः पश्चान्मातृकावत् प्रविन्यसेत् ॥ १३८॥

सब काम की सिद्धि के लिए विद्वान् पीठों का स्मरण करे मनसा उनकी अभ्यर्थना कर, पीछे मातृका की तरह उनका न्यास करे ॥ १३८ ॥

कामरूपं वाराणसीं नेपालं पौण्ड्रवर्धनम् ।
काश्मीरं कान्यकुब्जं च पूर्णशैलं तथाऽर्बुदम् ॥ १३९॥

वाराणसी कामरूप है, नेपाल पौण्ड्रवर्धन है। काश्मीर और कान्यकुब्ज पूर्णशैल तथा अर्बुद है ॥ १३९ ॥

आम्रातकेश्वरैकाम्रे त्रिःस्रोतः कामकोटकम् ।
कैलासो भृगुकेदारौ ततश्चन्द्रपुरी भवेत् ॥ १४०॥

आम्रातकेश्वर, एकाग्र, त्रिस्रोत, कामकोटक, कैलास, भृगुस्थान, केदार, इसके बाद चन्द्रपुरी होता है ॥ १४० ॥

श्रीरोङ्कारस्तथा जालन्धरो मालव एव च ।
कुलान्तं देवकोटं च गोकर्णो मारुतेश्वरः ॥ १४१॥

श्री ओङ्कार तथा जालन्धर और मालव, कुलान्त, देवकोट, गोकर्ण और मारुतेश्वर ॥ १४१ ॥

अट्टहासोऽथ विरजो राजगृहं महागिरिः ।
कोलगिरिश्शैलापुरं कालेश्वरो जयन्तिका ॥ १४२॥

अट्टहास, विरज, राजगृह, महागिरि, कोलगिरि, चैलापुर, कालेश्वर और जयन्तिका॥ १४२॥

उज्जयिन्यथ चरित्रं क्षीरिका हस्तिनापुरम् ।
ओड्डीशोऽथ प्रयागश्च षष्ठीशश्च मायापुरी ॥ १४३ ॥

उज्जयिनी, चरित्र, क्षीरिका, हस्तिनापुर, ओड्डीश, प्रयाग, षष्ठीश और मायापुरी॥ १४३॥

जलेश्वरश्च मलयः श्रीशैलो मेरुरेव च ।
गिरिर्महेन्द्रो वामनो हिरण्यपुरमेव च ॥ १४४ ॥

जलेश्वर, मलय, श्रीशैल, और मेरू, महेन्द्रगिरि, वामन और हिरण्यपुर॥ १४४॥

महालक्ष्मीस्तथोड्याणं छायाछत्रमिति क्रमात् ।
मातृकार्णमुखाश्चैते पीठान्ताः क्रमतो न्यसेत् ॥ १४५ ॥

महालक्ष्मी, तथा उड्याण, छायाछत्र—ये क्रम से मातृकार्णमुख पीठान्त हैं, इनका क्रमशः न्यास करना चाहिए॥ १४५॥

एवं तु लघुषोढाख्यो न्यासः प्रोक्तो हिमाद्रिजे ।
एवं विन्यस्तदेहस्तु देवताभावमाप्नुयात् ॥ १४६ ॥

इस तरह ये हे पार्वति, लघुषोढ़ा नामक न्यास हैं। इस तरह विन्यस्तदेह देवताभाव को प्राप्त करता है॥ १४६॥

एवं देवेशि सन्ध्यातोऽनन्तरी कथिता क्रिया ।
अकृत्वैनां तु पूजादि निष्फलं सर्वमद्रिजे ॥ १४७ ॥

हे देवेशि, इस तरह सन्ध्या के बाद की क्रिया कही गई। इसे किये बिना हे पार्वति, की गई समस्त पूजा निष्फल होती है॥ १४७॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे भूशुद्ध्यादिविधिर्नाम तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥

श्री त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में भूशुद्ध्यादिविधि नामक तृतीय तरङ्ग की हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई॥ ३॥

●

अथ चतुर्थस्तरङ्गः

(न्यासानन्तरक्रिया विधानम्)

पार्वत्युवाच

महेश श्रोतुमिच्छामि न्यासस्यानन्तरक्रियाम् ।
ब्रूहि मे त्रिपुरादेव्याः साधकानां विधानतः ॥ १ ॥

पार्वती ने कहा—

हे महेश, न्यास के बाद की क्रिया के सम्बन्ध में मैं जानना चाहती हूँ। त्रिपुरा देवी के साधकों का विधान क्या है—यह भी मुझे बतलायें॥ १॥

महेश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि न्यासानन्तरसत्क्रियाम् ।
त्रिपुरार्णवसम्प्रोक्तां सारं तस्माच्छृणु प्रिये ॥ २ ॥

महेश्वर ने कहा—

हे देवि, सुनो, न्यास के बाद की जो सत्क्रिया है उसे मैं बतलाता हूँ। हे प्रिये, त्रिपुरार्णव में जो बातें विस्तार से वर्णित हैं, उसका संक्षिप्त सार मैं बतलाता हूँ। अतः तुम इसे सुनो॥ २॥

साधकः समनुष्ठाय न्यासान्तं कर्म प्रोक्तवत् ।
जपादिकं विधायाथ पूजनं तु समाचरेत् ॥ ३ ॥

साधक ठीक से अनुष्ठान सम्पन्न करने के लिए न्यासान्त कर्म पूर्वोक्त की तरह सम्पन्न करे, जपादि क्रिया सम्पन्न कर पूजाकर्म सम्पन्न करे॥ ३॥

तच्चापि यन्त्रे कर्तव्यं मुख्यपक्षस्त्वयं शिवे ।
तस्माद् यन्त्रं प्रवक्ष्यामि शृणु सम्यक् समाहिता ॥ ४ ॥

यन्त्रलेखन और वह पूजा भी, यन्त्र में ही करनी चाहिए—हे शिवे, यही पक्ष मुख्य है। इसीलिये, सर्वप्रथम मैं यन्त्र के बारे में कहता हूँ, स्थिर मन से सुनो॥ ४॥

स्वेष्टमानेन सद्वृत्तं विलिख्य विभजेत् ततः ।
प्राक्प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रे वै नागवेदांशकैः शिवे ॥ ५ ॥

हे शिवे! अपने इष्टमान से एक सुन्दर वृत्त लिखकर उसे विभाजित करे, इसके बाद पूर्व से पश्चिम ब्रह्मसूत्र में ११ और चार अंशों में विभाजित करे॥ ५॥

षड्भिः षड्भिः पञ्चभिश्च त्रिभिस्त्रिभिरगात्मजे ।
चतुर्भिस्त्रिभिरप्येवं षड्भिः षड्भिस्तथांशकैः ॥ ६ ॥

हे पार्वति, छः, छः से, पाँच से, तीन-तीन से, फिर चार से तीन से भी इसी तरह छ:छः के विभाजकों से॥ ६॥

रेखां कुर्यात् पूर्वतस्तु षट्शेषांशास्तु पश्चिमे।
नवरेखास्तिर्यगेवं वृत्तान्तं विलिखेत् ततः॥ ७॥

एक रेखा पूरब से खींचे शेष छः अंश पश्चिम में, इसी तरह वृत्त के अन्त में नौ तिर्यग् रेखा खीचे॥ ७॥

तृतीयरेखाप्रान्ताभ्यां रेखायुग्मं विकृष्य तु।
वृत्ते पश्चिमसूत्रे तदग्रयुग्मं नियोजयेत्॥ ८॥

तीसरी रेखा कोने से तथा दो रेखायें वहीं से खींच कर वृत्त में पश्चिम छोर पर उससे आगे दोनों रेखाओं को मिला दे॥ ८॥

प्रत्यगग्रं त्रिकोणं स्यादेवं सप्तमप्रान्ततः।
त्रिकोणमपरं पूर्ववृत्तसूत्राग्रमालिखेत्॥ ९॥

पीछे अर्थात् पश्चिम की ओर अग्र सिरे पर त्रिकोण होता है, ठीक इसी तरह सप्तम सिरे से दूसरा त्रिकोण वृत्तसूत्र के आगे लिखे॥ ९॥

षट्कोणमेवं सम्पाद्य डमरुद्वयपार्श्वकम्।
आद्यरेखासूत्रसन्धेरष्टमी पार्श्वयोर्नयेत्॥ १०॥

इस तरह षट्कोण बनाकर अगल बगल दो डमरु बना लें; पहली रेखा की सूत्र-सन्धि वाली आठवीं रेखा को दोनों बगल से जोड़ दे॥ १०॥

सप्तमीसन्धिभेदेन तथान्त्यब्रह्मसूत्रतः।
तृतीयासन्धिभेदेन द्वितीयापार्श्वयोर्नयेत्॥ ११॥

सातवीं सन्धि भेद से, तथा अन्तिम रेखा ब्रह्मसूत्र से, तीसरी रेखा सन्धिभेद से, दूसरी रेखा दोनों किनारे तक ले जायँ॥ ११॥

षट्कोणमपरं तेन सिद्धं पूर्ववदद्रिजे।
द्वितीयाष्टमसूत्राभ्यां षष्ठतुर्यद्विपार्श्वयोः॥ १२॥

हे पार्वति, इससे दूसरा षट्कोण, पहले की ही तरह सिद्ध होगा। दूसरे और आठवें सूत्रों से छड़ी और चौथी रेखा को दोनों बगल तक खींचकर पहुँचा दे॥ १२॥

अन्तर्डमरुपर्यन्तं कोणं षट्कोणमालिखेत्।
सूत्रसप्तमसन्धेस्तु पञ्चमीपार्श्वयोर्नयेत्॥ १३॥

डमरु के बीच तक का कोण षट्कोण के रूप में लिखे। सूत्रसन्धि वाली सातवीं रेखा को पाँचवीं रेखा के साथ दोनों बगल तक खींच दे॥ १३॥

त्रिकोणमन्तर्डमरुस्पृष्टकोणं भवेत् ततः।

षष्ठसूत्रसन्धितस्तु　　प्रथमापार्श्वयोर्नयेत् ॥ १४॥

वह त्रिकोण डमरु के बीच का स्पर्श करते हुए एक कोण बनायेगा; इसके बाद षष्ठ सूत्र सन्धि से पहली रेखा के दोनों बगल तक पहुँचा दे॥ १४॥

तुर्यतृतीयतत्पूर्वसन्धिषट्क-विभेदतः　।
त्रिकोणमेवमपरं　　तृतीयासूत्रसन्धितः ॥ १५॥

चौथी, तीसरी, और उससे पूर्व सन्धि षट्क के भेद से तथा तीसरी सूत्रसन्धि से दूसरा त्रिकोण ही बनता है॥ १५॥

अन्त्यपार्श्वं द्वयं नीत्वा पञ्चम्याद्यष्टसन्धिभित् ।
त्रिकोणं विलिखेत् सम्यक् समसूत्रप्रपातनैः ॥ १६॥

दोनों बगलों के समीप से लेकर पञ्चमी आदि अष्टसन्धि से एक त्रिकोण बनाये, यह त्रिकोण समान रेखा खींचकर उचित ढंग से बनावें॥ १६॥

तेन त्रिचत्वारिंशत्तु त्रिकोणानां भवेच्छिवे ।
अष्टादश तु मर्माणि चतुर्विंशतिसन्धयः ॥ १७॥

हे शिवे, इससे **४३ त्रिकोण** बनते हैं और **अट्ठारह मर्म** बनते हैं और **चौबीस संधियाँ** बनती हैं॥ १७॥

शोभितं　　नवभिस्तद्वन्महायोनिभिरद्रिजे ।
ब्रह्मसूत्रं　पार्श्वशेषरेखाश्चापि　प्रमार्जयेत् ॥ १८॥

हे पर्वतपुत्री! सामने के नौ घरों से उसी तरह महायोनियों से ब्रह्मसूत्र एवं बगल की शेष रेखायें भी प्रवर्जित करे॥ १८॥

मध्ये बिन्दुं लिखित्वा तु तद्बाह्ये क्रमतो लिखेत् ।
वृत्तेऽष्टपत्रं　तद्बाह्ये　वृत्ते　षोडशपत्रकम् ॥ १९॥

बीच में विन्दु लिखकर उसके बाहर क्रमशः लिखें, वृत्त पर आष्टपत्र तैयार करे, उससे बाहरी वृत्त पर षोडश अर्थात् दल बनायें॥ १९॥

[यहाँ कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, उसके अर्थ को स्पष्ट किये विना श्लोकार्थ का स्पष्टीकरण असंभव है। अतः उन्हें यथाशक्ति अभिव्यक्ति देने की चेष्टा करता हूँ।

श्रीयन्त्र में शिव-शक्ति का अविनाभाव पारम्परिकरूप सम्मिश्रण है।

शैवानामपि　शाक्तानाञ्चक्राणाञ्च　परस्परम्।
अविनाभावसम्बन्धं यो जनानाति स चक्रवित्॥

जो शिवशक्ति के इस अविनाभाव को जानता है, वही श्रीचक्र को ठीक से समझता है। **भैरवयामल** में लिखा है—

''न शिवेन विना शक्तिः शिवोऽपि न तया विना।''

अब **वामकेश्वरतन्त्र** के अनुसार कुछ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या—

दिशा—''यदाशाभिमुखो मन्त्रो'' अर्थात् जिस दिशा की ओर मुँह करके साधक यनत्र लिखें उसे ही पूर्व समझना चाहिए और इसी के अनुसार शेष दिशाओं कल्पना कर लेनी चाहिए।

शक्ति—पूर्व की ओर ईशान कोण से अग्निकोण तक एक सीधी रेखा खींचकर दोनों कोणों से दो आड़ी रेखायें खींचकर पश्चिम के मध्यविन्दु पर जोड़ दे। इससे जो अपने सामने अधोमुख त्रिकोण बनेगा, इसी त्रिकोण को शक्ति, पार्वती, योनि आदि शब्दों से व्यक्त किया जाता है।

शिव—वायव्य से नैर्ऋत कोण तक एक सीधी रेखा खींचकर, इन दोनों कोणों से दो रेखायें ऊपर की ओर ले जाकर पूर्व दिशायें मिला देने से जो ऊर्ध्वमुख त्रिकोण बनता है उसे शिव या वह्नि अथवा इसके पर्याय महेश्वर, अग्नि आदि शब्दों से व्यक्त किया जाता है।

पार्श्वरेखा—वाम और दक्षिण आड़ी रेखायें पार्श्वरेखा कहलाती हैं। कहीं कहीं इन्हें ऊर्ध्व और अधोरेखा भी कहते हैं।

तिर्यक् रेखा—ईशान से आग्नेय तक और वायव्य से नैर्ऋत्य तक खींची गई रेखायें तिर्यक् रेखायें कहलाती हैं। इन्हें पूर्वरेखा और पश्चिम रेखा भी कहते हैं।

भेदन—एक रेखा के ऊपर दूसरी रेखा का आना भेदन कहलाता है।

सन्धि—भेदन करनेवाली दोनों रेखाओं के संयोग को सन्धि कहते हैं।

मर्म—भेदन करनेवाली तीन रेखाओं के संयोग को मर्म कहते हैं।

ग्रन्थि—मर्म और सन्धि को ग्रन्थि कहते हैं।

डमरु—शक्ति के पश्चिम कोण तथा वह्नि के पूर्वकोण के मिलने से डमरु बनता है।

वृत्त—चन्द्राकार रेखा को वृत्त कहते हैं।

परिवेष—चौकोर रेखा को परिवेष कहते हैं।

भूपुर—त्रिरेखात्मक वृत्त को 'भूपुर' कहते हैं।]

वृत्तं ततो भूपुराणां त्रितयं द्वारशोभितम् ।
समप्रमाणपत्राणि दिक्सन्ध्यग्राणि तानि तु ॥ २० ॥

उसके बाद **भूपुरों के वृत्त** को तीन भागवाले दरवाजे पर सुशोभित करे। उनमें सभी पत्र समस्तरीय होना चाहिए। उनमें दिशा और संधि वाले भाग आगे हो॥ २०॥

मध्ये दशांशकं हित्वा प्रत्येकं पार्श्वयोर्लिखेत् ।
तिर्यग्रेखात्रयं तेषां प्रान्तेभ्योऽधः समाक्षिपेत् ॥ २१ ॥

बीच में दिशा और अंश को छोड़कर प्रत्येक को दोनों पार्श्व में लिखे, उनके तीन तिर्यक् रेखा खींच दोनों प्रान्त से नीचे की ओर खीचे ॥ २१ ॥

रेखामङ्गुलमानेन त्रिचतुःपञ्चसङ्ख्यया ।
परस्परं तु तद्वाह्ये मेलयेत् पर्वतात्मजे ॥ २२ ॥

हे पर्वतपुत्रि, अंगुलि प्रमाण की रेखा के, तीन, चार और पाँच संख्या से परस्पर मिला होना चाहिए और उससे बाहर उन्हें मिला देना चाहिए ॥ २२ ॥

एवं युक्त्या तु विलिखेद् भूपुरत्रितयं शिवे ।
पार्श्वद्वयस्थैरष्टाभिः समैर्डमरुभिर्युतम् ॥ २३ ॥

हे शिवे, इसी युक्ति से तीन खण्डों में विभक्त भूपुरों को लिखे। दोनों पार्श्व में स्थित आठ समस्तरीय डमरुओं से युक्त होना चाहिए ॥ २३ ॥

त्रिभिश्च चत्वारिंशद्भिस्त्रिकोणैः सन्धिभिस्तथा ।
चतुर्विंशतिसङ्ख्याकैरष्टादशसुमर्मभिः ॥ २४ ॥

यंत्र में ४३ त्रिकोण, २४ संधियाँ, १८ मर्म होते हैं ॥ २४ ॥

समबिन्दुत्रिकोणाग्रं विलिखेदतियुक्तितः ।
रेखारूपं समैवोच्चे भूमिकारूपमेव वा ॥ २५ ॥

त्रिकोण के अग्रभाग में युक्तिपूर्वक सम विन्दु लिखे, रेखा रूप में सम अथवा उच्च भूमिका रूप में होना चाहिए ॥ २५ ॥

मिश्रितं वा कोणमयं सर्वत्राप्युक्तरीतितः ।
रत्ने सुवर्णे रजते त्रिलोहे वापि पीठके ॥ २६ ॥

मिश्रित हो या कोणमय हो, सर्वत्र बतलाई गई रीति से ही होना चाहिए। श्रीयन्त्र रत्न पर, सोने पर, चाँदी पर, त्रिधातु पर या पीठ पर बनाना चाहिए ॥ २६ ॥

ताम्रे वाश्मनि वा प्रोक्तयन्त्रं श्रीपूर्वकं भवेत् ।
कुण्डली शिवनाभं च सालिग्राममपीश्वरि ॥ २७ ॥

ताम्बे पर वा स्फटिकादि पत्थर पर पूर्व कथित श्रीयन्त्र बनाना चाहिए तथा हे परमेश्वरि, कुण्डली, शिवनाभ और सालिग्राम पर भी यह यंत्र लिखा जाता है ॥ २७ ॥

यन्त्रालाभे पूजनाय पीठं तु परिकल्पयेत् ।
तिर्यग्रेखा समाकीर्णा सार्धत्रिबलयैर्युता ॥ २८ ॥

यन्त्र नहीं मिलने पर, पूजा के लिए पीठ की कल्पना करनी चाहिए। तिर्यक् रखा से समाकीर्ण साढ़े तीन त्रिवलियों से युक्त आवरण हो ॥ २८ ॥

अन्तःसूक्ष्मा बहिःस्थूला सर्पवेष्टनवत् स्थिता ।

मध्यगर्ता कुण्डली स्याद् वामावर्ता महाफला ॥ २९ ॥

भीतर सूक्ष्म और बाहर स्थूल साँप की कुण्डली की तरह स्थित हो, बीच में गहरी कुण्डली हो और वह कुण्डली यदि वामावर्त्त हो तो महाफलदायिनी होती है ॥ २९ ॥

शिवनाभसमारूढा सालिग्रामेण संयुता ।
द्वाभ्यां च सङ्गतायां तु सा सर्वत्र सुदुर्लभा ॥ ३० ॥

शिवनाभ की तरह समारूढ, शालिग्राम के साथ, दोनों तत्त्व का एक साथ संगम दुर्लभ होता है ॥ ३० ॥

शिवनाभं तु संयुक्तं सालिग्रामेण चेच्छिवे ।
दुर्लभं तत् त्रिलोक्यां तु तत्र पूजा महाफला ॥ ३१ ॥

हे शिवे, शिवनाभ से युक्त शालिग्राम के साथ इनका दर्शन ही दुर्लभ है और उस यंत्र में पूजा का तो महाफल होता है ॥ ३१ ॥

यवार्धमानं लिङ्गं तु गर्तसंस्थं यदा भवेत् ।
तद् गौरीशिवनाभं स्यात् त्र्यस्त्रगर्तं ततोऽधिकम् ॥ ३२ ॥

गर्त्त में स्थित यवार्धमात्र शिवलिङ्ग, वह गौरीशिवनाभ कहलाता है, यह त्र्यस्त्रगर्त उससे भी अधिक होता है ॥ ३२ ॥

सालिग्रामश्च चक्राढ्यश्चक्राधिक्ये महत् फलम् ।
नर्मदोद्भवलिङ्गेऽपि पूजयेदथवा शिवे ॥ ३३ ॥

चक्रों से सम्पन्न शालिग्राम, या चक्राधिक युक्त शालिग्राम की पूजा में महत् फल मिलता है। अथवा हे शिवे, नर्मदा में उत्पन्न लिङ्ग भी परम पूज्य हैं ॥ ३३ ॥

अरक्तवर्णं तच्चापि सक्षतं चिपिटं त्यजेत् ।
सुस्निग्धं वर्त्तुलं दीर्घं कुक्कुटाण्डसमं शुभम् ॥ ३४ ॥

लाल रंग से भिन्न रंगवाले, वह भी कटा-फटा चिपटा अगर हो तो छोड़ देना चाहिए। चिकना, सुन्दर, गोल, लम्बा, मुर्गी के अण्डे की तरह शालिग्राम शुभद होता है ॥ ३४ ॥

अथवा प्रतिमायां तु पूजयेदगकन्यके ।
प्रतिमा ध्यानसदृशी नवरत्नादिनिर्मिता ॥ ३५ ॥

अथवा हे पार्वती! प्रतिमा की ही पूजा करनी चाहिए। प्रतिमा ध्यान के सदृश हो, नवरत्नादि पर निर्मित हो ॥ ३५ ॥

समानाङ्गा सुशोभाढ्या प्रसन्नवदनेक्षणा ।
क्रूररूपा कुलं हन्ति भग्ना दारिद्र्यदायिनी ॥ ३६ ॥

प्रतिमा समान अङ्गवाली हो, सुन्दर शोभा सम्पन्न हो और प्रसन्न वदन हो। प्रतिमा

यदि कुरूप हो तो पूजक के कुल को विनष्ट कर देती है, अगर प्रतिमा फूटी हो तो पूजक को दरिद्र बना देती है॥ ३६॥

अथवा पुस्तके पूज्या यथोक्तविधिना शिवे।
यन्त्रं मूर्तिं च गिरिजे त्यजेद् खण्डमयं तथा॥ ३७॥

अथवा, हे शिवे! यथोक्त विधि से पुस्तक की ही पूजा करे। हे गिरिजे! खण्डित यन्त्र या मूर्त्ति की पूजा न करे॥ ३७॥

रिक्तगर्भं च यस्तत्र पूजयेत् तस्य वै मृतिः।
प्रतिमां यन्त्रराजं च संस्कृत्यैव प्रपूजयेत्॥ ३८॥

रिक्तगर्भ प्रतिमा या यन्त्र की जो पूजा करता है, उसकी मृत्यु निश्चित होती है। अतः सुसंस्कृत प्रतिमा का ही पूजन करना चाहिए॥ ३८॥

स्थापयेद् देवतामूर्तिं यस्तस्य शृणु वै फलम्।
समस्ततीर्थदानानां पुण्यानां शतधा फलम्॥ ३९॥

जो व्यक्ति देवताओं की प्रतिमा की स्थापना करता है, उसका फल सुनो, ऐसा व्यक्ति अर्थात् प्रतिमास्थापक को समस्त तीर्थाटन और दान वे जो फल हैं, उसका दस गुना अधिक फल मिलता है॥ ३९॥

चक्रस्थिरस्थापकानां फलं वक्ष्ये शृणु प्रिये।
तत् प्रशंसन्ति वै देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ ४०॥

हे प्रिये, स्थिर चक्र की स्थापना करनेवालों का फल कहता हूँ, सुनो। ऐसे लोगों की प्रशंसा सारे देवता तथा विष्णु, ब्रह्मा और शिवादि देव करते हैं॥ ४०॥

तीर्थव्रताद्याचरणं पुण्यकर्माखिलं शिवे।
एकतः संस्थितं चापि न समं चक्रसंस्थितेः॥ ४१॥

हे शिवे! तीर्थ, व्रत प्रभृति जन्य आचरण और समग्र पुण्यकर्म को एक साथ रख दे फिर भी एक चक्रपूजा के साथ वह संतुलित नहीं हो सकता॥ ४१॥

त्रिपुरासाधकानां तु नान्यत् किञ्चिदितो वरम्।
संस्थाप्य चक्रराजं तु मण्डलेशत्वमाप्नुयात्॥ ४२॥

त्रिपुरा साधकों के लिए इससे अधिक श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। एक चक्रराज की स्थापना कर कोई भी भक्त मण्डलेश्वरत्व पा लेता है॥ ४२॥

सकृद् दृष्ट्वा स्थिरं चक्रमाजन्मकृतपातकात्।
मुक्तः सद्यो भवत्येव सत्यं प्रतिशृणोमि ते॥ ४३॥

एक बार भी जिसने इस स्थिर चक्र का दर्शन कर लिया है उसे जीवन में किये गये सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। यह सत्य वचन तुम्हें सुनाता हूँ॥ ४३॥

तस्माद् यत्नेन श्रीदेवीसाधकः सकृदेव वा ।
चक्रराजं स्थिरं पश्येत् स्पृशेदपि च पूजयेत् ॥ ४४ ॥

अतः प्रयासपूर्वक श्रीदेवी के साधक, कम से कम एक बार ही सही, पर उस स्थिर चक्रराज के दर्शन, पूजन एवं स्पर्श करे ॥ ४४ ॥

सप्तजन्मभवं पापं स्पर्शनान्नश्यति क्षणात् ।
पूजनात् त्रिपुरा तुष्टा वाञ्छितार्थान् प्रयच्छति ॥ ४५ ॥

सात जन्मों के अर्जित पाप स्पर्शमात्र से क्षण भर में विनष्ट हो जाते हैं। और पूजा करने पर संतुष्ट होकर देवी त्रिपुरा उसे अभिलषित प्रदान करती है ॥ ४५ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यत्किञ्चिदपि वार्पितम् ।
फलानन्त्यप्रदं तत्तु तस्माद्यत्नेन पूजयेत् ॥ ४६ ॥

भक्तिभाव से पत्र, पुष्प, फल एवं जल यत्किञ्चित् भी जो अर्पित करता है वह भक्तों को अनन्त फलदायक होता है। अतः प्रयासपूर्वक इनकी पूजा करे ॥ ४६ ॥

येन संस्थापितं यन्त्रं तस्य शतकुलोद्भवाः ।
पितरः पुण्यलोकेषु वसन्त्यगणिताः समाः ॥ ४७ ॥

जिसने यन्त्र की स्थापना की, उसके वंशोद्भव सैकड़ों पितर पुण्यलोकों में अगणित काल तक निवास करते हैं ॥ ४७ ॥

कुण्डल्यादौ पूजनं स्याद् यन्त्रालाभे तु सर्वथा ।
भूर्जे पट्टेऽथवा भूमौ लिखित्वा वापि पूजयेत् ॥ ४८ ॥

यदि यन्त्र उपलब्ध न हो तो कुण्डली आदि में सर्वथा पूजन करना चाहिए। भोजपत्र पर किसी पट्ट पर अथवा धरती पर यंत्र लिखकर पूजा करनी चाहिए ॥ ४८ ॥

आद्ययोरष्टगन्धेन भूमौ सिन्दूररेणुना ।
षडङ्गुलान्यूनमिते भूर्जपत्रे समालिखेत् ॥ ४९ ॥

पहला दोनों अष्टगन्ध से लिखे धरती पर सूखे सिन्दूर से लिखे। छः अंगुली से कम भोजपत्र पर न लिखे ॥ ४९ ॥

पट्टवस्त्रे विलेख्यं स्यादन्यूनं द्वादशाङ्गुलात् ।
भूमौ लिखेत् तथा यन्त्रं हस्तान्यूनं महेश्वरि ॥ ५० ॥

पट्टवस्त्र अर्थात् रेशमी कपड़े पर लिखना चाहिए। वह बारह अंगुल से कम नहीं होना चाहिए। हे महेश्वरि, वह यंत्र यदि धरती पर लिखा जाय तो वह एक हाथ से कम नहीं होना चाहिए ॥ ५० ॥

अन्यत्तु त्र्यङ्गुलान्यूनं धातुजं च शिलाभवम् ।
द्वादशाङ्गुलतश्चोर्ध्वं स्थावरं न तु जङ्गमम् ॥ ५१ ॥

अन्यत्र एक अंगुल से बड़ा होना चाहिए। वह मूर्त्ति धातुज या शिला की बनी हो और बारह अङ्गुल से ऊपर यह मूर्त्ति स्थावर हो, न कि जंगम॥ ५१॥

ततो न्यूनमपि व्यर्थं स्थावरं यन्त्रमद्रिजे ।
तत्स्थापनविधिं वक्ष्ये शृणु देवि समाहिता ॥ ५२॥

हे पार्वती, इसके बाद थोड़ा भी **स्थावर यन्त्र** व्यर्थ है, अब इसके **स्थापन की विधि** बतलाता हूँ॥ ५२॥

दीक्षादिषूक्तदिवसे स्वयं वाचार्यतोऽपि वा ।
स्थापयेदुक्तविधिना स्थिरं वा चरमेव वा ॥ ५३॥

दीक्षादि में उसी दिन स्वयं वा आचार्य से पूर्वोक्त विधि से स्थिर वा चर यंत्र की स्थापना करनी चाहिए॥ ५३॥

अत्राचार्यो गुरुर्वापि ज्येष्ठो वा भवतीश्वरि ।
नान्यः कदाचिदथवा स्वयं कुर्यात् तदाज्ञया ॥ ५४॥

आचार्य एवं गुरु अथवा इन दोनों में जो ज्येष्ठ हों, हे ईश्वरि इनसे भिन्न अन्य कोई नहीं होना चाहिए। हाँ, इनकी आज्ञा लेकर स्वयं पूर्वोक्त विधि से यन्त्र स्थापित कर सकता है॥ ५४॥

ब्रह्माणं च सदस्यं च वृणुयात् सम्भवे सति ।
कृताह्निकः पूर्वदिने सङ्कल्प्य स्थापनं ततः ॥ ५५॥

यदि संभव हो तो ब्रह्मा और सदस्य का भी वरण करे। स्थापना के पूर्व दिन आह्निक कृत्य सम्पन्न कर संकल्प कर लें, तब स्थापना करे॥ ५५॥

स्वस्तिवाच्याथाभ्युदयं कृत्वा नत्वा गुरून् द्विजान् ।
संस्कृते पञ्चगव्ये तु पात्रे वै मज्जयेत् शिवे ॥ ५६॥

स्वस्तिवाचन एवं आभ्युदयिक श्राद्ध सम्पन्न कर गुरु और ब्राह्मणों को प्रणाम कर, पूजा के उपयोग में आनेवाले पात्रों की पूर्णतः सफाई कर, पञ्चगव्य से उन्हें सुसंस्कृत कर लेना चाहिए॥ ५६॥

प्रणवेनाथ तस्मिंस्तु जपेदब्लिङ्गमन्त्रकान् ।
मूलं सहस्रधा जप्त्वा तत उद्धृत्य चान्यतः ॥ ५७॥

उसमें प्रणव अर्थात् ओंकार के साथ शिव मन्त्र का एक निश्चित संख्या में जप करे, इसके बाद एक हजार बार मूल प्रकृतिमन्त्र का जप करे॥ ५७॥

मूलाष्टमन्त्रितैः पञ्चामृतैश्चाप्यभिषेचयेत् ।
शुद्धतोयैश्च सन्धूप्य चन्दनाष्टकमिश्रिते ॥ ५८॥

मूलाष्ट से मन्त्रित, पञ्चामृत से अभिषिक्त, शुद्ध जल से धुले, अष्टगन्ध के साथ चन्दन की बुकनी मिलाकर उसे सुधूपित करे॥ ५८॥

वर्णौषधक्वाथजले मज्जयेन्मूलमन्त्रतः ।
देवतां पूजयेत् तत्र विशेषविधिना ततः ॥ ५९॥

वर्णौषध के क्वाथ जल में अर्थात् जंगली जड़ी बूटियों से निर्मित काढ़े वाले जल में मूलमंत्र से स्नान करावे (डुबो दे), इसके बाद विशेष विधि से देवताओं की पूजा करे॥ ५९॥

रात्रौ जागरणं कार्यं गीतवाद्यकथादिभिः ।
परेऽह्नि वापि सङ्कल्प्य पद्ममष्टदलं लिखेत् ॥ ६०॥

गाजे-बाजे और कथा प्रसङ्ग में रात्रि में जागरण करे। दूसरे दिन स्नान-ध्यान के बाद पुनः संकल्प कर अष्टदल कमल लिखे॥ ६०॥

तस्मिन् मध्ये चाग्रतश्च कलशानां तु सप्तकम् ।
संस्थाप्योक्तविधानेन पूजयेदङ्गदेवताः ॥ ६१॥

उसके बीच में आगे से सात कलशों की स्थापना कर पूर्वोक्त विधान से अङ्गदेवता की पूजा करे॥ ६१॥

मध्यमे त्रिपुरामिष्ट्वा स्पृशन् कलशसप्तकम् ।
अष्टाधिकशतं मूलं जपेन्मालामनुं तथा ॥ ६२॥

बीच में त्रिपुरा की पूजा कर सातों कलशों का स्पर्श करे। फिर मूलमन्त्र का १०८ बार जप कर तत्पश्चात् माला मंत्र का जप करे॥ ६२॥

जलादुद्धृत्य तद्यन्त्रं शोधितं दोषजालतः ।
पीठे संस्थाप्य विविधवाद्यघोषपुरःसरम् ॥ ६३॥

जल से उस यन्त्र को बाहर निकालकर दोष जाल से उसे शोधित करे, फिर उसे पीठ पर स्थापित कर, गीत, वाद्य बाजे गाजे के साथ उत्सव मनाये॥ ६३॥

तत्तन्मन्त्रेण कलशानभिषिच्य क्रमेण तु ।
शुद्धैर्जलैश्चाभिषिच्य मार्जयेच्छुद्धवाससा ॥ ६४॥

उन यन्त्रों से क्रमशः कलशों का अभिषेक कर फिर, शुद्ध जल से स्नापित कर, शुद्ध वस्त्र से मार्जन करे॥ ६४॥

पीठं च कलशोदैश्चाभिषिच्याऽगतनूद्भवे ।
अमृतीकृत्य मूलेन प्रजप्याथाष्टधा ततः ॥ ६५॥

हे पार्वति! पीठ को कलश जल से अभिसिंचित कर उसका अमृतीकरण कर मूल मंत्र का आठ बार जप करे॥ ६५॥

पञ्चरत्नं सुवर्णं च बन्धनौषधमेव च ।
पीठगर्ते विनिक्षप्य मूलविद्यां च मातृकाम् ॥ ६६ ॥

पीठगर्त्त में पञ्चरत्न, सोना, बन्धन और औषध को गिराकर, मूल विद्या और मातृकामन्त्र को ॥ ६६ ॥

जपन् संस्थाप्य मालां तु पठन् वै बन्धयेद् दृढम् ।
प्रत्यङ्मुखं तु संस्थाप्यमथवा प्राङ्मुखं शिवे ॥ ६७ ॥

जपते हुए, माला को स्थापित कर उसे दृढ़ता से बाँध दे, उसे हे शिवे! उसे पश्चिम या पूर्वमुख स्थापित कर दे ॥ ६७ ॥

प्रजप्य मूलाष्टशतं यथाविभवमर्चयेत् ।
आवाह्य चक्रराजं तु तत्प्राणस्थापनं चरेत् ॥ ६८ ॥

मूलमंत्र १०८ बार जपकर, यथाविभव (आय के अनुसार) पूजा करे। श्रीचक्रराज का आवाहन कर उनमें प्राण प्रतिष्ठित करे ॥ ६८ ॥

ततः प्रपूजयेत् तत्र होमं कुर्याद् यथाविधि ।
संस्थाप्याग्निं सावरणां गायत्रीमष्टधा हुनेत् ॥ ६९ ॥

उसके बाद चक्रराज की पूजा करे, फिर यथाविधि उस मंत्र से हवन करे, अग्नि की स्थापना कर सावरण गायत्री मन्त्र से आठ आहुति दे ॥ ६९ ॥

अष्टोत्तरं सहस्त्रं वा शतं वा पायसं हुनेत् ।
होमशेषं समाप्याथ चक्रे देवीं प्रपूजयेत् ॥ ७० ॥

पायस अर्थात् खीर की १०८, हजार या सौ, आहुति डालकर हवन करे। होमशेष समाप्त कर चक्र में देवी की पूजा करे ॥ ७० ॥

प्राणान् संस्थाप्य चादर्शं नैवेद्यं विविधौदनम् ।
समर्पयेत् प्रभूतं तु ततः पूजां समाचरेत् ॥ ७१ ॥

प्राणप्रतिष्ठा कर आदर्श नैवेद्य विविध ओदन समर्पित कर प्रभूत पूजा करे ॥ ७१ ॥

तोषयेच्च गुरून् विप्रान् वटुकाँश्च सुवासिनीः ।
दक्षिणावस्त्रभूषाद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च शाङ्करि ॥ ७२ ॥

हे शाङ्करि! दक्षिणा, वस्त्र, आभूषण, भक्ष्य और भोज्य से गुरु, ब्राह्मण, वटुक और सुवासिनी को संतुष्ट करे ॥ ७२ ॥

मूर्तिस्थापनमप्येवं चरं चापि हिमाद्रिजे ।
चरे पीठस्य संस्कारं पञ्चरत्नादिकं नहि ॥ ७३ ॥

हे पार्वति! इस तरह मूर्त्तिस्थापन की तरह चर की भी स्थापना करे। अन्तर केवल इतना है कि चर पीठ के संस्कार में रत्नादिक नहीं किये जाते ॥ ७३ ॥

उद्वासनं स्थिरे नास्ति सकृदावाहनं भवेत् ।
निमित्तेन स्थिरं वापि चरं वा स्थापयेत् पुनः ॥ ७४ ॥

चर मूर्त्ति की स्थापना में जैसे संस्कार की आवश्यकता नहीं होती वैसे ही स्थिर मूर्त्ति में उद्वासन नहीं होता। एक बार इनका आवाहनमात्र होता है। किसी निमित्तविशेष से स्थिर या चर मूर्त्ति की स्थापना करे॥ ७४ ॥

तत्ते वदामि संक्षिप्य त्रिपुरार्णवतः शृणु ।
रजस्वलाऽन्त्यजैश्चौरैर्विण्मूत्रासृक्श्वगर्दभैः ॥ ७५ ॥

अतः त्रिपुरार्णव का सार संक्षेप में मैं बतलाता हूँ, सुनो। रजस्वला, अन्त्यज, चोर, विष्ठा, मूत्र, हड्डी, घोड़े और गदहे॥ ७५ ॥

वराहपतितैः स्पर्शे स्थानभ्रंशेऽग्निदाहके ।
शिलादिशुद्धिमुद्धृत्य कृत्वा संस्थापयेत् पुनः ॥ ७६ ॥

सूअर, और पतितों के स्पर्श से, स्थानभ्रष्ट होने पर, आग में जलने पर, शिलादि शुद्धि से उन्मूलित करने पर, पुनः उस मूर्त्ति की स्थापना करनी चाहिए॥ ७६ ॥

चौरैर्हृते खण्डिते वा तद्दिने स्यादभोजनम् ।
खण्डितं मूलमन्त्रेण चोद्धृत्य प्रक्षिपेज्जले ॥ ७७ ॥

चोरों से चुरा लेने पर, मूर्त्ति टूट-फूट जाने पर, उस दिन उपवास करे, खण्डित प्रतिमा को मूल मंत्र से उन्मूलित कर जल में फेंक देना चाहिए॥ ७७ ॥

पुनः संस्थापयेत् तत्र हृते चौरैरपीश्वरि ।
अमेध्यादिस्पर्शने च त्रिरात्रोर्ध्वमपूजने ॥ ७८ ॥

हे महेश्वरि, चोरों ने जहाँ से मूर्त्ति चुरा ली हो, वहीं पुनः मूर्त्ति की स्थापना करवानी चाहिए। अपवित्रादि वस्तु के स्पर्श होने पर तथा तीन रात से ऊपर पूजा न करने पर॥ ७८ ॥

दृष्टादृष्टाशेषदोषशान्तये प्रतिवत्सरम् ।
महाभिषेकः कर्तव्यस्तद्विधानं शृणूच्यते ॥ ७९ ॥

देखा, अनदेखा चर और स्थिर यन्त्र अथवा मूर्त्ति के सर्व दोषों की शान्ति के लिए प्रतिवर्ष **महाभिषेक** करना चाहिए। उसका विधान बतलाता हूँ, सुनो॥ ७९ ॥

संस्कृतैः पञ्चगव्यैश्च गन्धाष्टक-जलैस्तथा ।
संस्नाप्य कुशतोयेन मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ॥ ८० ॥

पञ्चगव्य तथा गन्धाष्टक जल से उस मूर्त्ति को या यन्त्र को पहले सुसंस्कृत करे, फिर कुश जल से तथा मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार स्नापित करे॥ ८० ॥

प्रोक्ष्य संस्पृश्य मूलेन तत्त्वं मन्त्रं च मातृकाम् ।

विन्यस्य सिन्दूरकेण कुर्यादष्टदलाम्बुजम् ॥ ८१ ॥

उन्हें पोंछकर, उनका स्पर्श कर, मूल मन्त्र, तत्व मन्त्र एवं मातृक मन्त्र से उनका विन्यास करे। फिर, सिन्दूर से अष्टदल कमल का वहाँ निर्माण करे॥ ८१ ॥

तण्डुलोपरि तस्मिंस्तु दीक्षावत् कलशं न्यसेत् ।
देवतां तत्र सम्पूज्य जपेन्मूलं सहस्त्रधा ॥ ८२ ॥

अष्टदल कमल पर चावल रक्खें और दीक्षा में जैसे कलश रक्खे जाते हैं, उसी प्रकार रक्खें। यहाँ इष्ट देवी की पूजा करे और एक हजार मूलमंत्र का जप करे॥ ८२॥

मालामन्त्रं चाष्टधा च श्रीसूक्तं चाष्टधा तथा ।
प्रजप्य नित्यामन्त्राँश्च मातृकामूलमन्त्रतः ॥ ८३ ॥

आठ बार **माला मन्त्र** का जप, आठ बार श्रीसूक्त का पाठ, नित्या मन्त्र, मातृका मन्त्र और मूलमन्त्र से॥ ८३ ॥

अभिषिञ्चेत् ततो रात्रौ पूजयेत् तु विशेषतः ।
सुवासिनीर्ब्राह्मणाँश्च पूजयेद् गिरिकन्यके ॥ ८४ ॥

अभिषेक करे और रात में विशेष पूजा कर, हे पार्वति, सुवासिनी और ब्राह्मणों की पूजा करे॥ ८४॥

एतेन सर्वदोषाणां चरस्यापि स्थिरस्य च ।
यन्त्रस्य चाथवा मूर्तेः शान्तिः स्याद् गिरिराट्सुते ॥ ८५ ॥

हे पर्वतराज की पुत्रि! ऐसा करने से चर और स्थिर यन्त्र अथवा मूर्त्ति के सर्वदोषों की शान्ति होती है॥ ८५ ॥

प्रत्यब्दमेतत् कर्तव्यं स्थावरे वा चरेऽपि वा ।
दोषसम्भावनायां तु नूतने वापि शाङ्करि ॥ ८६ ॥

ऐसा प्रति वर्ष करना चाहिए। हे शाङ्करि, ये स्थावर हो या चर, दोष की कहीं संभावना हो, या नूतन प्रतिमा हो, अभिषेक करना ही चाहिए॥ ८६ ॥

कर्तव्यं सर्वथा ह्येतत् त्रिपुरास्थितिहेतवे ।
महामहाभिषेके तु मालामन्त्रं च सूक्तकम् ॥ ८७ ॥

त्रिपुरादेवी के निवास हेतु ये सर्वथा कर्तव्य है, **महामहाभिषेक** में माला मंत्र एवं शूक्त पाठ अवश्य करे॥ ८७॥

जपेच्चतुःषष्टिवारमष्टधा चापि वै हुनेत् ।
अशक्तेन ब्राह्मणैस्तु कारयेद्धवनं जपम् ॥ ८८ ॥

मालामन्त्र और श्रीसूक्त का पाठ ६४ बार होना चाहिए अथवा आठ बार हवन करे। यदि कर्त्ता अशक्त हो तो ब्राह्मणों से हवन करवाये और जप भी॥ ८८ ॥

एवं सकृदनुष्ठानात् प्रसन्ना देवता भवेत् ।
एतत्तु स्थावरे कृत्वा वाजपेयफलं भवेत् ॥ ८९ ॥

ऐसे एक अनुष्ठान से भी त्रिपुरा देवी प्रसन्न होती है। स्थावर यन्त्रादि पर अभिषेक करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥

सान्निध्यं त्रिपुरायास्तु नित्यं तत्र महेश्वरि ।
इति यत्तु त्वया पृष्टं तदाख्यातमगात्मजे ॥ ९० ॥

जहाँ ऐसा होता है वहाँ देवी त्रिपुरा का स्थायी सान्निध्य होता है। हे महेश्वरि! तुमने जो पूछा, उसे मैंने बतला दिया ॥ ९० ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे यन्त्रोद्धारादिश्चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥

श्री त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में यहाँ यन्त्रोद्धारादि नामक चौथा तरङ्ग पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

●

अथ पञ्चमस्तरङ्गः

(सर्वोत्कृष्टपीठ पूजाविधिः)

अद्रिकन्योवाच

विश्वेश श्रोतुमिच्छामि पूजाविधिमनुत्तमाम् ।
यथावत् तद्वद विभो त्रिपुरार्णवगोचरम् ॥ १ ॥

पर्वतपुत्री ने पूछा—

हे संसार के स्वामिन्, सर्वोत्कृष्ट पूजा की विधि मैं सुनना चाहती हूँ। हे स्वामी, त्रिपुरार्णव में इस सम्बन्ध में जैसा कहा गया है ठीक वैसा ही आप मुझे बतलायें ॥ १ ॥

महादेव उवाच

शृणु प्रालेयाद्रिकन्ये पूजाया विधिमादरात् ।
श्रीयन्त्रादौ यथालब्धमेकं प्रोक्तसुलक्षणम् ॥ २ ॥

हे हिमालयपुत्रि! पूजा की विधि आदरपूर्वक सुनो। पूर्वकथित सुलक्षण यथालब्ध यन्त्रादि में एक ॥ २ ॥

नवरत्नादिसम्भूते पीठे स्वच्छे मनोहरे ।
मृदु तूलाद्यासने च संस्थाप्य यन्त्रराजकम् ॥ ३ ॥

नवरत्नादि सम्भूत पीठ पर स्वच्छ, मनोहर एवं कोमल रूई आदि के आसन पर यंत्रराज को स्थापित कर ॥ ३ ॥

भूमौ वा केवले पीठे आसनादिविवर्जिते ।
संस्थाप्य देवतां रोगी भवेद् दारिद्र्यवानपि ॥ ४ ॥

धरती पर अथवा आसनादिरहित केवल पीठ पर, यन्त्र की जो स्थापना कर पूजा करता है, वह रोगी और दरिद्र होता है ॥ ४ ॥

पांत्राण्यासाद्य तत्पश्चान्मध्ये पीठात्मनोः शिवे ।
संशोधितमुखो मन्त्री पूजयेत् त्रिपुराम्बिकाम् ॥ ५ ॥

हे शिवे, पात्रासादन कर उसके पश्चात् पीठ के बीच में स्थापित त्रिपुराम्बिका की पूजा के पूर्व साधक अपने **मुख का संशोधन** करे ॥ ५ ॥

जपादौ मुखदुर्गन्धो देवताशापमाप्नुयात् ।
अतो दुर्गन्धिनाशाय ताम्बूलादिकमिष्यते ॥ ६ ॥

क्योंकि, जपादि में मुख दुर्गन्धयुक्त रहने पर देवता का शाप भोगना पड़ता है। अतः दुर्गन्ध-विनाश के लिए **पान आदि खाने का विधान** किया गया है ॥ ६ ॥

ताम्बूलं पञ्चतिक्ताढ्यमथवा पञ्चतिक्तकम् ।
एलाद्यन्यतमं वापि मुखशोधनमुच्यते ॥ ७ ॥

पान, पञ्चतिक्ताढ्या (अर्थात् पाँच कड़वी दवाइयाँ, गुरुच, भटकटैया, सोंठ, कुट और चिरायता) और इलायची आदि को भी **मुखशोध** कहा जाता है ॥ ७ ॥

जातीफलं च तत्पत्रं कर्पूरैलालवङ्गकम् ।
पञ्चतिक्तं समाख्यातं देवता-प्रीतिकारकम् ॥ ८ ॥

जायफल, उसके पत्ते, कपूर, इलायची और लौंग, ये **पञ्चतिक्त** कहलाते हैं, तथा देवता के प्रीतिकारक है ॥ ८ ॥

पीठं यजेत् सुपुष्पाद्यैरलङ्कृतमतीव तु ।
मण्डूकं कालाग्निरुद्रं मूलप्रकृतिमेव च ॥ ९ ॥

पुष्पादि से अलंकृत **पीठ की पूजा** करे जिसमें मण्डूक, काल, अग्नि, रुद्र मूल प्रकृत्यादि आधारों की पूजा करे ॥ ९ ॥

आधारशक्तिं कूर्मं चानन्तं पश्चाद् वराहकम् ।
एकैकस्योर्ध्वतश्चैतान् क्रमात् सम्पूज्य वै ततः ॥ १० ॥

तदनन्तर आधारशक्तिस्वरूप पीठस्थल में कूर्म, अनन्त और फिर वराह—इनकी क्रमशः ऊपर से एक एक की पूजा करने के बाद फिर ॥ १० ॥

पृथिवीं तस्य दंष्ट्राग्रे तच्चतुर्दिक्षु चाग्रतः ।

समुद्रानिक्षुमदिराघृतदुग्धमयान् क्रमात् ॥ ११ ॥

उस वराह के दाँतों की नोंक पर धरती तथा उसके चारों ओर समुद्र, इक्षु एवं घृत-दुग्धमय मदिरा की क्रमशः उपासना करे॥ ११॥

सप्तदीपं च तन्मध्ये नवखण्डविराजितम् ।
पञ्चाशद्वर्णसहितं तत्प्रागाद्यष्टदिक्षु वै ॥ १२ ॥

इसके पश्चात् सप्तद्वीप और उसके बीच विराजित पचास वर्णों के साथ नौवों खण्ड और पूर्वादि आठों दिशायें॥ १२॥

वामतः पुष्परागं च नीलवैडूर्यविद्रुमान् ।
मौक्तिकं गोमेदपद्मरागवज्रांस्तु मध्यमे ॥ १३ ॥

बायीं ओर से पुष्पराग=पोखराज, नीलमणि, लहसुनियाँ (वैदूर्य), प्रवाल या मूँगा, मोती, गोमेद, पद्मराग और बीच में हीरे एवम्॥ १३॥

यजेन्मरकतं रत्नान्येतन्नामप्रपूर्वकम् ।
नाथवर्गसमायोगान्मध्ये सौवर्णपर्वतम् ॥ १४ ॥

मरकत मणि, इन रत्नों का नामपूर्वक पूजन करे। नाथवर्ग के समायोग से बीचोंबीच सोने का पर्वत॥ १४॥

तदूर्ध्वे नन्दनोद्यानं तस्मिन् कल्पद्रुमवाटिकाम् ।
तस्यामृतून् वसन्ताद्यान् तत्प्रत्यक्पूर्वयोः क्रमात् ॥ १५ ॥

उस पर्वत पर नन्दन उद्यान हो, उस उद्यान में कल्पद्रुम की बगीची हो। उस बगीची में पूर्व पश्चिम क्रम से वसन्तादि ऋतुओं का समागम हो॥ १५॥

इन्द्रियाश्वान् तदर्थात्मगजान् तन्मध्यतः शिवे ।
विचित्ररत्नभूमिं च यजेच्चक्रेश्वरीः क्रमात् ॥ १६ ॥

हे शिवे, इन्द्रियरूपी घोड़े को तथा तदर्थ आत्मस्वरूप हाथियों को और उसके बीच से विचित्र रत्नभूमि की तथा चक्रेश्वरी की क्रमशः पूजा करनी चाहिए॥ १६॥

रत्नवन्नवकं कालमुद्रामातृश्च देशकम् ।
रत्नं गुरुं तत्त्वकं च ग्रहं मूर्तिं च मध्यमे ॥ १७ ॥

रत्नों की तरह नौ रत्नों के समूह को, काल मुद्रा एवं मातृका के मार्गदर्शक, रत्न, गुरु, तत्त्व और बीच में ग्रहमूर्त्ति को॥ १७॥

करुणातोयपरिखं स्वर्णप्राकारकं तथा ।
मध्ये मणीमण्डपकं कोणेषु राक्षसादितः ॥ १८ ॥

करुणारूपी जल की खाईं से घिरा, और नगर के चारों ओर रक्षा के लिए बनाये गये सोने के परकोटे, बीच में मणि के मण्डप कोणों में प्रथमतः राक्षस॥ १८॥

शक्तीः कालं देशमथाकारं शब्दं च रूपिणीः ।
सङ्गीतयोगिनीं मध्ये तत्र वै मणिवेदिकाम् ॥ १९॥

शक्ति, काल, देश, आकार, शब्दरूपिणी, और संगीतयोगिनी तथा इनके बीच मणिवेदिका की भी पूजा करे॥ १९॥

श्वेतच्छत्रं पूर्वदिशि रत्नसिंहासनं ततः ।
तद्वायव्यादिपादेषु ब्रह्मादित्रयमीश्वरम् ॥ २०॥

सफेद रंग का राजकीय श्वेतछत्र, इसके बाद पूर्व की ओर रत्नों का सिंहासन, इसके वायव्यादि पादों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा करे॥ २०॥

सदाशिव-महाप्रेतफलकं तस्य चोपरि ।
पादोर्ध्वेषु प्राग्वदेव धर्मं च ज्ञानमेव च ॥ २१॥

सदाशिव का महाप्रेतफलक उसके ऊपर, ऊपर उठे पैरों में पहले की ही तरह धर्म और ज्ञान की पूजा करे॥ २१॥

वैराग्यं चैश्वर्यमधर्माद्यान् पश्चिमादितः ।
तत्र मायां तत्र विद्यामनन्तं तत्र पूजयेत् ॥ २२॥

सबसे पीछे वाले को प्रथमतः वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्मादि की पूजा करे। वहीं माया, विद्या, अनन्तादि की पूजा करनी चाहिए॥ २२॥

फणापञ्चदशोपेतं तस्य मध्यफणे स्मरेत् ।
अष्टपत्रं सुपद्मं तु तस्मिन्नेव प्रपूजयेत् ॥ २३॥

पन्द्रह फणों से युक्त में बीच वाले फण का स्मरण करे। उसपर अष्टपत्र एवं सुन्दर पद्म में ही उसकी पूजा करे॥ २३॥

पद्ममानन्दकन्दं च संविन्नालमपीश्वरि ।
प्रकृतिमयपत्राणि विकारमयकेसरान् ॥ २४॥

पद्म अर्थात् कमल तथा आनन्दकन्द अर्थात् प्रसन्नतामूलक परमात्मा, संविद् अर्थात् चेतना, नाल अर्थात् कमलडंडी भी, प्रकृतिमय पत्रों की तथा विकारमय केसरों की भी, हे ईश्वरि! पूजा करनी चाहिए॥ २४॥

कर्णिकां मातृतत्त्वाढ्यामर्केन्दू वह्निरेव च ।
प्रणवाद्यैः क्रमाद् देवि यजेत् प्रोक्तत्रिमण्डलम् ॥ २५॥

कर्णिका अर्थात् पूल के डंठल या पद्मबीज कोष, मातृतत्त्व से सम्पन्न षोडश मातृकायें, सूर्य, चंद्र और वह्नि और प्रणवादि की पूजा पहले कथित विधि से करे॥ २५॥

बोधप्रकृतिमोहोत्थं सत्त्वादित्रिगुणं क्रमात् ।
आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमद्रिजे ॥ २६॥

प्रकृति मोह से उत्पन्न बोध, सत्व, रज, तम—ये तीनों क्रमिक गुण, तथा आत्मा एवम् अन्तरात्मा, हे पार्वति, इसी तरह परमात्मा को ॥ २६ ॥

ज्ञानात्मानं च ह्रीमाद्यं प्रागादिषु तु मध्यतः ।
तत्त्वात्मपञ्चकं ज्ञानं मायां तद्वत् कलामपि ॥ २७ ॥

आत्मज्ञान, आदि में 'ह्रीं' मध्य से प्रागादि, पञ्च तत्त्वात्मक ज्ञान, माया, उसी तरह कला भी ॥ २७ ॥

विद्यां परां चादियोगात् पूर्वस्मादष्टपत्रके ।
मोहिनीं क्षोभिणीं तद्वद् वशिनीं स्तम्भिनीमपि ॥ २८ ॥

आदियोग से परा विद्या, पूर्व से अष्टदल पर, मोहिनी, क्षोभिणी, उसी तरह वशिनी, स्तम्भिनी भी ॥ २८ ॥

आकर्षिणीं द्राविणीं वै ततश्चाह्लादिनीमपि ।
क्लिन्नां ततः क्लेदिनीं तु मध्ये पश्चात्तु सर्वतः ॥ २९ ॥

आकर्षिणी, द्राविणी, उसके बाद ह्लादिनी भी, उसके बाद क्लिन्ना, बीच में क्लेदिनी और सबसे पीछे ॥ २९ ॥

क्लीं सर्वतत्त्वकमलासनमेवमगोद्भवे ।
एवं समर्चयेत् पीठमथापदि तु प्रोच्यते ॥ ३० ॥

हे पर्वतपुत्रि, ''क्लीं'' सर्वतत्त्व स्वरूप कमलासन ही तो है। इस तरह ये पीठार्चन और मञ्चपाद देवताओं की पूजा कही गई है ॥ ३० ॥

मण्डूकात् परतत्त्वान्तं समष्ट्याभ्यर्च्य तत्परम् ।
अर्चयेत् पीठशक्त्याद्याः प्रोक्तरीत्या महेश्वरि ॥ ३१ ॥

हे महेश्वरि, इस तरह मण्डूक से लेकर परतत्त्वान्त तक सम्पूर्ण की पूजा कर, उसके बाद पीठ शक्त्यादि की पूर्वकथित रीति से पूजा करनी चाहिए ॥ ३१ ॥

इति पीठार्चनं प्रोक्तमाद्यबीजयुतान् यजेत् ।
प्रोक्तान्यत्राथ मूलार्चां वदामि शृणु संयता ॥ ३२ ॥

इस तरह मैंने पीठार्चन की विधि बतलाई। आदि बीज मंत्रयुक्त यह पूजा करनी चाहिए। ये विधियाँ अन्यत्र बतलाई गई हैं। अब मैं मूल अर्चा के सन्दर्भ में बतलाता हूँ, तुम संयत मन से यह सब सुनो ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे पीठपूजाविधिः पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

इति श्रीत्रिपुरार्णव के त्रिपुरासारसर्वस्व में पीठपूजाविधि नामक
पञ्चम तरङ्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

●

अथ षष्ठस्तरङ्गः

(आदिशक्तेस्त्रिविधा पूजा)

महेश्वर वाच

एवं पीठं समभ्यर्च्य पूजयित्वाऽऽत्मदेवताम् ।
आवाह्य त्रिपुरामाद्यां त्रिधा पूजां समाचरेत् ॥ १ ॥
पराख्यां मिश्ररूपां चापराख्यां क्रमतः शिवे ।

महादेव ने कहा—

इस तरह पीठ की पूजा कर, आत्मदेवता की पूजा कर, आदिशक्ति त्रिपुरा का आवाहन कर, उनकी तीन प्रकार की पूजा करनी चाहिए ॥ १ ॥

वह पूजा क्रमशः परा, मिश्र एवं अपरा नाग से त्रिविध है।

गौर्युवाच

कथं महेश त्रिविधा पूजा तत्र च को विधिः ? ॥ २ ॥
वद बालेन्दुचूडाल यदि मत्प्रीतिमानसि ।

गौरी बोली—

हे महेश! वह तीन तरह की पूजा कैसी हैऔर उसका विधान कैसा है ? ॥ २ ॥

माथे पर बालचन्द्र धारण करने वाले महादेव! यदि मुझ पर आप प्रीतिमान् है तो मुझे यह बतलायें ॥

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्याच्च रहस्यकम् ॥ ३ ॥

शिव ने कहा—

हे देवि, रहस्यों से भी बढ़कर यह गूढ़ रहस्य मैं बतलाता हूँ, आप सुनो ॥ ३ ॥

गोपितं सर्वतन्त्रेषु न क्वचित् प्रकटीकृतम् ।
आत्मानं गन्धपुष्पाद्यैरभ्यर्च्य शिवरूपिणम् ॥ ४ ॥

सभी तन्त्रों में इसे गुप्त रखा गया है। कहीं भी इसे प्रकट नहीं किया गया। साधक शिवस्वरूप अपनी आत्मा को गन्ध पुष्पादि से अलंकृत करे ॥ ४ ॥

स्वात्मीकृत्य स्वपात्रात् तु परापूजां समाचरेत् ।
ततः परापरां कृत्वा बाह्ये कुर्यात् ततोऽपराम् ॥ ५ ॥

अपने स्वरूप को स्थिर कर स्वपात्र से परापूजा करे। तदनन्तर परापरा-पूजा (मिश्ररूप पूजा) करके बाहर अपरापूजा करे ॥ ५ ॥

सङ्घट्टमुद्रया मूर्ध्नि पादुकां प्रजपन् बुधः ।

आत्मानं शिवरूपं वै क्षणं ध्यायेन्निराश्रयः ॥ ६ ॥

इनमें सङ्घट्ट मुद्रा से मस्तक पर पादुकामंत्र जप करते हुए स्वयं को शिव रूप होने की भावना क्षणभर करे—यह परापूजा है ॥ ६ ॥

एषा परा सपर्योक्ता मिश्रा तु द्विविधा स्थिता ।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन स्थूलं मानसमर्चनम् ॥ ७ ॥

मिश्रपूजा दो तरह की है—स्थूल एवं सूक्ष्म। इनमें स्थूलपूजा मानसपूजा है जो गुरुगम्य है ॥ ७ ॥

सूक्ष्मं जगन्मातृमन्त्रसामरस्यात्मचिन्तनम् ।
बाह्योपचाररूपा तु बाह्यपूजाऽपराऽभिधा ॥ ८ ॥

सूक्ष्मपूजा में जगन्माता के मन्त्र का सामरस्यपूर्वक आत्मचिन्तन होता है। बाह्योपचार रूप बाह्यपूजा को **अपरा पूजा** कहते हैं ॥ ८ ॥

मानसार्चा तु या स्थूला सा ज्ञेया गुरुमार्गतः ।
षडाधारे त्रिपीठे वा भुवनेऽध्व-क्रमेऽथवा ॥ ९ ॥

मानस पूजा, जो स्थूल पूजा कहलाती हैं; वह गुरुमार्ग से ज्ञेय है। इस पूजा के षडाधार, त्रिपीठ, भुवन अथवा अध्वक्रम में गुरुमार्गोपदेश से उसका जप में उपयोग करना चाहिए ॥ ९ ॥

ज्ञात्वोपदेशमार्गेण जपादिषु समाचरेत् ।
अशक्तो बाह्यपूजायां कुर्यादन्तःप्रपूजनम् ॥ १० ॥

गुरुमार्गोपदेश से उसे जानकर जपादि करे। अथवा बाह्यपूजा में अशक्त होने पर अन्तःपूजा करे ॥ १० ॥

समर्थस्तु यथा साङ्गं कुर्याद् विस्तारतोऽपि च ।
मन्त्रपाठं प्रकुर्वंश्च तदानन्त्यफलं स्मृतम् ॥ ११ ॥

समर्थ रहने पर तो साङ्गपूजा ही विस्तारपूर्वक करनी चाहिए। मन्त्रपाठपूर्वक बाह्यपूजा करने का अनन्तगुण फल कहा गया है ॥ ११ ॥

सूक्ष्मे तु सामरस्यात्मचिन्तनं प्रब्रवीमि ते ।
वाच्यानां वाचकं रूपं तत्पूर्वं प्रतिभासनात् ॥ १२ ॥

सूक्ष्म में सामरस्य रूप **आत्मचिन्तन की विधि** बतलाता हूँ। वाच्यों के वाचक रूप का प्रतिभासन पहले होता है ॥ १२ ॥

वाचका मातृकारूपा सा त्रिखण्डा त्रिकूटगा ।
कूटत्रयं च स्थूलादिस्वात्मरूपं महेश्वरि ॥ १३ ॥

हे महेश्वरि! वाचक मातृकारूप है, जो त्रिखण्डा और त्रिकूटगा है। और कूटत्रय स्थूलादि स्वात्मरूप हैं॥ १३॥

बाह्योपकरणैः पूजा तृतीया त्वपरा स्मृता।
एवं तु मिश्रपूजां तां कृत्वा विन्यस्य व्यापकम्॥ १४॥

बाह्य उपकरणों से की जानेवाली पूजा तृतीया अपरा है। इस तरह यह पूजा करके व्यापक न्यास करे॥ १४॥

पुष्पाण्यञ्जलिनादाय बिन्दौ पञ्चशिवात्मके।
मञ्चे कामेशवामाङ्के ध्यात्वोक्तां त्रिपुरां पराम्॥ १५॥

अञ्जलि से फूल लेकर पञ्चशिवात्मक विन्दु में मञ्च पर विराजित कामेश की बायीं गोद में उक्त परा देवता श्रीत्रिपुरा का ध्यान कर॥ १५॥

उत्थाप्य कुण्डलीं मार्गाच्छिवेन्दुसहितां स्मरन्।
तेजोमयीं तु संयोज्य पुष्पेष्वथ विनिक्षिपेत्॥ १६॥

कुण्डली-उत्थानपूर्वक मार्ग से शिवेन्दु सहित भगवती का स्मरण करते हुए, उस तेजोमयी विन्दु में पुष्पाञ्जलि समर्पित करे॥ १६॥

मूर्ध्नि तस्यास्तु तत्पश्चात् प्रविष्टां भास्वरूपतः।
साङ्गां विमृश्य पूर्वोक्तां मन्त्रपाठप्रपूर्वकम्॥ १७॥

उसके माथे में तेजोमय रूप से प्रवेश करते हुए अजसहित मन्त्रपाठपूर्वक विचार करते हुए॥ १७॥

आवाहयेद् ब्रह्मरन्ध्रे ध्यातां तेजोमयीं पराम्।
तत्प्रकारं शृणु परे त्रिपुराम्बामनुं पठन्॥ १८॥

परमतेजस्विनी माँ का ध्यान कर ब्रह्मरन्ध्र में उन्हें आवाहित करे। उसका प्रकार सुनो। तत्पश्चात् बारंबार त्रिपुराम्बा मन्त्र का पाठ करते हुए॥ १८॥

''महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दरूपिणि।
सर्वभूतहिताकारे एह्येहि त्रिपुरे शिवे॥ १९॥

महापद्मवनान्त में रहनेवाली, कारणानन्दस्वरूपिणी, प्राणियों के हित ही जिनका स्वरूप है ऐसी भगवति त्रिपुरे शिव स्वरूपिणी, आओ॥ १९॥

एह्येहि देवदेवेशि त्रिपुरे परमेश्वरि।
परामृतप्रिये मातः सन्निधानं कुरु प्रिये॥ २०॥

आओ, आओ, हे देव देवेशि! हे त्रिपुरे, ओ परमेश्वरि, हे परामृत प्रिये, हे मातः, मेरा सामीप्य प्राप्त करो॥ २०॥

देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते।

यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव'' ॥ २१ ॥

हे देवेशि, भक्तों को आसानी से प्राप्त होनेवाली, हर तरह के आवरणों से युक्त, मैं जब तक तुम्हारी पूजा करूँ तब तक तुम सुस्थिर हो जाओ ॥ २१ ॥

इत्येवं प्रार्थयन् तत्र समावाह्य प्रदर्शयेत् ।
आवाहनाद्याः षण्मुद्राः क्रमेण तु निदर्शयेत् ॥ २२ ॥

इस तरह प्रार्थना करते हुए, ठीक ढंग से आवाहन कर, क्रमशः छः मुद्राओं का प्रदर्शन करे ॥ २२ ॥

आवाहनं वै मुख्यस्य यथोक्तविधिना भवेत् ।
अन्यत्राङ्गेषु ध्यातानामागतानां विभावनम् ॥ २३ ॥

प्रमुख देवता का आवाहन यथोक्त विधि से होता है। अन्यत्र अङ्गन्यास कर देवता के पधारने की विभावना करनी चाहिए ॥ २३ ॥

एवं विज्ञाय कुर्वीत नान्यथाऽद्रितनूद्भवे ।
अङ्गं विन्यस्य सकलीकृत्य धेनुं प्रदर्श्य च ॥ २४ ॥

इस तरह ठीक ढंग से जानकर पूजा करनी चाहिए; अन्यथा हे पर्वतपुत्रि, अङ्गन्यास, सकलीकरण, धेनुमुद्रा प्रदर्शन कर ॥ २४ ॥

त्रिधा मूलेन सम्प्रोक्ष्य विप्रुड्भिः शङ्खसंस्थितैः ।
प्राणान् प्रतिष्ठाप्य पश्चात् सावृतेर्हृदि संस्पृशन् ॥ २५ ॥

मूल मन्त्र से तीन बार पोंछकर, शंखजल की विन्दुओं से मूलमंत्र के द्वारा भगवती की प्राणप्रतिष्ठा करे। इसके बाद सावरण देवी के हृदय का स्पर्श करते हुए ॥ २५ ॥

मूलमष्टशतं जप्त्वा ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् ।
त्रयोदशविधाः पश्चाद् विशेषार्घ्यात् तु तर्पयेत् ॥ २६ ॥

१०८ मूलमंत्र का जप करने के बाद १३ मुद्रायें दिखायें तथा विशेषार्घ्य से तर्पण करे ॥ २६ ॥

उपचारैस्ततो देवीं पूजयेद् भक्तिसंयुक्तः ।
षोडशैर्वा चतुःषष्टिविधैर्वापि तु पूजयेत् ॥ २७ ॥

इसके बाद उपचारों से देवी की पूजा भक्तिपूर्वक करे। ये उपचार १६ अथवा ६४ होना चाहिए ॥ २७ ॥

तत्प्रकारं ब्रुवे देवि क्रमेण शृणु साम्प्रतम् ।
आसनं स्वागतं चार्घ्यं पाद्यमाचमनं ततः ॥ २८ ॥

हे देवि, अब मैं उन उपचारों का प्रकार क्रमशः बतलाता हूं; सावधान होकर सुनो। आसन, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य तथा आचमन ॥ २८ ॥

मधुपर्कं चाचमनं स्नानभूमिप्रवेशनम् ।
स्नानवस्त्रं चासनं च दन्तधावनमेव च ॥ २९॥

मधुपर्क, आचमन, स्नान, भूमिप्रवेशन, स्नान, वस्त्र, आसन, और दन्तधावन ॥ २९॥

गण्डूषणं मुखस्याथो क्षालनं प्रोञ्छनं शिवे ।
आचामोऽभ्यञ्जनं केशशोधनं चाङ्गशोधनम् ॥ ३०॥

मुख की कुल्ली, मुखक्षालन, प्रोच्छन, आयाम, अभ्यञ्जन, केशशोधन, अङ्ग-शोधन ॥ ३०॥

उष्णोदकैः पञ्चसङ्ख्यामृतैः फलरसैर्जलैः ।
आचामोऽङ्गप्रमार्जश्च तत्पश्चाददिद्रकन्यके ॥ ३१॥

गर्म जल से, पञ्चामृत से, फलों के रस से और जल से, आचमन करे और अङ्गप्रमार्जन करे, इसके बाद हे पर्वतपुत्रि ॥ ३१॥

दुकूलं कञ्चुकं चान्ते पुनराचमनं तथा ।
ब्रह्मसूत्रं भूषणानां स्थानंयानं तथासनम् ॥ ३२॥

रेशमीवस्त्र, चोली, और अन्त में फिर आचमन तथा ब्रह्मसूत्र, आभूष, स्थान यान तथा आसन ॥ ३२॥

भूषणानि विचित्राणि यागस्थानप्रवेशनम् ।
कामेश्वराङ्कोपवेशं गन्धाक्षतसुमानि च ॥ ३३॥

चित्र विचित्र भूषण, यागस्थान में प्रवेश, कामेश्वर के अङ्क में उपवेशन, गन्ध अक्षत और फूल ॥ ३३॥

धूपं दीपं च नैवेद्यं पूर्वापाशनमेव च ।
प्रार्थनं प्राण मुद्रा च पानीयापोशनं परम् ॥ ३४॥

धूप, दीप, नैवेद्य, भोजन करने से पहले पढ़े जाने वाले मंत्र, प्रार्थना प्राणमुद्रा जबसे भोजन पात्र को आवेष्टित करने का मंत्र ॥ ३४॥

हस्तक्षालनगण्डूषौ करोद्वर्त्तनकं ततः ।
पाद्यमाचमनीयं च फलं ताम्बूलमेव च ॥ ३५॥

हाथ धोना, कुल्ली करना, उसके बाद करोद्वर्त्तन, फिर पाद्य, आचमनीय, फल एवं ताम्बूल ॥ ३५॥

दक्षिणामारार्तिकं च परिक्रामं नमस्क्रिया ।
पुष्पाञ्जलिं स्तोत्रमपि छत्रचामरबीजनान् ॥ ३६॥

दक्षिणा, आरती, परिक्रमा, नमस्कार, पुष्पाञ्जलि, स्तोत्रपाठ, छत्र तथा चामर डुलाना ॥ ३६॥

गीतं वाद्यं प्रनृत्यं च निवेदनमतः परम् ।
चतुःषष्ट्युपचारोऽयं त्रिपुराप्रीतिवर्धनः ॥ ३७ ॥

गीत, वाद्य, नृत्य, निवेदन—ये **चौसठ त्रिपुराप्रीतिवर्धन उपचार** कहे गये हैं ॥ ३७ ॥

पाद्यार्घ्याचमनस्नानवस्त्राभरणचन्दनम् ।
पुष्पधूपदीपभक्ष्यताम्बूलाऽऽरतिपूजनम् ॥ ३८ ॥

पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभरण और चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, भक्ष्य, ताम्बूल, आरती और पूजन ॥ ३८ ॥

प्रदक्षिणा-नमस्कारावुपचारास्तु षोडश ।
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यं पञ्चपूजनम् ॥ ३९ ॥

प्रदक्षिणा, नमस्कार—ये **षोडश उपचार** हैं। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य ये **पञ्चोपचार पूजन** हैं ॥ ३९ ॥

पुनः पूजनके चैतज्जपादौ मानसेऽपि च ।
धराव्योमवायुतेजोऽमृतरूपां क्रमाद् यजेत् ॥ ४० ॥

फिर पूजा क्रम में जपादि मानसिक पूजा है। धरती, आकाश, वायु, तेज अमृत स्वरूपा हैं, अतः क्रम से इनकी पूजा करे ॥ ४० ॥

आसनं नवरत्नादि-पीठवस्त्रादिसम्भवम् ।
गन्धपुष्पाक्षतयवदूर्वासर्षपसंयुतम् ॥ ४१ ॥

आसन, नवरत्नादि से निर्मित पीठ, वस्त्रादि, गन्ध, पुष्प, अक्षत, जौ, दूर्वा और सरसोंयुक्त ॥ ४१ ॥

कुशरत्नतिलैस्तोयमर्घ्यं स्याद् देवताप्रियम् ।
कर्पूरतोयैः पाद्यं च तथाचमनमेव च ॥ ४२ ॥

कुश, रत्न, और तिल मिले जल का अर्घ्य देवताओं को प्रिय होता है कर्पूरजल से पाद्य तथा आचमन देवताओं को प्रिय होता है ॥ ४२ ॥

मधुदुग्धदधिस्वाज्यशर्कराफलसंयुतम् ।
मधुपर्कं तु कांस्ये स्यादथवा हैमराजते ॥ ४३ ॥

मधु, दूध, दही, शक्कर, घी और फल मिलाकर कांसे अथवा सोना या चाँदी के बर्तन में **मधुपर्क** तैयार किया जाता है ॥ ४३ ॥

तोयोपचारे सर्वत्र सुवासितजलं भवेत् ।
सुगन्धितैलैरभ्यङ्गं तथा द्रव्यैश्च शोधनम् ॥ ४४ ॥

जल के उपचार में सर्वत्र सुवासित जल का ही उपयोग करना चाहिए। सुगन्धित तैल प्रत्यङ्ग में लगाना चाहिए तथा द्रव्यों से शोधन करना चाहिये ॥ ४४ ॥

स्नानं नानाविधजलैस्तीर्थानीतैः सुनिर्मलैः ।
कुर्यादचालयन् देवि यन्त्राद्यं देवतार्चनम् ॥ ४५ ॥

अनेक विधि तीर्थों से लाये गये निर्मल जल से स्नान कराना चाहिए। हे देवि, इस अर्चन यन्त्रादि को बिना हिलाये ही स्नान-पूजन करना चाहिए॥ ४५ ॥

अभिषिच्यैव यन्त्राद्ये पूजयेत् त्रिपुराम्बिकाम् ।
यत उद्वासनात् पूर्वं कुप्यत्युच्चालने परा ॥ ४६ ॥

पहले यन्त्र का अभिषेक करे, फिर त्रिपुराम्बिका का पूजन करना चाहिए। क्योंकि यन्त्र का उच्चालन अभिषेक के अनन्तर ही किया जाय। ऐसा न करने से देवी कुपित हो जाती है॥ ४६ ॥

श्रीसूक्तेनाभिषेके तु कृते प्रीता भवेत् परा ।
यस्मात् परावाचकं तदतो नान्यत्तु तत्समम् ॥ ४७ ॥

श्रीसूक्त से अभिषेक करना भगवती को अतिप्रिय है। क्योंकि, यह परावाचक है। अतः इसके समान प्रिय उन्हें और कुछ नहीं है॥ ४७ ॥

वस्त्रं तु नवरत्नाद्यं रक्तकौशेयमुत्तमम् ।
कौसुम्भमप्यतीवेष्टं देवताया हिमागजे ॥ ४८ ॥

पहले नौ रत्नों वाला उत्तमोत्तम रेशम का लाल वस्त्र देना चाहिए। हे हिमालय-पुत्रि, केसरिया या सुनहला वस्त्र भी उन्हें अतीव प्रिय है॥ ४८ ॥

हरिद्रां चापि सिन्दूरं कुङ्कुमं कज्जलं तथा ।
सौभाग्यद्रव्यकं देयं देव्यै सौभाग्यमिच्छता ॥ ४९ ॥

सौभाग्य चाहनेवाले व्यक्ति को देवी के लिए हलदी, सिन्दूर, कुङ्कुम, काजल, तथा सौभाग्यसूचक अन्य द्रव्य देना चाहिए॥ ४९ ॥

उक्तोपचारादधिकैः सम्भवे सति पूजयेत् ।
केशधूपाङ्गरागादि-श्रेष्ठराजोपचारकैः ॥ ५० ॥

यदि सम्भव हो तो पूर्वोक्त उपचारों से अधिक उपचार से भी भगवती की पूजा करनी चाहिए। केश, धूप, अङ्गरादि के अतिरिक्त राजकीय श्रेष्ठ उपचारों का भी उपयोग करे॥ ५० ॥

चन्दनैरष्टगन्धैश्च नानापुष्पैः सुगन्धिभिः ।
शाकसूपौदनापूपभक्ष्यलड्डुकसंयुतम् ॥ ५१ ॥

चन्दन, अष्टगन्ध, अनेक प्रकार के सुगन्धित फूल चढ़ाये। शाक, दाल, भात, पूआ और लड्डू का भोग लगाना चाहिए॥ ५१ ॥

पायसेन समायुक्तं नैवेद्यं परिकल्पयेत् ।

पायसेन विना सर्वं न श्रीदेव्याः प्रियं भवेत् ॥५२॥

खीर के साथ ही नैवेद्य की परिकल्पना करे, क्योंकि, खीर के बिना कोई भी वस्तु भगवती को अच्छी नहीं लगती॥५२॥

केवलं पायसेनापि प्रीता भवति सुन्दरी ।
पञ्चतिक्तसमायुक्तं ताम्बूलं च मनोहरम् ॥५३॥

वह परमसुन्दरी भगवती नैवेद्य में केवल खीर से भी प्रसन्न होती है। पञ्चतिक्त के साथ मनोहर ताम्बूल भी भगवती को प्रिय है॥५३॥

तत आरार्तिकं कुर्यात् त्रिपुराप्रीतिकारकम् ।
स्वर्णादिपात्रे देवेशि पञ्चवर्णैः प्रकल्पयेत् ॥५४॥

हे देवेशि! इसके बाद त्रिपुरा प्रीतिकारक आरती करनी चाहिए। स्वर्णादि पात्र में पञ्चवर्णों से इसकी रचना करनी चाहिए॥५४॥

पद्मं वा स्वस्तिकं वापि चान्या वा रङ्ग-वल्लिका ।
सुशोभना कृता तत्र षोडश द्वादशापि वा ॥५५॥

कमल, वा स्वस्तिक अथवा कोई अन्य आकर्षक रङ्ग-वल्लिका (रंगौली) १६ या बारह की संख्या में रचना करनी चाहिए॥५५॥

नव सप्त पञ्च वापि त्रयं वा दीपपात्रकम् ।
डमर्वाकारमपि च पिष्टजं वोदनोद्भवम् ॥५६॥

नौ, सात, पांच वा तीन दीपपात्र होना चाहिए। उसका आकार डमरू की तरह हो, आटे या भात से बना हो॥५६॥

सुवर्णादिधातुजं वा चैकं वाप्युक्तसंख्यया ।
वर्तिकासंयुतं तच्च घृतपूर्णं प्रकल्पयेत् ॥५७॥

सुवर्णादि धातुओं से निर्मित एक वा प्रोक्तसंख्या में वत्ती और घी से भरा दीपक हो॥५७॥

सर्वतोभद्रसंयुक्तं महापुण्यफलप्रदम् ।
नानाविधसुयन्त्राढ्यं बीजाक्षरसमन्वितम् ॥५८॥

अनेक विधि सुन्दर यंत्रों से अलङ्कृत, बीजाक्षरयुक्त, सर्वतोभद्रयुक्त आरती के थाल महापुण्य फलदायक होते हैं॥५८॥

देवताप्रीतिजनकमारार्त्तिकमिहेश्वरि ।
एवं श्रीत्रिपुरां देवीं पूजयेदुपचारकैः ॥५९॥

हे परमेश्वरि! आरती का थाल देवता का प्रीतिजनक होता है। अतः इस तरह उपचारों से त्रिपुरा देवी की पूजा करनी चाहिए॥५९॥

चतुष्षष्टिविधैस्तद्वदथवा षोडशात्मकैः ।
सर्वं सम्यग्भावनया कर्त्तव्यमगराट्सुते ॥ ६० ॥

चौसठ उपचारों से अथवा षोडशोपचारों से उत्तम भावना से यह करना चाहिए ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे आवाहनाद्युपचारकथनं नाम षष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

इति श्रीत्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में आवाहनाद्युपचारकथननामक षष्ठ तरङ्ग समाप्त ॥ ६ ॥

●

अथ सप्तमस्तरङ्गः

(पूजानन्तरमन्यकर्तव्यानि)

गौर्युवाच

चन्द्रशेखर देवेश सम्पूज्याथोपचारकैः ।
ब्रूहि कर्तव्यमखिलं मम विस्तरशः प्रभो ॥ १ ॥

गौरी ने कहा—

हे चन्द्रशेखर, हे देवेश, हे प्रभो, यथोक्त उपचारों से पूजा के बाद का अखिल कर्तव्य विस्तारपूर्वक मुझे बतलायें ॥ १ ॥

शङ्कर उवाच

शृणु तच्चन्द्रचूडाले विधिं तत्पश्चिमं स्फुटम् ।
उपचारैरेवमिष्ट्वा पूजयेदावृतिं ततः ॥ २ ॥

शङ्कर बोले—

हे पार्वति, उसके बाद की विधि को स्पष्ट रूप से सुनो, उपचारों से पूजा कर उसका प्रत्यावर्तन करे ॥ २ ॥

तत्रादौ मूलदेवीं तु सर्वादौ च त्रिधा यजेत् ।
सव्य-दक्षकराभ्यां च बिन्दुभिः कुसुमाक्षतैः ॥ ३ ॥

इसमें पहले मूल देवी को सबसे पहले तीन प्रकार से पूजन करे। बायें और दायें हाथों का प्रयोग विन्दु, फूल और अक्षत के लिए है ॥ ३ ॥

द्वितीयाद्युद्धृतैः सम्यक् तत्तत्स्थाने विभावयन् ।
श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि समो वदन् ॥ ४ ॥

द्वितीय आदि के उद्धरणों से सम्यक् प्रकारेण उन उन स्थानों में उन देवताओं की भावना करते हुए ''मैं श्रीपादुका की पूजा करता हूँ, उनका तर्पण करता हूँ, उन्हें नमस्कार करता हूँ''—ऐसा बोलते हुए॥ ४॥

तत्तन्नाम पठित्वा तु तत एतदुदीरयेत् ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य पर्वान्तं शुक्लकृष्णयोः ॥ ५ ॥

उन देवताओं का नाम पढ़कर ही, बाद में यह उच्चारण करे। मास की प्रथम तिथि अर्थात प्रतिपद् से लेकर कृष्ण एवं शुक्लपक्ष के पर्वान्त तक॥ ५॥

कामेश्वर्यादिचित्रान्ताश्चानुलोमविलोमतः ।
नित्यास्त्रिकोणे रेखासु दक्षपूर्वोत्तरासु वै ॥ ६ ॥

अनुलोम और विलोम क्रम से कामेश्वरी से लेकर चित्रान्त तक की पूजा करनी चाहिए। देवताओं में दक्षिण, पूर्व, उत्तर की ओर त्रिकोण में नित्याओं की पूजा करनी चाहिए॥ ६॥

पञ्चकं प्रतिरेखायां ज्ञात्वा तत्तिथिजां यजेत् ।
उदयव्याप्तितिथिजां तिथिनित्यां प्रपूजयेत् ॥ ७ ॥

प्रति रेखा में पञ्चक (नक्षत्रदोष) को जानकर ही उस तिथि में उत्पन्न होनेवाली नित्या की पूजा करनी चाहिए। उदयकालीन विधि में उत्पन्न होनेवाली तिथि नित्या की पूजा करनी चाहिए॥ ७॥

क्षये नित्याद्वयं वृद्धावेकां नित्यां दिनद्वये ।
ततो नित्यामण्डलं तु पूजयेत् पूर्ववत् क्रमात् ॥ ८ ॥

तिथि क्षय में दो नित्याओं की पूजा होनी चाहिए, तिथि वृद्धि में एक ही नित्या का दो दिन पूजा होती है॥ ८॥

तथैव षोडशीमिष्ट्वा गुरुमण्डलकं यजेत् ।
तत्रौघा बहुधा भिन्नाः प्रकृतं तत्र वै शृणु ॥ ९ ॥

उसी तरह षोडशी की पूजा कर गुरुमण्डल की पूजा करे। वहाँ समूह बहुधा भिन्न हैं, उनका यथार्थ रूप मैं बतलाता हूँ, सुनो॥ ९॥

अष्टकोणस्य पश्चात् तु त्रिकोणात् पूर्वभागतः ।
चतुरस्त्रे महाक्षेत्रे गुरूणां पूजनं भवेत् ॥ १० ॥

अष्टकोण के पश्चिम और त्रिकोण के पूर्वभाग में चतुरस्त्र के महाक्षेत्र में गुरुमण्डल की पूजा होती है॥ १०॥

रेखात्रयं तत्र तिर्यक् स्मृत्वौघत्रयमर्चयेत् ।
प्रत्यग्रेखां समारभ्य चौघरेखासु वै क्रमात् ॥ ११॥

तीन तिर्यक् रेखा का स्मरण कर औघत्रय की पूजा करे। क्रमशः प्रत्यग् रेखा से प्रारम्भ कर औघ रेखा तक पूजन करे॥ ११॥

परप्रकाशोऽथ परशिवः शक्तिस्तदादिका ।
कौलेश्वरः शुक्ला देवी कुलेश्वरः कामेश्वरी ॥ १२॥

परप्रकाश, परशिव, फिर शक्ति आदि का, कौलेश्वर, शुक्लादेवी, कुलेश्वर और कामेश्वरी॥ १२॥

भोगोऽथ क्लिन्नसमयौ सहजो गगनस्ततः ।
विश्वो विमलमदनौ भुवनो लील एव च ॥ १३॥

भोग, क्लिन्न और समय, सहज, उसके बाद गगन, विश्व, विमल, मदन, भुवन और लीला॥ १३॥

स्वात्मा प्रियश्चाद्रिवेदनागसङ्ख्याः क्रमात् स्मृताः ।
दिव्यौघश्चापि सिद्धौघो मानवौघस्ततः परम् ॥ १४॥

अपनी प्रिय आत्मा, अद्रि (सात), वेद (तीन या चार), नाग (ग्यारह), इन संख्याओं का क्रमशः स्मरण करे। दिव्यौघ फिर सिद्धौघ और अन्त में मानवौघ का भी पूजन करे॥ १४॥

एवमोघं समभ्यर्च्य मानवौघस्य चान्ततः ।
शिवादींस्तर्पयेज्ज्ञाते नवमाद्यानथापि वा ॥ १५॥

इस तरह औघों की पूजा कर अन्त में मानवौघ की पूजा करे। इसके बाद शिवादि या नवमादि जो ज्ञात है उनका तर्पण करे॥ १५॥

तृतीयादीन् वापि तथा तत्तन्मन्त्रैस्तु तर्पयेत् ।
रेखात्रये समष्ट्या तु महाश्रीपादुकां यजेत् ॥ १६॥

तृतीयादि निश्चित विधियों को उन देवताओं के विशेष मंत्रों से तर्पण करे। तीनों रेखाओं की समष्टि पर **श्रीमहापादुका की पूजा** करे॥ १६॥

तत्तद्रेखासु सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिभिरद्रिजे ।
तर्पयेत् क्रमतश्चौघान् परांश्चापि परापरान् ॥ १७॥

हे पार्वति, उन रेखाओं पर उनकी पूजा कर पुष्पाञ्जलियों से क्रमशः औघ, पर एवं परापर का तर्पण करे॥ १७॥

अपरानपि देवेशि ततोऽङ्गाख्याः प्रपूजयेत् ।
ततो भूपुररेखासु पूजयेदणिमादिकाः ॥ १८॥

हे देवेशि! अपरों को भी पूजें, फिर अङ्गों की पूजा करे, उसके बाद भूपुर रेखाओं पर **अणिमादि की पूजा** करे॥ १८॥

ब्राह्म्यादिकास्तथा मुद्राः पश्चिमादिचतुर्ष्वपि ।
वायव्यादिषु कोणेषु पार्ष्णि-राक्षसमध्यतः ॥ १९॥

ब्राह्मादि तथा मुद्राओं की पश्चिम से चारों ओर पूजा करके वायव्यादि कोणों में पार्ष्णि, राक्षस और मध्य में॥ १९॥

हरीशयोस्तथा मध्ये क्रमेणैव तु तर्पयेत् ।
त्रैलोक्यमोहनं चक्रं पुष्पाञ्जल्यादितोऽर्चयेत् ॥ २०॥

हरि और शिव कोण में तथा पुनः मध्य में इस क्रम से पूजा तर्पण करे। यह **त्रैलोक्यमोहन चक्र की पूजा** है, पुष्पाञ्जलि आदि से यह पूजा करे॥ २०॥

तत्तद्रेखां समभ्यर्च्य चाणिमाद्याः प्रपूजयेत् ।
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सर्वाशापरिपूरके ॥ २१॥

उन रेखाओं की अर्चाकर उनपर, अणिमादि की पूजा करे। अन्त में उन्हें पुष्पाञ्जलि दे। यह **सर्वाशापूरक चक्र की पूजा** है॥ २१॥

प्रत्यग्दलादिवामेन कामाकर्षिणिका यजेत् ।
सर्वसंक्षोभणं चक्रं पुष्पाञ्जल्या प्रपूज्य च ॥ २२॥

पश्चिमादि दल के बायें से कामाकर्षिण्यादि की पूजा करे। इसके बाद **सर्वसंक्षोभण चक्र की पूजा** पुष्पाञ्जलि देकर पूरा करे॥ २२॥

पूर्वादितो दलेष्वेवमाग्नेयादित एव च ।
सन्तर्प्यानङ्गकुसुमा-प्रमुखाः क्रमशस्ततः ॥ २३॥

पूर्वादि क्रम से तथा आग्नेयादि क्रम से **अनङ्गकुसुमादि देवताओं की पूजा** करे॥ २३॥

पूजयेत् सर्वसौभाग्यदायकं चक्रमद्रिजे ।
प्रत्यक्कोणात्तु वामेन यजेत् संक्षोभिणीमुखाः ॥ २४॥

हे पार्वति, इसके बाद **सर्वसौभाग्यदायक चक्र की पूजा** करे। पश्चिम दिशा की ओर वाले कोण के बायें से संक्षोभिणी मुख की पूजा करे॥ २४॥

सर्वार्थसाधके तद्वद्दिष्ट्वा पूर्वक्रमेण तु ।
सिद्धिप्रदाद्याः सन्तर्प्याः सर्वरक्षाकरे तथा ॥ २५॥

इसी तरह सर्वार्थसाधक का पूर्वक्रम से सिद्धिप्रदादि तथा सर्वरक्षाकरी आदि का तर्पण करे॥ २५॥

सर्वज्ञाद्याः सर्वरोगहराऽर्च्या वशिनीमुखाः ।

पूर्वक्रमेण तत्पश्चात् सर्वसिद्धिप्रदायके ॥ २६ ॥

सर्वज्ञा आदि, सर्वरोगहरा, वशिनीमुखा आदि की पूर्वक्रम से पूजा करे तत्पश्चात् सिद्धिप्रदायिका प्रभृति की पूजा करे॥ २६ ॥

पुष्पाञ्जलिं प्रदायेत्थमायुधानि प्रपूजयेत् ।
त्रिकोणकोणेषु ततो कामेश्वर्यादिकं त्रयम् ॥ २७ ॥

इन्हें पुष्पाञ्जलि देकर आयुधों की पूजा करे। इसके बाद कामेश्वरी आदि तीनों देवियों की पूजा तीनों कोणों में करे॥ २७ ॥

तुर्यां समष्ट्या संपूज्य सर्वानन्दमयेऽर्चयेत् ।
मूलदेवीं तु तत्पश्चात् समष्ट्या चैकरूपतः ॥ २८ ॥

अन्त में चतुर्थ देवी की समष्टि से पूजा की जाय। इसके बाद समष्टि से एक रूप बनी सर्वानन्दमयी मूलदेवी की पूजा करे॥ २८ ॥

ध्यात्वाऽखण्डां समभ्यर्च्य मूलां तु शतधा यजेत् ।
तत्तदावरणस्यान्ते चक्रेशीस्त्रिपुरादिकाः ॥ २९ ॥

अखण्डा का ध्यान कर मूला की अच्छी तरह पूजा कर, उनका शतधा पूजन करे। इसके बाद आवरण के अन्त में चक्रेशी एवं त्रिपुरा आदि की पूजा करे॥ २९ ॥

प्रकटाद्या योगिनीश्चाप्याद्यायाः पुरतो यजेत् ।
वामदक्षिणयोर्देवि चक्रेश्वर्याः क्रमेण तु ॥ ३० ॥

तथा प्रकटादि योगिनियों को आद्या के आगे यजन करे। बायें-दायें क्रम से चक्रेश्वरी देवी की पूजा करे॥ ३० ॥

मुद्राः सिद्धीश्च सम्पूज्या नाथान् षड्दर्शनानि च ।
षडाधारानध्वषट्कं द्विशः सन्तर्पयेत् क्रमात् ॥ ३१ ॥

मुद्रा और सिद्धि की पूजा कर नाथों की और षड्दर्शन, षडाधार, अनध्वष्ट्क की क्रमशः दो बार पूजा करनी चाहिए॥ ३१ ॥

समर्पयेत् तत्तदन्ते पुष्पाञ्जल्या प्रपूजयेत् ।
अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ॥ ३२ ॥

प्रत्येक पूजा के अन्त में पुष्पाञ्जलि समर्पित करे और प्रार्थना करे, हे शरणागत-वत्सले, मुझे अभीष्ट की सिद्धि दे॥ ३२ ॥

भक्त्या समर्पये तुभ्यं तत्तदावरणार्चनम् ।
नित्यामन्त्राः स्वराद्याः स्युर्बालाद्याद्यास्तथौघकाः ॥ ३३ ॥

हे देवि! भक्तिपूर्वक मैं तुम्हें तत्तद् आवरण की पूजा समर्पित करता हूँ। नित्या, स्वराद्या, वाला, आद्या तथा ओघ की पूजा॥ ३३ ॥

अणिमास्त्वाद्यबीजाद्या ब्राह्म्याद्या दीर्घसंयुताः ।
मुद्रा-बीजादिकाः कामाकर्षिण्याद्याः स्वरादिकाः ॥ ३४॥

अणिमा, आद्यबीजाद्या, ब्राह्मयादि, दीर्घयुता, मुद्रा, बीजादिका, कामाकर्षिणी तथा स्वरादिका॥ ३४॥

काद्यष्टवर्गसंयुक्तास्त्वनङ्गाद्याः प्रकीर्तिताः ।
काद्याः संक्षोभिणीमुखा णाद्याः सिद्धिप्रदायिकाः ॥ ३५॥

कादि अष्टवर्गसंयुक्ता अनङ्गादि जो कहे गये हैं संक्षोभिणी मुख णाद्या और सिद्धि प्रदायिका॥ ३५॥

माद्यादिकास्तु सर्वज्ञा वर्गाद्या वशिनीमुखाः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्ते शुश्रूषितं पुरा ॥ ३६॥

सर्वज्ञा, माद्यादिका, वर्गाद्या, वशिनीमुखा—ये सभी जो तम सुनना चाहती हो और जो पहले सुन चुकी हो, वे सब आपको हे देवि! समर्पित हैं॥ ३६॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे आवरणकथनं नाम सप्तमस्तरङ्गः॥ ७॥

इति श्रीत्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में आवरणकथन नाम का
सातवाँ तरङ्ग समाप्त॥ ७॥

●

अथाष्टमस्तरङ्गः

(आवरणस्य ध्यानस्य पूजायाश्च विस्तारः)

देव्युवाच

वृषवाहावृतिं ध्यानं पूजां च तदनन्तरम् ।
अत्रानुक्तं तु यत् सर्वं कृपया वद मानद ॥ १ ॥

देवी ने कहा—

हे महादेव, **आवृति, ध्यान और पूजा** के सन्दर्भ में आपने जो कुछ भी कहा है उसमें जो अनकहा रह गया, हे मानद, कृपया वे सब मुझे बतलायें॥ १॥

महादेव उवाच

शृणु सर्वाङ्गसुभगे सावधानेन चेतसा ।
पीतशुक्लरक्तवर्णाः प्रत्येकं तु त्रिपञ्चिकाः ॥ २ ॥

महादेव ने कहा—

हे सर्वाङ्गसुभगे सावधान चित्त से सुनो, प्रत्येक त्रिपञ्चिका क्रमशः पीले, सफेद और लाल रंग की हैं॥ २॥

कामेश्वरीमुखाश्चैव महाविद्येश्वरीमुखाः।
तथा नीलपताकाद्यास्त्वेवं प्रोक्तास्त्रिपञ्चिकाः॥ ३॥

कामेश्वरीमुखा, महाविद्यश्वरीमुखा तथा नीलपताका आदि—ये तीनों त्रिपञ्चिका कही गई है॥ ३॥

सृणिपाशवराभीतिकरा मालां च पुस्तकम्।
धनुर्बाणान् दधानाश्च मूलदेव्यायुधाः पराः॥ ४॥

मूलदेवी अष्टभुजा है, उनके आठों हाथों में अष्टविध आयुध हैं। ये हैं क्रमशः—अंकुश, पाश, वर, अभयदान, माला, पुस्तक, धनुष और वाण॥ ४॥

तथा वर्णांशुका भूषास्त्रिणेत्राश्चन्द्रशेखराः।
एवं नित्याः सुसम्पूज्या ध्यात्वा निश्चलमानसः॥ ५॥

सुन्दर महीन रेशमी पोशाक और विभिन्न आभूषणों से सजी, तीन आँखोंवाली, शिर पर अर्द्धचन्द्र विराजित, पूजनीय देवी नित्या का निश्चल मन से ध्यान कर॥ ५॥

चन्द्रकोटिप्रभानिन्दुभूषान्नेत्रत्रयोज्ज्वलान्।
चित्पुस्तकाभयवरकरान् श्वेतांशुकादिकान्॥ ६॥

तीन दिव्य आँखोंवाली, करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा को भी अपनी प्रभा से फीका करनेवाली, चित्, पुस्तक, अभय, वर हाथों में लिए श्वेतांशुक वाली को॥ ६॥

रक्तशक्त्याढ्यवामाङ्कान् ध्यायेदौघादिकान् गुरून्।
त्रिकोणाद् बहिराग्नेयरुद्रासुरमरुत्सु च॥ ७॥

रक्त शक्ति से सम्पन्न बायें अङ्गवाले औघादिक गुरुओं का ध्यान करे। त्रिकोण से बाहर आग्नेय, रुद्र, असुर और मरुद्गण की कोण में पूजा करे॥ ७॥

पुरतश्च चतुर्दिक्षु चाङ्गदेवीः प्रपूजयेत्।
सर्वज्ञा नित्यतृप्ताऽनादिबोधा च स्वतन्त्रका॥ ८॥

आगे से चारों ओर अङ्गदेवता की पूजा करे। अङ्गदेवता ये हैं—सर्वज्ञा, नृत्यतृप्ता, अनादिबोधा और स्वतन्त्रका॥ ८॥

तथा नित्यमलुप्ता चानन्ता चापि क्रमाच्छिवे।
मूलदेवीसमानाभा ध्यात्वा पूज्याङ्गदेवताः॥ ९॥

तथा हे शिवे, क्रमशः नित्यमलुप्ता और अनन्ता, जिनकी कान्ति मूलदेवी की ही तरह हैं ये अङ्गदेवता ध्यान के बाद पूजनीया हैं॥ ९॥
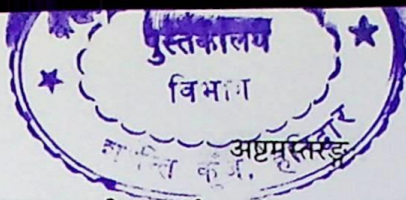
शुक्लरक्तपीतवर्णा रेखा भूसदनस्य वै ।
नृपपत्रमिन्दुनिभमष्टपत्रं जपारुणम् ॥ १० ॥

भूसदन की तीन रेखायें सफेद, लाल और पीले रंग की हैं, तथा अढ़हुल फूल की तरह लाल तथा चन्द्रमा की शोभा वाले अष्टदल नृपपत्र हैं ॥ १० ॥

मनुकोणं दाडिमाभं सिन्दूरकुङ्कुमप्रभम् ।
द्विदशारं तु माणिक्यनिभमष्टास्त्रकं भवेत् ॥ ११ ॥

चौदह कोण अनारदाने की तरह लाल लाल और २० कोण सिन्दूर एवं कुंकुम की तरह लाल और अष्टकोण माणिक्य की कान्ति लिए होना चाहिए ॥ ११ ॥

रक्तशुक्लविमिश्राभं बैन्दवं चक्रमद्रिजे ।
अङ्कुशं पाशमपि च पद्मद्वयकराः शिवे ॥ १२ ॥

हे पार्वति, चक्रस्थ विन्दुओं की शोभा लाल और सफेदवर्ण के संमिश्रण से जो शोभा बनती है, वही शोभा है, अंकुश, पाश और दो कमल हाथों में विराजित है ॥ १२ ॥

अणिमाद्या रक्तवर्णा बालेन्दुकृतशेखराः ।
लोहितोत्पलयुग्मं च नृकपालद्वयं तथा ॥ १३ ॥

अणिमादि देवी रक्तवर्णा हैं। बालचन्द्र उनके शिर पर सुशोभित हैं दो लाल कमल तथा दो नर कपाल भी हाथ में हैं ॥ १३ ॥

नीलोत्पलनिभाश्चापि नीलाम्बरविभूषणाः ।
सृणिं पाशं स्वमुद्रां च दधानाः क्रमशः शिवे ॥ १४ ॥

नीलकमल की तरह जिनकी देह की शोभा है। नीले वस्त्र एवं नीले आभूषण भी पहने हैं, हाथ में क्रमशः अंकुश, पाश एवं स्वमुद्रा धारण किये हैं ॥ १४ ॥

सर्वसंक्षोभिणीमुख्या रक्ताङ्गांशुकभूषणाः ।
अङ्कुशं पाशममृतपूर्णस्फटिकपात्रकम् ॥ १५ ॥

सर्वसंक्षोभिणी प्रमुख के अंग लाल हैं, वस्त्राभूषण भी लाल ही हैं, हाथों में अंकुश, पाश, अमृतपूर्ण स्फटिक पात्र है ॥ १५ ॥

वरं दधानाः शुक्लाभाः कामाकर्षिणिकामुखाः ।
पूर्वद्वयं चेन्द्रनीलपात्रनीलोत्पलं तथा ॥ १६ ॥

और वर हाथों में धारण किये कामाकर्षिणिका प्रमुख देवियाँ शुक्ल आभा से युक्त हैं। पूर्व की दो देवियों इन्द्रनील पात्र और नीलकमल हाथ में लिए हैं ॥ १६ ॥

दधाना रक्तवर्णाभाश्चानङ्गकुसुमादिकाः ।
पूर्वद्वयं रत्नमयदर्पणामृतपात्रकम् ॥ १७ ॥

अनङ्गकुसुमा आदि रक्तवर्ण की कान्ति धारण किये हैं। पूर्व की दो रत्नमय दर्पण एवं अमृतपात्र धारण किये हैं॥ १७॥

बिभ्रत्यो रक्तवर्णाङ्गाः सर्वसंक्षोभिणीमुखाः।
प्राक्प्रोक्तद्वितयं भूषा मञ्जूषां रत्ननिर्मिताम्॥ १८॥

सर्व संक्षोभिणी प्रमुख देवियाँ लाल लाल अङ्गोंवाली हैं। पहले कही गई दूसरी देवियों रत्न निर्मित भूषा और मंजूषा लिए हैं॥ १८॥

सिताङ्गा धारयन्त्यश्च सर्वसिद्धिप्रदा मुखाः।
टङ्कपाशज्ञानवरधराज्ञाद्यारुणाङ्गकाः ॥ १९॥

सर्वसिद्धिप्रदा प्रमुख देवियाँ श्वेत अङ्गवाली हैं। साथ ही आज्ञा प्रभृति अरुण वर्ण के अङ्गोंवाली कुल्हाड़ी या तलवार, पाश, ज्ञान और वर हाथों में लिए हैं॥ १९॥

पुष्पबाणान् पुण्ड्रचापं विद्यावरलसद्भुजाः।
वशिन्याद्या रक्तवर्णगात्रवस्त्रविभूषणाः ॥ २०॥

वशिनी आदि देवियाँ जिनके शरीर, वस्त्र एवं आभूषण सभी लाल-लाल है, वे पुष्पवाण लाल ईख के धनुष, विद्या, श्रेष्ठ हाथों में धारण किये हैं॥ २०॥

मूर्ध्न्यासक्तस्वायुधोद्यदूर्ध्वबाहुद्वयास्तथा।
अभीवरकरा रक्तवर्णाश्चायुधदेवताः ॥ २१॥

शिर तक लम्बें हथियार सँभाले दो बाँहें ऊपर की ओर उठी, नीचे की दो बाहें एक से अभयदान और दूसरे से वरदान देनेवाली रक्तवर्णा, आयुध देवता हैं॥ २१॥

दक्षाग्राद् वामतः कोणे पीतश्वेतारुणप्रभाः।
मूलदेवीसुताः कामेश्वरी-मुख्यारुणप्रभाः ॥ २२॥

दायें के अग्रभाग से बायें कोण में पीली श्वेत और अरुण प्रभावाली मूलदेवी की पुत्री अरुणप्रभा कामेश्वरी पूजनीया है॥ २२॥

मूलदेव्याः पुरा ध्यानमुक्तमद्रीशकन्यके।
तथा खण्डामपि ध्यायेत् पञ्चिकां तु ततो यजेत्॥ २३॥

हे पार्वति, महादेवी का ध्यान पहले बतलाया जा चुका है। इसके बाद खण्डा का भी ध्यान करे, फिर पञ्च पञ्चिकाओं की पूजा करे॥ २३॥

तत्राद्या मूलदेवी स्याद् दक्षे बामे च पार्श्वके।
द्वयं प्रदक्षिणेनैव यजेद् ध्यात्वा महेश्वरि॥ २४॥

हे महेश्वरी! यहाँ पहले मूलदेवी की पूजा करनी चाहिए। फिर, दायें और बायें बगल की दोनों पूजा पहले ध्यान कर करे॥ २४॥

लक्ष्म्यम्बापञ्चकं चाद्यं बालेन्दुकृतभूषणम्।

रक्तवर्णं त्रिणयनं मूलदेव्यायुधैर्युतम् ॥ २५ ॥

पहले पञ्चपञ्चिका स्वरूप **लक्ष्मी अम्बा का पूजन** करे, बालचन्द्र जिनके शिरोभूषण हैं जो रक्तवर्णा हैं, त्रिनयना हैं और मूलदेवी के आयुधों से युक्त हैं ॥ २५ ॥

सर्वत्र चैवं ध्यात्वा वै क्रमेणैव तु तर्पयेत् ।
लक्ष्मी चापि महालक्ष्मी त्रिशक्त्याद्या ततः परा ॥ २६ ॥

हर जगह इसी तरह ध्यान कर क्रमशः सबका तर्पण करे। पहले तीनों महाशक्ति की, फिर पराशक्ति और लक्ष्मी एवं महालक्ष्मी की पूजा करे ॥ २६ ॥

साम्राज्यलक्ष्मी चेत्येवं लक्ष्म्यम्बापञ्चकं स्मृतम् ।
परं ज्योतिर्निष्कला च पराद्या शाम्भवी ततः ॥ २७ ॥

फिर साम्राज्यलक्ष्मी, इसी तरह लक्ष्मी तथा पाँचों अम्बा की, पुनः परं ज्योति, निष्कला, परादया और शाम्भवी की पूजा करनी चाहिए ॥ २७ ॥

अजपा मातृका चेति कोशाम्बापञ्चकं भवेत् ।
पञ्चकामा पारिजाता चेश्वरी च कुमारिका ॥ २८ ॥

इसी तरह अजपा, मातृका, पञ्च कोशाम्बा, पञ्चकामा, पारिजाता, ईश्वरी और कुमारिका ॥ २८ ॥

पञ्चबाणेश्वरी चेति पञ्चकल्पलताभिधाः ।
ततश्चामृतपीठेशी सुधासूरमृतेश्वरी ॥ २९ ॥

पञ्चवाणेश्वरी, पञ्चकल्पलता, अमृतपीठेशी, सुधासूः तथा अमृतेश्वरी ॥ २९ ॥

अन्नपूर्णा चाद्रिकन्ये पञ्चकामदुधास्त्विमाः ।
सिद्धलक्ष्मी च मातङ्गी ततस्तु भुवनेश्वरी ॥ ३० ॥

हे पार्वति, अन्नपूर्णा, ये पञ्चकामदुघा, सिद्धलक्ष्मी, मातङ्गी, इसके बाद भुवनेश्वरी ॥ ३० ॥

वाराही चेति संप्रोक्ताः पञ्चरत्नाभिधास्त्विमाः ।
एताः समभ्यर्च्य पञ्चपञ्चिकाख्यास्ततः परम् ॥ ३१ ॥

और वाराही जो पहले कही जा चुकी है ये पञ्चरत्न के नाम से जानी जाती हैं, इनकी पूजा कर, पञ्चपञ्चिका की पूजा करे ॥ ३१ ॥

षोढा-न्यासोदिताशेषदेवताश्चापि पूजयेत् ।
गणेशं षोडशदलबाह्येऽग्राद् वृत्तरीतितः ॥ ३२ ॥

इसके बाद लघुषोढ़ा न्यास के देवताओं की भी पूजा करे। इस पूजा में श्रीयन्त्र का स्थाननिर्देश करते हुए १६ दल में **श्रीगणेश की पूजा** पूर्वोक्त रीति से करनी चाहिए ॥ ३२ ॥

ग्रहान् बिन्द्वादिनवके नक्षत्राणि त्रयं त्रयम् ।
योगिन्यः कोणचक्रेंऽशं राशयोऽष्टदलाद् द्विशः ॥ ३३ ॥

विन्दु आदि नौ आवरणों में नवग्रह तथा ३-३ नक्षत्र एकसाथ २७, चतुर्दशार के दो-दो कोणों की सन्धि में डाकिन्यादि ७ योगिनियाँ, अष्टदल और उनकी चारों दिशाओं १२ राशियाँ॥ ३३ ॥

पीठान्यष्टदलाद् बाह्ये वृत्ते त्वेवं प्रपूजयेत् ।
आम्नायांस्तु चतुर्द्वारे युक्त्या स्थानं तु पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

अष्टदल के बाहर वृत्त में ऐसे इनकी पूजा करनी चाहिए। यह पूजा ५० पीठों की पूजा है। इसके पश्चात् चतुर्द्वारों और एक मध्य में अम्नाय की युक्ति से पूर्ववत् पूजा करे॥ ३४॥

कथञ्चिदप्यसंसिद्धस्थानानां स्थानमीरितम् ।
पूर्वप्रोक्ताप्रयुक्त्यैव ततः स्यात् समयार्चनम् ॥ ३५ ॥

किसी भी तरह से असंसिद्ध स्थानों का इसे स्थान कहा गया है। पूर्वोक्त युक्ति से ही यहाँ समयार्चन करना चाहिए॥ ३५॥

कामेश्वरीत्रयं तुर्या महात्रिपुरसुन्दरी ।
इत्येतत् कथितं देवि यथावत् पूजनादिकम् ॥ ३६ ॥

त्रिकोण के कोणों में एवं मध्य में क्रमशः कामेश्वरी, भगमालिनी, वज्रेश्वरी, तथा चतुर्थ महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा का क्रम है॥ ३६॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे आवरणध्यानकथनं नामाष्टमस्तरङ्गः ॥ ८ ॥

इति श्रीत्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में आवरणध्यानकथन नामक
अष्टम तरङ्ग सम्पन्न॥ ८॥

●

अथ नवमस्तरङ्गः

(अर्ध्यस्य विधिः साधनञ्च)

देव्युवाच

देवेश श्रोतुमिच्छामि विधिमर्घ्यस्य साधने ।
त्रिपुरार्णवसम्प्रोक्तं तन्ममाचक्ष्व शङ्कर ॥ १ ॥

देवी ने कहा—

हे देवेश, हे शङ्कर, मैं अब **अर्घ्य की विधि और साधन** सुनना चाहती हूँ इस सन्दर्भ में त्रिपुरार्णव में जो कुछ कहा गया है, वह मुझे कृपया बतलावें॥ १॥

श्रीशिव उवाच

शृणु त्रैलोक्यशुभदे पात्राणां विधिमुत्तमम्।
सर्वत्र गोपितं ह्येतत् सावधानेन चेतसा॥ २॥

श्री शिव बोले—

हे त्रैलोक्यशुभदे! पात्रों की यह उत्तम विधि सावधान मन से सुनो, क्योंकि, यह रहस्य सब जगह गुप्त रक्खा गया है॥ २॥

हेतुकुम्भं च सामान्यं विशेषार्घ्यमिति त्रयम्।
पात्राणामथ तोयस्य कलशं चेति शङ्करि॥ ३॥

पात्रों की स्थापना विधि में १. हेतुकुम्भ, २. सामान्य अर्घ्यपात्र और ३. विशेषार्घ्य ये तीन पात्र होते हैं। हे शङ्करि! ये जलपात्रों के कलश हैं॥ ३॥

हेतुकुम्भं विशेषार्घ्यं सौवर्णं राजतं तथा।
शिलाशङ्खालाबुनारिकेलकाचमहीमयम्॥ ४॥

हेतुकुम्भ विशेषार्घ्य पात्र सोने, चाँदी, पत्थर, शङ्ख, लौकी या तुमड़ी, नारियल, काच या मिट्टी के बने पात्र होते हैं॥ ४॥

सामान्यार्घ्यं शङ्खमयं कुर्यात् तद्विधिरुच्यते।
शङ्खोदरस्थितावर्त्तं युक्त्या निःसार्य तत्र तु॥ ५॥

सामान्यार्घ्य पात्र शङ्ख का बनाना चाहिए। बनाने की विधि बतलाता हूँ। शंख के पेट में स्थित आवर्त्त को युक्तिपूर्वक बाहर निकाल दे॥ ५॥

योनित्रयं तथैकां वा शङ्खं कुर्याद् विचक्षणः।
सौवर्णं सौख्यजननं राजतं वश्यकारकम्॥ ६॥

योनित्रय अथवा एकही योनि वाले शङ्ख को विचक्षण (पारदर्शी) बनाना चाहिए। सोने का कलश सुखदायक होता है और चाँदी का वश्यकारक होता है॥ ६॥

शिलाभवं रिपुहरं शङ्खं ज्ञानप्रदं भवेत्।
अलाबुजं पापहरं नारिकेलमरोगदम्॥ ७॥

पत्थर का रिपुहर होता है; शङ्ख ज्ञानप्रद होता है, तुमड़ी पापहर होता है और नारियल आरोग्यप्रद होता है॥ ७॥

काचं मनःशुचिकरं मृण्मयं पुष्टिकारकम्।
रुचिराणि तु पात्राणि सुप्रमाणयुतानि च॥ ८॥

काच मन को पवित्र करता है, मिट्टी का बर्तन पुष्टिकारक होता है। ये पात्र रुचिकर एवं सुप्रमाणयुक्त होना चाहिए॥ ८॥

साधाराणि पिधानेन सहितानि महेश्वरि ।
नारिकेलं तु तिर्यक् स्यात् सार्धनेत्रसमन्वितम् ॥ ९ ॥

हे महेश्वरि, आधार एवं ढक्कन के साथ पात्र का होना ही उचित है। नारियल टेढ़ा और सार्धनेत्रयुक्त होना चाहिए॥ ९॥

अनन्तयज्ञफलदं तस्मादुत्तममुच्यते ।
अनेत्रं वा द्विनेत्रं वा पिशाचानां प्रियङ्करम् ॥ १०॥

ये उत्तम कोटि के पात्र अनन्त यज्ञ के फलदायक हैं। बिना आँख के या दो आँखों वाला नारियल पिशाचों के लिए प्रियङ्कर हैं॥ १०॥

एकनेत्रं राक्षसं स्यादाधाराण्यथ ते ब्रुवे ।
वर्त्तुलं वा त्रिकोणं वा सपादं वाप्यपादकम् ॥ ११॥

एक नेत्र राक्षस के लिए। इसके बाद मैं तुम्हें आधार बतलाता हूँ। आधार गोल, त्रिकोण वा सपाद या अपादक होता है॥ ११॥

आवश्यकं तद्विना तु सर्वं तद्राक्षसं स्मृतम् ।
आधारेण विना पात्रं शक्रस्याप्यशुभप्रदम् ॥ १२॥

पात्र के लिए आधार आवश्यक है, इसके बिना सारी क्रियायें अशुभ हैं; क्योंकि,आधार के बिना पात्र की स्थापना इन्द्र के लिए भी अशुभकारक हैं॥ १२॥

तथाच्छादनहीनं च सुकृतानां प्रणाशनम् ।
एवं त्रिपात्रं संस्थाप्य पूजां कुर्याद् यथाविधि ॥ १३॥

तथा आच्छादनरहित पात्रों की स्थापना सुकृतों के विनाशक होती है। इस तरह तीन त्रिपदियों की स्थापना कर, यथाविधि पूजा करे॥ १३॥

कुलद्रव्यैः साधितैस्तु शुद्धैर्दोषविवर्जितैः ।
सामान्यार्घ्य-विशेषार्घ्यावनुकल्पेन पूजने ॥ १४॥

शुद्ध दोषरहित सिद्ध किये हुए कुल द्रव्यों से अनुकल्प से पूजा करने की विधि बतलाई गयी है, जिसमें सामान्यार्घ्यपात्र और विशेषार्घ्यपात्र ऐसे दो पात्र स्थापित होते हैं॥ १४॥

एकपात्रं नान्यथा तु कुर्याद्धानिस्ततो भवेत् ।
विशेषार्घ्यान्न वीराणां शक्तीनां हेतुपात्रतः ॥ १५॥

एक पात्र से पूजा करना निषिद्ध है, अन्यथा हानि होती है। वीरों की विशेष अर्घ्यपात्र से और शक्तियों की हेतुपात्र से पूजा नहीं होंती॥ १५॥

ततो निषिद्धमन्यत्र प्रोक्तमप्येकपात्रकम् ।
आत्मयोगपराणां तु नाङ्गलोपेन हीयते ॥ १६ ॥

एक पात्र से पूजा करना पूर्वकथन में निषिद्ध कहा गया है। किन्तु आत्मयोग में अङ्गलोपजनित कोई दोष नहीं लगता॥ १६ ॥

तस्मात्तैरेव कर्तव्यं तोयपात्रं तु ताम्रजम् ।
तथा नैवेद्यपात्रं तु कांस्यमुत्तममुच्यते ॥ १७ ॥

अत: आत्मयोगी एकपात्र का प्रयोग कर सकता है। जलपात्र ताँबे का और नैवेद्य पात्र काँसे का उत्तम कहा गया है॥ १७ ॥

बलिपात्रं ताम्रभवं नैवान्यत्तु कदाचन ।
तथार्घ्यपात्रं देवेशि चैवं पात्राणि साधयेत् ॥ १८ ॥

और, बलि अर्थात् वस्तिपात्र ताँबे का ही होना चाहिए किसी अन्य धातु का नहीं। हे देवेशि, इसी तरह अर्घ्यपात्र एवं अन्य पात्रों की साधना होनी चाहिए॥ १८ ॥

वृत्तं च चतुरस्त्रं च गन्धतोयैस्तु मण्डलम् ।
कृत्वा तत्र षडङ्गं तु पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥ १९ ॥

वृत्त, चतुरस्त्र और गन्ध-जल से मण्डल का निर्माण कर, वहाँ फूल और अक्षत से षडङ्ग की पूजा करनी चाहिए॥ १९ ॥

अग्नीशराक्षसमरुन्मध्ये दिक्षु च पूजयेत् ।
जलपात्रं तु साधारं तत्र निक्षिप्य शङ्करि ॥ २० ॥

हे शङ्करि! वहाँ आधार सहित जलपात्र को रखकर क्रमशः बीच में एवं दिशाओं में अग्नि, ईश, राक्षस एवं मरुत् की पूजा करे॥ २० ॥

तीर्थं समावाह्य तस्मिन्नमृतीकृत्य पूजयेत् ।
मूलं प्रजप्य तद्ध्यायेत् तीर्थरूपं तु पार्वति ॥ २१ ॥

तीर्थ का सम्यक् रूपेण आवाहन कर उसमें अमृत बनाकर पूजन करे। हे पार्वति! मूलमन्त्र का जपकर उसका ध्यान करना चाहिए॥ २१ ॥

हेतुपात्रधरे तद्वद् वृत्तं च चतुरस्त्रकम् ।
त्रिकोणमपि कृत्वा तु वृत्ते मण्डलपूजनम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर हेतुपात्रधरा सुवासिनी की पूजा का विधान है। इसी तरह वृत्त, और चतुष्कोण तथा त्रिकोण का भी विधान कर, वृत्त में मण्डल का पूजन करे॥ २२ ॥

चतुरस्त्रे षडङ्गानि त्रिकोणे तु त्रिपीठकम् ।
तत्राधारं विनिक्षिप्य तत्राग्निकलया यजेत् ॥ २३ ॥

चतुष्कोण में षडङ्ग का, त्रिकोण में त्रिपीठ का पूजन करे। फिर, वहाँ आधार रखकर, वहाँ अग्निकला से यजन करे॥ २३॥

प्रागादिवृत्तरूपेण दश धूम्रादिकांस्ततः।
अलङ्कृतं हेतुपात्रं धूपितं चास्त्रक्षालितम्॥ २४॥

प्रागादि को वृत्तरूप से, तत्पश्चात् दश धूम्रादि को, सुधूपित एवं अस्त्र प्रक्षालित तथा अलंकृत हेतुपात्र को॥ २४॥

विन्यस्य पूर्ववत् तत्र द्वादशार्ककला यजेत्।
सम्पूज्य पात्रं तत्पश्चाद् द्वितीया द्वित्रिपात्रकम्॥ २५॥

वहाँ पहले की तरह रखकर द्वादशार्क कला का यजन करे। तत्पश्चात् पात्र का पूजन कर दूसरे और तीसरे पात्र का॥ २५॥

सामान्यमण्डले न्यस्य सम्पूज्याग्निकलात्मकम्।
आधारं तत्र पात्रेषु यजेत् सूर्यकला अपि॥ २६॥

सामान्य मण्डल में उसे रखकर, अग्निकला का पूजन कर वहाँ पात्रों में आधार का पूजन करे और सूर्यकला का भी॥ २६॥

द्वितीयं च तृतीयं च मुद्रां तत्र क्रमान् न्यसेत्।
सम्प्रोक्ष्य कलशोदैस्तु तथा संशोध्य मन्त्रकैः॥ २७॥

वहाँ क्रमशः दूसरी और तीसरी मुद्रा को रखे। कलश जल से उसे पोंछकर, मंत्रोच्चार, कलशजल से संशोधन कर॥ २७॥

यजेत् सोमकलास्तेषु सामान्यार्घ्यं तथा यजेत्।
आपूर्य कलशोदैस्तु सर्वं तैरेव पावयेत्॥ २८॥

उनमें सोमकला की पूजा करे तथा सामान्यार्घ्य की भी पूजा करे। फिर कलश में जल भरकर उसी जल से सबको पवित्र करे॥ २८॥

ततस्तु योगिनीं ध्यायेन्निर्विकल्पस्वभावतः।
सुवासिनीं हेतुपात्रधरां ध्यात्वा समर्चयेत्॥ २९॥

इसके बाद निर्विकल्प मन से योगिनी का ध्यान करे। फिर हेतुपात्रधरा सुवासिनी का ध्यान एवं पूजन करे॥ २९॥

अरुणामरुणालेपभूषावस्त्रधरां शुभाम्।
मन्दस्मितानन्दमुखां हेतुपात्रलसत्कराम्॥ ३०॥

सूर्योदयकालीन प्रभा पूर्ण आरक्तवर्ण है, अतः जो लाल, आलेप लाल आभूषण एवं लाल वस्त्र वाली मन्दस्मिता एवं आनन्दमुखी के हाथ में हेतुपात्र शोभते हैं॥ ३०॥

पुष्पाक्षताद्यैः सम्पूज्य तत्पात्रं संस्पृशन् जपेत् ।
त्रिधा तु मातृकां पञ्चधाऽमृतेशीं च सप्तधा ॥ ३१ ॥

फूल, अक्षत प्रभृति से उनकी पूजा सम्पन्न कर पात्र का स्पर्श किये हुए ही मंत्र का जप करे। तीन भागों में मातृका, पाँच खण्डों में अमृतेशी और सात खण्डों में॥ ३१ ॥

वासुदेवं द्वादशार्णं नवधा मूलमीश्वरि ।
आदाय योगिनीहस्तात् कलशं न्यस्य चाग्रतः ॥ ३२ ॥

हे ईश्वरि! द्वादशार्ण और वासुदेव की तथा मूल की नवधा पूजा करनी चाहिए। योगिनी के हाथसे कलश लेकर आगे रखे॥ ३२॥

पथिकाः पूजयेत् पश्चाच्छोधनं चापि दोषतः ।
तर्पयेत् पथिकाख्यास्तु कुसुमोद्धृतबिन्दुभिः ॥ ३३ ॥

हेतुपात्र स्थापना के बाद **पथिका-पूजन** करे फिर दोष का शोधन करे। पथिका का तर्पण पुष्प द्वारा उद्धृत विन्दु से करे॥ ३३ ॥

पथि नानाविधा दोषास्ते सर्वे द्रव्यसंश्रिताः ।
तस्माद् दुष्टेन भागेन पथिकाख्यास्तु तर्पयेत् ॥ ३४ ॥

पथ में अनेक प्रकार के दोष हैं वे सारे दोष द्रव्य पर आश्रित हैं। इसलिये उसके दुष्ट भाग से पथिका का तर्पण करे॥ ३४॥

दोषभागविनिर्मुक्तं द्रव्यं तेन पवित्रितम् ।
एकमेवेति सम्प्रोक्ताऽऽथर्वणैः शुक्रशापतः ॥ ३५ ॥

अथर्व वेदोक्त कर्म कराने वाले पुरोहित शुक्र के शाप से एक ही प्रदूषित कहा गया है, दोषभाग से विनिर्मुक्त द्रव्य से उसे पवित्र करना चाहिए॥ ३५ ॥

मोचयेत्तु त्रिभिर्मन्त्रैः संस्पृशन् हि समाहितः ।
हेतोस्तु बहुधा शापांस्तत्तन्मन्त्रेण पावयेत् ॥ ३६ ॥

समाहितों का स्पर्श करते हुए तीनों मंत्रों से उन्हें मुक्त कराये। हेतुपात्र बहुधा शापग्रस्त होते हैं, उन्हें उनके मंत्रों से पवित्र बनाना चाहिए॥ ३६ ॥

अपावितमनर्हं स्यात् पूजनादौ भवेदतः ।
तथैव तान्त्रिकैश्चापि शापेभ्यः शोधयेत् क्रमात् ॥ ३७ ॥

पूजनादि में शापग्रस्त, द्रव्य अपवित्र एवं अयोग्य होते हैं। इसी तरह तांत्रिक क्रियायें भी होती हैं। अतः क्रमशः इनका **शापशोधन** करना चाहिए॥ ३७ ॥

सामान्यार्घ्ये तु तद्बिन्दुं दत्त्वा शुद्ध्यादि पावयेत् ।
तेनापूर्य हेतुपात्रं यजेत् सोमकलात्मकैः ॥ ३८ ॥

सामान्य अर्घ्यपात्र में संशोधित विन्दु को रखकर उसे पवित्र कर लें। फिर सोमकलात्मक हेतुपात्र को उससे भरकर उसका पूजन करे॥ ३८॥

त्रिकोणं मातृकाकारं भावयेत् तत्र चाद्रिजे।
वर्णत्र्यस्त्राद् बहिर्देवि चतुरस्त्रं ततो बहिः॥ ३९॥

हेतुपात्र में मातृकाकार त्रिकोण की भावनापूर्वक हे पार्वति, पूजन करे। उससे बाहर हे देवि, चतुरस्र उससे भी बाहर॥ ३९॥

पश्चिमाग्रं त्रिकोणं च षट्कोणं वसुपत्रकम्।
एवं ध्यात्वा पञ्चरत्नान् वर्णत्र्यस्त्रे महीगृहे॥ ४०॥

उससे बाहर (पश्चिमाग्र) त्रिकोण, षट्कोण तथा अष्टदल का ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात् प्रथमगृह के पात्र में पञ्चरत्न॥ ४०॥

मिथुनत्रितयं पञ्चभूतान्यपि समर्चयेत्।
शक्तित्रयं त्रिकोणे तु तत्त्वपीठत्रयं तथा॥ ४१॥

मिथुनत्रय और पञ्चभूतों की पूजा करे। तत्पश्चात् त्रिकोण में शक्तित्रय एवं तत्त्व पीठत्रय तथा॥ ४१॥

कामेश्वरीत्रयं चापि मध्यतुर्यं प्रपूजयेत्।
षट्कोणे चाङ्गदेवीश्च भैरवान् वसुपत्रके॥ ४२॥

कामेश्वरीत्रय और बीच में **तुर्यात्रय की भी पूजा** करनी चाहिए। षट्कोण में अङ्गदेवी की और अष्टदल पर भैरवों की पूजा करनी चाहिए॥ ४२॥

समभ्यर्च्य सुधादेवीं ध्यात्वा तत्र समावहेत्।
पूजयेच्च यथाकामं तदालभ्य ततः परम्॥ ४३॥

फिर, सुधादेवी का ध्यान कर उनका आवाहन करे। यथाकाम उनकी पूजा कर, इसके बाद॥ ४३॥

प्रपठेच्च कला देवि ब्रह्मादीनां क्रमेण तु।
तत्तन्मन्त्रांश्चापि त्रिधा मातृकां हेतुसंस्तुतिम्॥ ४४॥

कलादेवी और ब्रह्मादि देवताओं का क्रमशः उनके मंत्रों का पाठ करे तथा मातृका के लिए त्रिधा स्तुति करना चाहिए॥ ४४॥

अमृतेशीं मूलमपि चतुःपञ्चाष्टधा पठेत्।
मालामन्त्रं च श्रीसूक्तं पठेत् तत्र सकृत्सकृत्॥ ४५॥

अमृतेशी और मूलमन्त्र भी चार, पाँच या आठ बार पाठ करना चाहिए। फिर मालामन्त्र एवं श्रीसूक्त का एक एक बार पाठ करना चाहिए॥ ४५॥

प्रजपेन्मूलविद्यां च शतमष्टोत्तरं ततः ।
विशेषार्घ्यं शङ्खवत्तु हेतुपात्रात् प्रपूरितम् ॥ ४६ ॥

इसके बाद १०८ बार, मूल विद्या का जप करे, शङ्खपूजा की तरह विशेषार्घ्य को हेतुपात्र से पूरा करे ॥ ४६ ॥

संस्थाप्य मूलविद्याया जपेदष्टकमद्रिजे ।
एतन्मूलाष्टकजपः पञ्चमप्रतिरूपकः ॥ ४७ ॥

मूलविद्या की स्थापना कर हे पार्वति! अष्टक जप करना चाहिए। यह मूलाष्टक जप, पञ्चम प्रतिरूपक है ॥ ४७ ॥

प्रजपेत् तु त्रिधा देवि प्रत्येकं मातृकामपि ।
एतत्ते देवि सम्प्रोक्तमर्घ्यस्थापनकादिकम् ॥ ४८ ॥

हे देवि, प्रत्येक मातृका का भी त्रिधा जप करना चाहिए। ये सारी विधियाँ अर्घ्य स्थापना की मैंने आपको बतलादी हैं ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वेऽर्घ्यविधिर्नाम नवमस्तरङ्गः ॥ ९ ॥

इस श्रीत्रिपुरारहस्य (त्रिपुरार्णवसारसर्वस्व) में अर्घ्यस्थापनविधि नाम का नवम तरङ्ग सम्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

●

अथ दशमस्तरङ्गः

(कुलद्रव्यम् अनुकल्पश्च)

पार्वत्युवाच

कैलासनिलय श्रोतुं कुलद्रव्यं समीहितम् ।
अनुकल्पमपि प्राज्ञ कथयस्व क्रमेण तु ॥ १ ॥

पार्वती बोली—

हे कैलाशवासी महादेव अब मैं अभिलषित **कुलद्रव्य** के बारे में सुनना चाहती हूँ साथ ही **अनुकल्प** भी जानना चाहती हूँ। कृपया क्रमशः मुझे बतलायें ॥ १ ॥

शशिशेखर उवाच

शृणु तेऽत्र प्रवक्ष्यामि हिमाचलयशस्करि ।
कुलद्रव्यं चानुकल्पं तद्भेदं क्रमतः स्फुटम् ॥ २ ॥

महादेव ने कहा—

हे देवि, इस प्रश्न का उत्तर मैं समझाता हूँ आप इसे सुनें। 'कुलद्रव्य' और 'अनुकल्प' तथा इसके भेद—क्रमशः स्पष्ट रूप से समझाता हूँ॥ २॥

कुलद्रव्यं पञ्चविधं मपञ्चकमितीरितम्।
मद्यं मांसं मत्स्यमपि मुद्रा मैथुनमेव च ॥ ३ ॥

कुलद्रव्य पाँच प्रकार का है, वह पञ्च मकार के नाम से जाना जाता है। वे पाँच मकार हैं—१. मद्य, २. मांस, ३. मत्स्य भी, ४. मुद्रा और ५. भ्रू-मैथुन॥ ३॥

एते पञ्चमकाराः स्युस्त्रिपुरा-प्रीतिदायकाः।
तत्राद्यं कारणं द्रव्यं हेतुस्तत्त्वमपीति च ॥ ४ ॥

ये पाँच प्रकार के कुलद्रव्य जो पञ्चमकार के नाम से जाने जाते हैं, त्रिपुरा की प्रीति को बढ़ानेवाले हैं इसका आदिकारण द्रव्य है और हेतु तत्त्व है॥ ४॥

प्रोक्तं कुलपथे गुह्यनामानि प्रथमस्य वै।
शुद्धिः साधनमामत्रं तर्पणं च द्वितीयकम् ॥ ५ ॥

कुलपथ में इनके गुप्त नाम भी बतलाये गये हैं। जैसे पहले का—शुद्धि, साधनमामत्र; और दूसरे का तर्पण॥ ५॥

वारिजं केतनं शल्यं निर्निमेषं तृतीयकम्।
उपयोज्यं वैष्णवं च मुद्रास्वाद्यं चतुर्थकम् ॥ ६ ॥

वारिज, केतज, शल्य और निनिर्मेष तीसरे का भेद और चौथे का उपयोजन, वैष्णव और मुद्राओं में पहला॥ ६॥

आनन्दः सामरस्यं च संसृतिः पञ्चमं भवेत्।
एवं संज्ञाप्रभेदा हि प्रोक्ताः स्युस्त्रिपुरार्णवे ॥ ७ ॥

आनन्द, सामरस्य और संसृति पाँचवां होता है। त्रिपुरार्णव में ये संज्ञा के अभेद बतलाये गये हैं॥ ७॥

एवं मपञ्चकैः पूजा केवलं शिवतामयी।
आद्यं सदाशिवस्तद्वद् द्वितीयं चेश्वरः स्मृतः ॥ ८ ॥

इस तरह इनके द्वारा की जानेवाली पूजा शिवत्व प्राप्त करानेवाली हैं। पहला सदाशिव हैं, उसी तरह दूसरा ईश्वर कहा गया है॥ ८॥

रुद्रस्तृतीयं तुर्यं तु विष्णुर्ब्रह्मा तु पञ्चमम्।
तस्मात्पञ्च'म'मयो यज्ञः सर्वोत्तमोत्तमः ॥ ९ ॥

तीसरा रुद्र चौथा विष्णु और पाँचवां ब्रह्मा, इन्हीं पाँच के ये प्रतीक हैं। इसीलिए ये पञ्चमकार यज्ञ सर्वोत्तमोत्तम यश कहलाता है॥ ९॥

तत्राद्यभेदं वक्ष्यामि शृणु सम्यक् समाहिता ।
गौडी माध्वी च पैष्टी च त्रिविधं द्रव्यमीरितम् ॥ १० ॥

वहाँ मैं पहला भेद बतलाता हूँ, हे पार्वति! आप अच्छी तरह एकाग्रचित्त होकर सुनें। **द्रव्य के तीन भेद** गौड़ी, माध्वी और पैष्टी कहे गये हैं ॥ १० ॥

ऐक्षवक्षौद्रजाताद्या गौडी स्यात् सात्त्विकी स्मृता ।
मधूककुसुमद्राक्षातालवृक्षादिसम्भवा ॥ ११ ॥

गन्ने के रस या मधु से तैयार आसव गौड़ी कहलाती है, यह सात्विक है। फिर महुआ फूल से तैयार, या अंगूरी शराब या ताड़ी ॥ ११ ॥

माध्वीति कीर्तिता तज्ज्ञै राजसी सा भवेच्छिवे ।
पिष्टतण्डुलजाताद्या तामसी पैष्टिकी स्मृता ॥ १२ ॥

इन्हें माध्वी कहा जाता है। हे शिवे, ये राजसी हैं और चावल या भात पीसकर जो शराब तैयार होती है वह तामसी कहलाती है ॥ १२ ॥

सात्त्विकी ब्राह्मणे ख्याता राजसी नृपवैश्ययोः ।
तामसी चोत्तमा शूद्रे तन्त्रेष्वेवं विनिर्णयः ॥ १३ ॥

गौड़ी अर्थात् सात्विकी ब्राह्मणों में ख्यात हैं, क्षत्रिय और वैश्यों में राजसी ख्यात हैं तथा शूद्रों के लिए तामसी ख्यात हैं, यह तन्त्रशास्त्र का निर्णय है ॥ १३ ॥

अतिबोधसमायुक्तं स्वच्छं तैक्ष्ण्यौष्ण्यवर्जितम् ।
रञ्जितं रक्तपीताद्यैः सुगन्धं तत्र चोत्तमम् ॥ १४ ॥

वहाँ अत्यन्त बोधयुक्त, स्वच्छ, तीतापन और गर्मी से रहित, लाल और पीले रंग में रँगा, सुगन्धयुक्त द्रव्य उत्तम होता है ॥ १४ ॥

एवं तु प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं शृणु वच्मि ते ।
ग्रामजं च तथारण्यं भूचरं खेचरं तथा ॥ १५ ॥

ये गुण प्रथम गौड़ी के हैं, अब मैं तुम्हें द्वितीय अर्थात् माध्वी के सम्बन्ध में बतलाता हूँ—ग्रामज, आरण्यक भूचर तथा गगनचर ॥ १५ ॥

आगमोक्तं पवित्रं च सम्यक् संस्कारसंस्कृतम् ।
मधुराम्लहिङ्गुजीरमरिचाज्यसुपाचितम् ॥ १६ ॥

यह आगमोक्त, पवित्र, सम्यक् संस्कार से सुसंस्कृत तथा मीठा, खट्टा, हींग, जीरा, मरिच आदि में अच्छी तरह पकाया हो ॥ १६ ॥

सुगन्धं मृदुपक्वं च सुस्वादु च मनोहरम् ।
अल्पकण्टकसंयुक्तं सुपक्वं स्वादुसंयुतम् ॥ १७ ॥

सुन्दर गन्धयुक्त हो, कोमल और पका हो सुस्वादु और मनोहर हो, अल्पकण्टकयुक्त हो सुपक्व एवं सुस्वादु हो॥ १७॥

लिकुचाम्लादिसंयुक्तं विधिना संस्कृतं तथा ।
तृतीयमेवं सम्प्रोक्तं चतुर्थमथ वै शृणु ॥ १८ ॥

निकुच (बरहर), आम्ल (खटाई) प्रभृति मिलाकर विधिवत् पकाकर तैयार करे, यह तीसरी (मत्स्य) विधि हुई, अब चौथे के बारे में सुनो॥ १८॥

माषैश्च चणकैस्तद्वद् गोधूमाद्यैरपीश्वरि ।
घृतादिपक्वै रुचिरैर्मधुरैर्लावणैरपि ॥ १९ ॥

हे महादेवि, उरद से, चना से, गेहूँ से, घृतादि में पकाये गये रुचिकर, मीठा या नमकीन भी॥ १९॥

साधितं वटकाद्यं तु ग्राह्यं मुद्रात्मकं शिवे ।
उक्तलक्षणसम्पन्नां दूतीमानीय पूजने ॥ २० ॥

बड़ा या पकौड़ा, बनाकर मुद्रा के रूप में ग्रहण करे। हे शिवे! पहले जो लक्षण मैं बतलाया हूँ, वैसी ही दूती पूजा में लाकर॥ २०॥

यथोक्तवत् सुसम्पूज्य तस्या अङ्गेषु विन्यसेत् ।
पाययित्वा भोजयित्वा तरुणोल्लाससंयुतः ॥ २१ ॥

बतलाये गये तरीके से पूजाकर, उनके अङ्गों का विन्यास करे। फिर, उन्हें पिलाकर, खिलाकर, तरुण उल्लास के साथ॥ २१॥

तथाभूतां तु तां दूतीमक्षुब्धेन्द्रियमानसः ।
कामपीठं विनिर्मथ्य शिवशक्तिमयं रसम् ॥ २२ ॥

ऐसी बनी उस दूती को अनुत्तेजित इन्द्रिय और मन से गड्डवड्ड करने योग्य या मथने योग्य बनाकर, शिव शक्तिमय रस को॥ २२॥

पञ्चमं तु समादाय विशेषार्घ्ये विनिक्षिपेत् ।
पञ्चमं नहि सर्वेषां सुलभं पर्वतात्मजे ॥ २३ ॥

पाँचवां लेकर विशेषार्घ्य पात्र में डाल दे। हे पार्वति! यह पाँचवां सबके लिये सुलभ नहीं है॥ २३॥

योगीन्द्राणामपि तु तद् दुर्लभं सर्वथा भवेत् ।
समानमिलितं तच्च ग्राह्यं ज्ञात्वा यतो भवेत् ॥ २४ ॥

योगीन्द्रों के लिए भी यह सर्वथा दुर्लभ होता है। समान स्तर पर ही यह मिलता है। ग्राह्य क्या है? यह जानकर ही इसे ग्रहण करना चाहिए॥ २४॥

अतस्तत्तु महायोगिगम्यमेव न चान्यथा ।
एवं विधानमज्ञात्वा विचलेन्द्रियमानसः ॥ २५॥

अतः यह महायोगी गम्य ही है, अन्यथा नहीं। इस तरह का विधान न जानने पर साधक चंचल इन्द्रिय और मन हो जाता है ॥ २५ ॥

अन्यथाभावमापन्नः समूलं नाशमाप्नुयात् ।
तस्मात् तु पञ्चमं मुख्यं नोक्तं चानधिकारतः ॥ २६॥

अतः पञ्चमयाग अधिकारी को ही करना चाहिए। जो इसके अनधिकारी हैं, उन्हें यह नहीं करना चाहिए, अन्यथा उनका समूल नाश हो जाता है ॥ २६ ॥

अनुकल्पं समासाद्य पूजयेत् त्रिपुराम्बिकाम् ।
एवमेव कुलद्रव्यं साधितं सर्वमुत्तमम् ॥ २७॥

अनुकल्प को पाकर अम्बिका त्रिपुरा की पूजा करे। इसी तरह सिद्ध किया हुआ कुल द्रव्य सर्वोत्कृष्ट होता है ॥ २७ ॥

अन्यथा सेवमानस्तु सुरापो भवति द्विजः ।
कामान्मोहाद् यदि सुरां पिबेत् सकृदपि द्विजः ॥ २८॥

अगर कोई द्विज काम या मोहवश बिना सिद्ध किये थोड़ा भी कुलद्रव्य का सेवन करता है, शराब पीता है, वह तो शराबी होता है ॥ २८ ॥

विद्वानपि स संत्याज्यस्तन्त्रज्ञैरविचारिभिः ।
प्रमादाद् यः पिबेत् तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ २९॥

विद्वान् होते हुए भी विचारशून्यता के कारण कोई अगर ऐसा करता है तो उसका तान्त्रिक त्याग कर देते हैं। प्रमादवश अगर कोई पीता है तो उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान है ॥ २९ ॥

अनुकल्पैरथापि स्यात् पूजा हिमशिलात्मजे ।
सर्वैर्वर्णैः सदा देवी सम्पूज्योक्तविधानतः ॥ ३०॥

हे पार्वति! पहले बतलाये गये विधान से सब वर्णों को सदा ही अनुकल्पों से देवी की पूजा करने का विधान है ॥ ३० ॥

मुख्याभावे चानुकल्पैर्न पूजां लोपयेत् क्वचित् ।
मुख्ये निषिद्धबुद्ध्या तु नानुकल्पैः प्रपूजयेत् ॥ ३१॥

और मुख्य पूजा के अभाव में केवल अनुकल्प से पूजा करना वर्जित है; क्योंकि मुख्य में निषिद्ध बुद्धि से अनुकल्प के द्वारा पूजा नहीं करनी चाहिए॥ ३१ ॥

निषिद्धबुद्ध्या मुख्ये तु योऽनुकल्पैः प्रपूजयेत् ।
स याति नरकान् घोरान् कुम्भीपाकादिकान् नरः ॥ ३२॥

मुख्य में निषिद्ध बुद्धि से जो केवल अनुकल्प से पूजा करते हैं वे मनुष्य घोर कुम्भी पाकादि नरक में पड़ते हैं॥ ३२॥

अथानुकल्पं वक्ष्यामि शृणु संयतमानसा।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे क्षीरं तथैव च ॥ ३३॥

अब मैं अनुकल्प (प्रतिनिधि) के बारे में बतलाता हूँ, संयत मन से इसे सुनो। नारियल का जल कांसे या ताँबे के पात्र में तथा दूध॥ ३३॥

गुडोदकं तथा तक्रमाद्य-प्रतिनिधिर्भवेत्।
पलाण्डुर्लशुनं वापि द्वितीयस्य तथार्द्रकम् ॥ ३४॥

गुड़ या सीरे का शरबत तथा मट्ठा या छाछ पहला प्रतिनिधि होता है। प्याज अथवा लहसुन दूसरे का तथा अदरख॥ ३४॥

मूलकं गृञ्जनं वापि तृतीये सन्निवेशयेत्।
मुद्राया नानुकल्पः स्यात्तदवश्यं समीहितम् ॥ ३५॥

गाजर, मूली को तीसरे में सन्निवेश करे। मुद्रा का अनुकल्प नहीं होता, वह अवश्य ही अभिलषित है॥ ३५॥

लिङ्गयोन्योस्तु कुसुमं मूलाष्टकजपोऽथवा।
अनुकल्पः पञ्चमस्य भवेन्मत्प्राणवल्लभे ॥ ३६॥

हे प्राणवल्लभे पाँचवां मैथुन का प्रतीक कुसुम अथवा मूलाष्टक जप अनुकल्प होता है॥ ३६॥

अलाभे तु तृतीयस्य द्वितीये त्र्यम्बकं जपेत्।
प्रथमालाभयोगेषु घुटिकामपि साधयेत् ॥ ३७॥

तीसरे के अलाभ में तथा दूसरे में त्र्यम्बक का जप करे। पहले के अलाभ-योग में घुटिका भी साधित करे॥ ३७॥

प्रथमं च द्वितीयं च योजयेदष्टगन्धकम्।
एवं तु घुटिकां कृत्वा संशोध्यतु निधापयेत् ॥ ३८॥

पहले और दूसरे को अष्टगन्ध के साथ मिलाकर, घुटिका तैयार कर उसे एक साथ सुखाकर रख ले॥ ३८॥

हेतोरभावे तोये तु सङ्घृष्याघ्यें निधापयेत्।
अलाभे घुटिकायास्तु नारिकेलजलादिकम् ॥ ३९॥

हेतुपात्र के अभाव में पानी में घिसकर रख लें, घुटिका के नहीं मिलने पर नारियल जल प्रयुक्त करे॥ ३९॥

घुटिकानन्तरे कल्पे न द्वितीय-तृतीयके।

पुष्पेण तर्पणं कुर्यादन्यथा पापमाप्नुयात् ॥ ४० ॥

घुटिका के अतिरिक्त अनुकल्प में दूसरे और तीसरे का नहीं होता, ऐसी स्थिति में पुष्प से तर्पण करना चाहिए। अन्यथा पाप लगता है ॥ ४० ॥

अनुकल्पेन पूजायां गुरुपूजादिमानसम् ।
कर्तव्यं नित्यपूजायां मन्त्रपाठप्रपूर्वकम् ॥ ४१ ॥

अनुकल्प से की गई पूजा में गुरुपूजादि मानसिक ही करनी चाहिए। नित्य पूजा में मन्त्रपाठ करना चाहिए ॥ ४१ ॥

तत्त्वशोधनकं त्यक्त्वा गुर्वादीनर्चयेत् क्रमात् ।
नैमित्तिकार्चने तत्तन्मन्त्रपाठेन भावयन् ॥ ४२ ॥

तात्त्विक चिन्तन या निर्णय के कार्य को छोड़कर गुरुपूजादि क्रमशः करना चाहिए। नैमित्तिक पूजा में उनके लिए निर्धारित विशिष्ट मंत्रों के पाठ की भावना करनी चाहिए ॥ ४२ ॥

तृतीयस्यानुकल्पत्वे द्वितीयेन सह न्यसेत् ।
एकस्मिन्नेव पात्रे तु संस्कुर्यादपृथक्तया ॥ ४३ ॥

तीसरे के अनुकल्पत्व में दूसरे के साथ न्यास करे। एक ही पात्र में अलग अलग संस्कार करना चाहिए ॥ ४३ ॥

एतत् पर्युषितं सर्वमनर्हं पूजनादिषु ।
तत्पूजया प्रकुप्यन्ति योगिन्यस्त्वतिभीषणाः ॥ ४४ ॥

इससे बची हुई बासी, अवशिष्ट वस्तु पूजनादि में अनुपयुक्त कही गई हैं, इनसे पूजा करने पर अतिभयङ्कर योगिनियाँ क्रुद्ध हो जाती हैं ॥ ४४ ॥

तत्प्रकारं तु ते वक्ष्ये यथावन्नगराट्सुते ।
संस्कारैः संस्कृतं तद्वल्लौकिकैरागमेरितैः ॥ ४५ ॥

हे पर्वतपुत्रि! अब मैं तुम्हें इनका भेद बतलाता हूँ; लौकिक, वैदिक संस्कारों से जो सुसंस्कृत हैं ॥ ४५ ॥

पूजासमाप्त्युत्तरं तु यामात् पर्युषितं भवेत् ।
प्रथमादिचतुर्थान्तं सर्वं त्याज्यं सुसाधकैः ॥ ४६ ॥

पूजा समाप्ति के तीन घंटे अर्थात् एक प्रहर के बाद वे वस्तुएँ वासी हो जाती हैं। अतः प्रथम से लेकर चौथे तक के सारे साधन का अच्छे साधक त्याग कर देते हैं ॥ ४६ ॥

तथा विकृतिमापन्नं मार्जाराद्यैरुपाहतम् ।
केशाश्रुनखनिष्ठीवदूषितं च परित्यजेत् ॥ ४७ ॥

तथा विकृति प्राप्त, विड़ाल आदि जीवों से उपाहत, केश, आंसू, नाखून, और थूक-खखार से दूषित का परित्याग कर देना चाहिए ॥ ४७ ॥

एतत्पवित्रभूतैस्तु साधनीयं द्विजैः सदा ।
अन्यथा साधितं सर्वं न पूजार्हं समीरितम् ॥ ४८ ॥

पवित्र ब्राह्मणों को हमेशा ऐसे शुद्ध साधनों का ही उपयोग करना चाहिए। अन्यथा सभी साधित कार्य व्यर्थ हो जाते हैं, वे पूजायोग्य नहीं कहे गये ॥ ४८ ॥

भक्तिमद्भिश्चतुर्थाद्यैर्द्वितीयाद्यं सुसंस्कृतम् ।
पूजनार्थं तु यद् देवि तत्पवित्रं प्रचक्षते ॥ ४९ ॥

हे देवि, भक्तिपूर्वक चतुर्थादि से लेकर द्वितीयादि पर्यन्त सुसंस्कृत तत्त्व पूजा के लिए पवित्र माना गया है ॥ ४९ ॥

तथा पूजानिमित्तं वै प्रथमाद्यमुपाहृतम् ।
यज्ञीयं तत्पवित्रं स्याद् दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा शुचिर्भवेत् ॥ ५० ॥

और पूजानिमित्तक जो वस्तु उपाहृत हो, वह यज्ञीय और पवित्र होती है। उसे देखकर और उसका स्पर्श कर कोई भी पवित्र हो जाता है ॥ ५० ॥

तथैव मण्डले प्राप्तं सर्वं तदमृतं भवेत् ।
विप्रेणान्येन वानीतं देवतायै निवेदयेत् ॥ ५१ ॥

इसी तरह मण्डल में जो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं; वे अमृततुल्य होती हैं। विप्र के द्वारा वा किसी अन्य के द्वारा लायी गई वस्तु देवता को निवेदित करनी चाहिए ॥ ५१ ॥

प्रथमाद्यैः संस्कृतैस्तु युक्तं तत्तदगात्मजे ।
अविशेषेण सर्वैस्तु ग्राह्यं शङ्काविवर्जितैः ॥ ५२ ॥

हे पार्वति, प्रथमादि से सुसंस्कृत एवं युक्त असन्दिग्ध रूप से अविशेष रूप से सबके द्वारा ग्राह्य है ॥ ५२ ॥

यस्त्वत्र संशयात्मा स्यात् स दारिद्र्यं समाप्नुयात् ।
तथाऽन्यत् तेऽभिधास्यामि सर्वत्रैव सुगोपितम् ॥ ५३ ॥

जो यहाँ सन्देह करता है, वह निश्चय ही दरिद्र होता है। तथा मैं तुम्हें और कुछ बतलाता हूँ जो सर्वत्र गोपनीय है ॥ ५३ ॥

देव्यै निवेदितं सर्वं प्रथमादिकमद्रिजे ।
येन केनापि संस्पृष्टं समानीतं सुसंस्कृतम् ॥ ५४ ॥

हे देवि, प्रथमादिक सब कुछ जो देवी के लिए निवेदित है, वह जिस किसी से भी स्पर्श होने पर सुसंस्कृत ही होता है ॥ ५४ ॥

उद्वासानन्तरं वापि मण्डलाद् बाह्यतोऽपि वा ।
आदरेण समादेयं सर्वैः पर्वतगोत्रजे ॥ ५५ ॥

उद्वास अर्थात् एक यज्ञीय संस्कारविशेष के बाद अथवा मण्डल से बाहर भी, हे पार्वति, सबको समादरपूर्वक देना चाहिए॥ ५५॥

उपवासपरैश्चापि स्वीकर्तव्यं सुभक्तितः ।
भोजनादौ तथा सर्वैः स्वीकर्तव्यं प्रसादकम् ॥ ५६ ॥

उपवास में रहने के बावजूद भी भक्तिपूर्वक उसे स्वीकार करना चाहिए। भोजनादि में भी सबको यह प्रसाद स्वीकार करना चाहिए॥ ५६॥

निवेदितं यत् प्रथमं सर्वैरापोशनान्ततः ।
चुलुकेन समादेयं मूलंस्वाहं ततोच्चरन् ॥ ५७ ॥

जो कुछ पहले निवेदित किया गया वे सब आपोशनान्त से (आपोऽशान) एक मंत्र विशेष है, जो भोजन करने के पूर्व और पीछे पढ़े जाते हैं। भोजन के आरम्भ में पढ़ा जानेवाला मन्त्र—''अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'' भोजन के बाद का मन्त्र—''अमृतोपधान-मसि स्वाहा।'' चुल्लू से देना चाहिए फिर मूलमन्त्र पढ़कर 'स्वाहा' का उच्चारण करना चाहिए॥ ५७॥

एतत् सर्वं तदमृतं करोति शृणु शङ्करि ।
नैवेद्यं तु पराया यत्तत्ख्यातममृतं यतः ॥ ५८ ॥

हे शङ्करि! सुनो, ये सब उन्हें अमृत बना डालते हैं। क्योंकि, परादेवता का नैवेद्य अमृत के रूप में ही ख्यात हैं॥ ५८॥

अखिलव्रतधर्मस्य साधनं वै सुसम्मितम् ।
निवेदितं तु यत्किञ्चित् कामाज्जक्ष्यं सकृच्छिवे ॥ ५९ ॥

सम्पूर्ण व्रत, धर्म का साधन सुसम्मति से तो यही है। अन्यत्र जो कुछ भी निवेदित किया जाय, वह काम से भक्ष्य होता है॥ ५९॥

व्रतलोपमवाप्नोति दृष्टं तु त्रिपुरार्णवे ।
मण्डले येन केनापि यत्किञ्चिदुपसंहृतम् ॥ ६० ॥

मण्डल में जिस किसी से भी जो कुछ भी उपसंहृत किया जाय, उससे व्रतलोप होता है, ऐसा त्रिपुरार्णव में देखा जाता है॥ ६०॥

अनिवेद्य परायै तन्न स्वीकर्तव्यमद्रिजे ।
यस्तु मोहात् प्रमादाद् वा मण्डले प्रथमादिकम् ॥ ६१ ॥

परा भगवती को बिना निवेदित किये जो प्रसाद है वह कभी न ग्रहण करे। जो मोहवश या प्रमादवश मण्डल में प्रथमादि को॥ ६१॥

फलं वा पुष्पमपि वा नाचार्याय समर्पयेत् ।
निवेदनाय देवेश्यै तथैव स्वयमाददेत् ॥ ६२ ॥

फल हो अथवा फूल भगवती पर चढ़ाने हेतु आचार्य के हाथ में ही न दे प्रत्युत भगवती के निवेदनार्थ स्वयं उन्हें देवें ॥ ६२ ॥

तस्मै देवी महाराज्ञी क्रुद्धा यच्छति चापदम् ।
सम्भवेद् देवताद्रोही बहिष्कार्यस्तु मण्डलात् ॥ ६३ ॥

इसके लिए देवी महारानी, ऐसा न करनेवालों पर अत्यन्त कुपित हो जाती है तथा उनपर विपत्ति के पहाड़ टूट पड़ते हैं। ऐसे लोग देवताद्रोही होते हैं, इन्हें मण्डल से बाहर निकाल देना चाहिए ॥ ६३ ॥

तस्माद् यत्किञ्चिदानीतमाचार्याय समर्पयेत् ।
आचार्यस्त्रिपुरायै तन्निवेद्य च समर्पयेत् ॥ ६४ ॥

अत: जो कुछ भी लाये सीधे आचार्य को समर्पित कर दे और आचार्य त्रिपुरा को निवेदित कर उन्हें समर्पित कर दे ॥ ६४ ॥

अन्यथा त्रिपुराकोपादापदां भाजनं भवेत् ।
एतत्तेऽभिहितं यत्तत्पुरा पृष्टमगात्मजे ॥ ६५ ॥

ऐसा नहीं करने पर त्रिपुरा के क्रोध से विपत्ति का भाजन होना पड़ता है। हे पार्वति! आपने पहले जो पूछा था, उसका उत्तर मैंने सुना दिया ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे कुलद्रव्यादिकथनं नाम दशमस्तरङ्गः ॥ १० ॥

इति श्रीत्रिपुरार्णव (त्रिपुसारसर्वस्व) में कुलद्रव्यादि कथन नामक
दशम तरङ्ग सम्पन्न ॥ १० ॥

●

अथैकादशस्तरङ्गः

(अर्घ्यविधौ प्रयुक्ता अर्चनामन्त्रः)

गिरिजोवच

महेशार्घ्यविधावुक्तान् मन्त्रान् कथय वै क्रमात् ।
तत्क्रियामपि वै गूढां कृपया प्राणवल्लभ ॥ १ ॥

गिरिजा ने कहा—

हे महेश, हे प्राणवल्लभ! कृपया अर्घ्यविधि में प्रोक्त अर्चना के मन्त्रों के बारे में कहें। क्रमश: इसकी गूढ क्रिया भी बतलायें ॥ १ ॥

वृषभध्वज उवाच

निशामय ब्रुवे सर्वं यत्पृष्टं पार्वति त्वया ।
क्रमेण सर्वं सुस्पष्टं समाधाय स्वकं मनः ॥ २ ॥

वृषभध्वज ने कहा—

हे पार्वति! तुमने जो पूछा वे सब क्रमशः स्पष्ट रूप से मैं तुम्हें बतलाता हूँ, अपने मन में उन्हें सोचकर, तुम उन्हें सुनो॥ २॥

धूम्रार्चिरथ चोष्मा वै ज्वलिनी ज्वालिनी तथा ।
तथैव विस्फुलिङ्गिनी सुश्री चाथ सुरूपका ॥ ३ ॥

धूम्रार्चि, उष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री तथा सुरूपका॥ ३॥

कपिला चाथ हव्यात्तु वहा कव्यवहेति च ।
एतास्त्वग्निकलाः प्रोक्ता यकाराद्यर्णसंयुताः ॥ ४ ॥

कपिला, हव्यवहा और कव्यवहा, यकारादि वर्णयुक्त, ये **अग्निकला** कही गई हैं॥ ४॥

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी ततः ।
रुचिः सुषुम्णा भोगदा विश्वा वै भोगिनी ततः ॥ ५ ॥

तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा और भोगिनी॥ ५॥

धारिणी च क्षमा चेति द्वादशार्ककलास्त्विमाः ।
काद्याः क्रमेण भाद्यास्तु व्युत्क्रमेण द्विशः स्थिताः ॥ ६ ॥

धारिणी और क्षमा—ये बारह **अर्ककला** कहलाती हैं। कादि से लेकर भादि पर्यन्त क्रमशः उलटें क्रमशः दो-दो बार स्थित है॥ ६॥

पशुपाशाय विद्महे शिरश्छेदाय धीमहि ।
तन्नश्छागः प्रचोदयादिति त्रिस्तदनन्तरः ॥ ७ ॥

''पशुपाशाय विद्महे शिरश्छेदाय धीमहि तन्नश्छागः प्रचोदयात्'' यह **छाग-गायत्री** है। इसका तीन बार जप करे। तदनन्तर॥ ७॥

शिवोत्कृत्तमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां व्रज ।
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि न पशुस्त्वं शिवो ह्यसि ॥ ८ ॥

यह पिण्ड शिवोत्कृत्त हैं, अतः तुम अब शिवत्व को प्राप्त करो। हे पशु! अब तुम्हारा उद्बोधन हो, तुम अब पशु नहीं शिव हो। यह **पशूद्बोधन मन्त्र** है॥ ८॥

इत्यपि त्रिस्तु सद्योजातादिपञ्चकमेव च ।
द्वितीयस्य त्र्यम्बकेति तृतीयस्य च तत्परम् ॥ ९ ॥

यह भी तीन बार जप करे, इसके बाद सद्योजातादि पाँचवां अर्थात् धूम्रादि अग्निकला, तपिन्यादि सूर्यकला, छागगायत्री, पशूद्बोधन तथा सद्योजातादि पाँच मंत्रों का जप दूसरे का 'त्र्यंबक' मन्त्र और इसके बाद तीसरे का॥ ९॥

तद्विष्णोरिति तुर्यस्य मन्त्राः प्रोक्ता वरानने।
अमृता मानदा पूषा तुष्टिर्वै पुष्टिरेव च॥१०॥

'तद्विष्णो' यह चौथे का मन्त्र कहा गया है। अमृता, मानदा, पूजा, तुष्टि एवं पुष्टि॥ १०॥

रतिर्धृतिश्च शशिनी चन्द्रिका कान्तिरित्यपि।
ज्योत्स्ना श्रीप्रीतिरपि चाङ्गदा पूर्णामृतान्तिका॥११॥

रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और मृता तक॥ ११॥

इमाः सोमकलाः प्रोक्ताः स्वराद्याः षोडशैव तु।
तारं नमो भगवते वासुदेवाय चेति वै॥१२॥

ये सोलह **सोमकलाएँ** बतलाई गई हैं। स्वरादि ये सोलह उत्कृष्ट एवं पूजनीय है— 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह मन्त्र भी॥ १२॥

वासुदेवमनुस्तद्वदमृतेशीं शृणु प्रिये।
वाग्भवं प्लूं स्प्रौं सुधा च बाणान्त्यश्चामृते ततः॥१३॥

हे प्रिये! वासुदेव के बाद उन्हीं की तरह अमृतेश्वरी की महत्ता है। इसे सुनो। वाणी से उत्पन्न 'प्लूं स्प्रौं सुधा' और वाणान्त्य तत्पश्चात् अमृते॥ १३॥

अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणी।
अमृतं स्त्रावय द्वन्द्वमग्निजायां ततः पठेत्॥१४॥

अमृतोद्भवे, अमृतेश्वरि, अमृतवर्षिणि, अमृतं स्त्रावय, इसके बाद द्वन्द्वमग्निजा का पाठ करे॥ १४॥

अमृतेश्या मन्त्र एष पथिकानथ वै शृणु।
पथिकाद्या देवताभ्यो ग्रामचण्डालिनी ततः॥१५॥

यह **अमृतेशी मंत्र** है, आगे पथिका मन्त्र सुनो। पथिकादि देवता के बाद ग्राम-चाण्डालिनी की पूजा है॥ १५॥

तपिनी चण्डालिनी च निन्दाचण्डालिनी तथा।
सर्वान्ते पशुं तत्पश्चाज्जनदृष्टि ततः परम्॥१६॥

तपिनी, चाण्डालिनी, निन्दा चाण्डालिनी, तथा सबसे अन्त में पशु तत्पश्चात् जनदृष्टि और इसके बाद॥ १६॥

दोषायेति पञ्च भवेदादावन्ते पृथक् पृथक् ।
षान्तं विलोमतो युगमं कान्तं पान्तं चलादिमम् ॥ १७॥

ये पाँच दोष के लिए होते हैं, आदि और अन्त में अलग-अलग षान्त विलोम से दोनों कान्त पान्त चल से ये दोनों ॥ १७॥

रुद्रस्वरबिन्दुयुतं जलबीजचतुष्टयम् ।
वर्मास्त्रं च शिरश्चान्ते समानं पञ्चकं भवेत् ॥ १८॥

विन्दुयुक्त रुद्र और स्वर, चौथा जलबीजमंत्र, वर्मास्त्र और अन्त में शिर—ये पाँचों समान रूप से **पञ्चक मन्त्र** माने जाते हैं ॥ १८॥

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥ १९॥

स्थूल एवं सूक्ष्म रूप में परब्रह्म परमेश्वर एक ही हैं। यही कारण है कि कचोद्भव ब्रह्महत्या जैसे पाप को भी मैं इससे विनष्ट करता हूँ ॥ १९॥

सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे ।
उमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥ २०॥

सूर्य की परिधि से उत्पन्न, सागर से समुत्पन्न, भगवती पार्वती के उपादान कारण स्वरूपे हे देवि, शुक्रशाप से मुक्त करो ॥ २०॥

वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्या व्यपोहतु ॥ २१॥

यदि ब्रह्मानन्दमय जीवन हो, तो वेदों का बीज प्रणव है। हे देवि, इसी सत्य से ब्रह्महत्या जैसे पाप को आप विनष्ट करे ॥ २१॥

शुक्रशापमोचनाख्यो मन्त्रस्त्वेष समीरितः ।
ध्रुवो नमो भगवति वारुणी जलमूर्तये ॥ २२॥

यह **मन्त्र शुक्रशापमोचन** के नाम से ख्यात है। यह ध्रुवसत्य है। हे जलमूर्ति वारुणी देवि आपको मेरा प्रणाम है ॥ २२॥

ग्रामेश्वरि पथि प्रान्तेकदेवते गृह्णद्वयम् ।
सर्वदोषान् मोचय द्विर्लक्ष्मी ह्रीकामबीजकम् ॥ २३॥

हे ग्रामेश्वरि, रास्ते के किनारे एकमात्र देवता, रास्ते के छोर पर निवास करनेवाली एकमात्र देवता, ह्री कामबीजक रूपी हे द्विर्लक्ष्मी कृपया इसके सभी दोषों को आप यहाँ से हटा दे ॥ २३॥

वाग्भवं शां शीमित्यादि षट्कं तस्यां ततः शिवे ।
शुक्रशापविमोचीति कायै स्वाहेति वै भवेत् ॥ २४॥

वाणी से उत्पन्न शां, शी, इत्यादि षट्क तथा इसके बाद उसमें 'कायै स्वाहा' इसे जोड़कर हे शिवे, इस मन्त्र से शुक्रशाप का निश्चय ही विमोचन होता है॥ २४॥

तान्त्रिकः शुक्रशापस्य मोचने मन्त्र ईरितः।
स्वाधिष्ठ्येत्यादिमन्त्रान् पठेद् वै त्वेन आशसः॥ २५॥

शुक्रशाप मोचन के जो तान्त्रिक मन्त्र बतलाये गये हैं वे स्वाधिष्ठेत्यादि है तथा इस मन्त्र को 'वै त्वेन आशसः' से पढ़े॥ २५॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु आधत्तां पुष्करस्त्रजा।
हिरणमयी अरणी दशमे मासि सूतवे॥ २६॥

विष्णुयोनि की कल्पना कर उस पर कमल की माला स्थापित करे फिर, दशवें महीने में प्रसव के लिए सोने की अरणी से अग्नि उत्पन्न करे॥ २६॥

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्जातवेदः पुनीहि मा।
प्रप्यायस्व प्रस्यन्दस्व देवेभ्य उत्तमं हविः॥ २७॥

हे सूर्यदेव, आप स्वयं इस यज्ञ के तीसरा हिस्सा हैं; हे जातवेद, आप मुझे पवित्र करे, देवताओं के लिए जो यह उत्तम हवि हैं, उसे आप प्राप्त करे॥ २७॥

इमं मे गङ्गे यमुने ये शृणु ह्यासुषोमया।
सितासिते सरिते यसो अमृतत्वं भजन्ते॥ २८॥

यह मेरी प्रार्थना हे गंगे, ओ यमुने, आप इसे सुनें, हे श्वेत-श्याम सरिते, आप अमृतत्व को प्राप्त करे॥ २८॥

ता मन्दसानामनुषोष्वामप दुर्मति हतम्।
श्रोणामेक उदकं गाभ्यः पितरा उपावतु॥ २९॥

इसी तरह 'ता मन्दसानामनुषोष्वामप' इत्यादि वैदिक मन्त्र का पाठ करे॥ २९॥

हिरण्यपात्रं मधोः पून आयुस्तेजो दधाति।
पवमानः सुवर्जनः दामोर्जयन्त्या पुनातु॥ ३०॥

'हिरण्यपात्रम्' इत्यादि मन्त्र में सोने के पात्र में पवित्र मधुपान का विधान तथा तज्जन्य सुख सुविधा प्राप्ति का निर्देश है॥ ३०॥

मधुवाता ऋतायते माध्वीर्गावो भवन्तु नः।
एवंविधैर्मन्त्रजालैः संशोध्य तदनन्तरम्॥ ३१॥

'मधुव्वाता ऋतायते' इत्यादि जैसे मन्त्रजालों से संशोधित करने के बाद॥ ३१॥

शुक्रशापान्मोचयित्वा हेतुकुम्भे तु पूरयेत्।
ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं न्लूं च देवि रत्नबीजानि वै क्रमात्॥ ३२॥

शुक्रशाप से मुक्त होकर, हेतुघट को इनसे भरना चाहिए—'ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं न्लूं' हे देवि, ये क्रमशः **रत्नबीज** हैं॥ ३२॥

गगनस्वर्णमर्त्यानि पातालं नागमेव च।
पञ्चरत्नानि चैतानि मिथुनत्रितयं शृणु॥ ३३॥

गगन, स्वर्ग, मर्त्य, पाताल और नागलोक ये **पञ्चरत्न** हैं। हे देवि, अब तीन जोड़ों में मिथुन-त्रितय सुनो॥ ३३॥

आनन्दभैरवो देवि तद्वदानन्दभैरवी।
स्वच्छन्दभैरवद्वन्द्वं परभैरवयुग्मकम्॥ ३४॥

हे देवि, आनन्दभैरव और उसी तरह आनन्दभैरवी का जोड़ा, स्वच्छन्द भैरव का जोड़ा और युगल परभैरव॥ ३४॥

हसक्षमलवरयान्संयोज्य षष्ठके स्वरे।
बिन्दुसंयोजनादेव बीजमानन्दभैरवम्॥ ३५॥

ह स क्ष म ल व र य को मिलाकर छठे स्वर पर विन्दु संयोजन से ही आनन्दभैरव का बीज तैयार हो जाता है॥ ३५॥

नामान्ते तु शिखा चैवमाद्ययोस्तत्र व्युत्क्रमात्।
नेत्रान्त्यं शक्तिपूजायां सर्वत्रैवं भवेच्छिवे॥ ३६॥

नाम के अन्त में शिखा और दोनों आदि के उल्टे क्रम से आँखों की चरम सीमा पर शक्तिपूजा में हे शिवे, ऐसा ही सर्वत्र होता है॥ ३६॥

इच्छाज्ञानक्रियाशान्ता चेति शक्तिचतुष्टयम्।
आत्मविद्याशिवाख्यानि सर्वं तत्त्वचतुष्टयम्॥ ३७॥

इच्छा, ज्ञान, क्रिया और शान्तचित्त ये चार शक्ति हैं। इन्हें **शक्तिचतुष्टय** कहा जाता है। आत्मज्ञान, विधा, शिव और आख्यान कथन ये चार तत्त्व है॥ ३७॥

कामरूपं पूर्णगिरिर्जालन्धरमतः परम्।
ओड्याणं चेति पीठानि प्रोक्तानि परमेश्वरि॥ ३८॥

हे परमेश्वरि, कामरूप, पूर्ण गिरि और इसके बाद जालन्धर तथा ओड्याण ये चार **शक्तिपीठ** कहलाते हैं॥ ३८॥

यजेद् ब्राह्म्यादिसहितानसिताङ्गादिभैरवान्।
असिताङ्गं रुरुं चण्डं क्रोधमुन्मत्तमेव च॥ ३९॥

ब्राह्मी आदि के साथ असिताङ्ग आदि भैरवों की पूजा करनी चाहिए। असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध एवं उन्मत्त भैरव आदि॥ ३९॥

कपालिभीषणौ तद्वत् संहारं भैरवाष्टकम् ।
ब्राह्मी माहेश्वरी तद्वत् कौमारी वैष्णवी तथा ॥ ४० ॥

कपाली, भीषण, तथा उसी तरह संहारभैरव ये **आठ भैरव** हैं। इसी प्रकार ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी तथा ॥ ४० ॥

वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा च ततः परम् ।
महालक्ष्मी चेति शिवे अष्टपत्रे प्रपूजयेत् ॥ ४१ ॥

वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और इसके बाद महालक्ष्मी इन **अष्ट महादेवियों की पूजा** अष्टपत्र पर करनी चाहिए ॥ ४१ ॥

अग्निसूर्यसोमकलाः प्रागुक्ताश्चापि वै पठेत् ।
बीजान्यादौ तु बालायाश्चरमे तमसा युतम् ॥ ४२ ॥

अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा की कलायें जो पहले कही जा चुकी है, उसका भी पाठ करना चाहिए। सर्वप्रथम भगवती बाला का बीजमंत्र प्रणतिपूर्वक उच्चारण करना चाहिए ॥ ४२ ॥

ब्रह्मादिषु कलास्वेवं तारवर्णानहो तथा ।
एवं तत्तत्कलादौ स्यादाधारादिषु पूजने ॥ ४३ ॥

ब्रह्मा आदि की कलाओं में ऐसे तारवर्णों को तथा इसी तरह उन उन कलाओं में अपने आधारादि के पूजन में ॥ ४३ ॥

बीजान्ते मण्डलायोक्त्वा धर्मप्रददशां ततः ।
कलात्मनेऽमुकान्ते चाधाराय हृदयं वदेत् ॥ ४४ ॥

बीज के अन्त में मण्डल के लिए मंत्रोच्चार कर, धर्मप्रद दशा दर्शायें, फिर, अमुक कला के अन्त में आधार के लिये हृदय का पाठ करना चाहिए ॥ ४४ ॥

अग्निसूर्यसोमरूपं मण्डलत्रितयं स्मृतम् ।
धर्मार्थकामा देवेशि पुमर्थाश्च निरूपिताः ॥ ४५ ॥

अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र रूप तीन मण्डल कहलाते हैं, हे देवेशि, धर्म, अर्थ और काम ये पुरुषार्थ के द्योतक हैं ॥ ४५ ॥

सृष्टिर्ऋद्धिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः स्थिरा ।
स्थितिः सिद्धिश्चेति दश कला ब्राह्मयाः परिकीर्तिताः ॥ ४६ ॥

सृष्टिः, ऋद्धिः, स्मृतिः, मेधा, कान्तिः, लक्ष्मीः, द्युतिः, स्थिरा, स्थिति और सिद्धिः, ये **ब्राह्मी की दश कलायें** कहलाती हैं ॥ ४६ ॥

जराथ पालिनी शान्तिरीश्वरी च रतिस्ततः ।
कामिका वरदाऽऽह्लादिनी प्रीतिर्दिर्घिका दश ॥ ४७ ॥

जरा, पालिनी, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, आह्लादिनी, प्रीति और दीर्घिका ये भी दश कलायें हैं॥ ४७॥

विष्णोः कलाथ तीक्ष्णा रौद्री भयाथो निद्रा तन्द्री ।
क्षुधा च क्रोधिनी क्रियोद्गारी मृत्युर्दशेरिताः ॥ ४८ ॥

अब विष्णु की दश कलायें निम्नलिखित बतलाई गई हैं—तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्री, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी और मृत्यु॥ ४८॥

रौद्र्यः कलास्तथा पीता श्वेत वै चारुणा सिता ।
अनन्ता पञ्चेश्वरस्य कलाः शृणु सदाशिवाः ॥ ४९ ॥

हे पार्वति! सुनो, पञ्चेश्वर की अनन्त कलायें हैं। उनमें रौद्री कला, तथा पीता, श्वेता, चारु तथा सिता सदा कल्याणप्रद हैं॥ ४९॥

निवृत्तिर्वै प्रतिष्ठापि विद्या शान्तिरपीन्धिका ।
दीपिका रेचिका मोचिका परा वै ततः परम् ॥ ५० ॥

प्रतिष्ठा की भी निश्चित रूप से निवृत्ति हो जाती है; विद्या, शान्ति भी इसको प्रज्वलित करनेवाली हैं। इसके बाद दीपिका, रेचिका, मोचिका पराशक्ति हैं॥ ५०॥

सूक्ष्मा सूक्ष्मामृता ज्ञानामृताथाप्यायिनी ततः ।
व्यापिनी व्योमरूपा चानन्ता षोडशं प्रोदिताः ॥ ५१ ॥

सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, इसके बाद व्यापिनी, व्योमरूपा अनन्ता ये षोडश प्रकर्ष रूप से कही गयी हैं॥ ५१॥

कटपादिषादि स्वरवर्णयुक्ता महेश्वरि ।
हंसः शुचिः प्रतद्विष्णुस्त्र्यम्बकं च क्रमात् ततः ॥ ५२ ॥

क ट प आदि इ ष आदि स्वरवर्ण युक्त हे महेश्वरि, 'हंसः' शुचिः विस्तृत विष्णु तत्पश्चात् त्र्यम्बक शिव का क्रमशः पूजन करे॥ ५२॥

तद्विष्णोर्वै विष्णु योनिं तत्तदन्ते पठेच्छिवे ।
हेतु-संस्तुतिमन्त्रांश्च वक्ष्ये शृणु समाहिता ॥ ५३ ॥

हे शिवे, 'तद्विष्णोर्वै' इत्यादि वैदिक मन्त्र का पाठ करे। इसके बाद हेतुसंस्तुति के मंत्रों का उल्लेख करता हूँ, उन को आप सावधान चित्त से सुनें॥ ५३॥

अखण्डैकरसानन्दकरे पर-सुधात्मनि ।
स्वच्छन्द-स्फुरणामत्र निधेह्यकुलरूपिणी ॥ ५४ ॥

अखण्ड एक रस का आनन्द देनेवाली, सर्वोच्च अमृतरूपी आत्मावाली, स्वच्छन्द स्फुरणवाली, अकुलरूपिणी अर्थात् शिवस्वरूपिणी हैं॥ ५४॥

अकुलस्थामृताकरे सिद्धिज्ञानकरे परे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणी ॥ ५५ ॥

किसी कुल में नहीं अवस्थित, हे अमृताकारे, सिद्धि एवं ज्ञान दे, परमोच्च शक्ति-स्वरूपिणी, हे तरल स्वरूपवाली इस वस्तु में अमृतत्व प्रदान कर ॥ ५५ ॥

तद्रूपैकरस्यत्वं कृत्वाऽर्घ्ये चित्स्वरूपिणी ।
भूत्वा परामृताकारे मयि चित्स्फुरणं कुरु ॥ ५६ ॥

उस रूप में एकरसता स्थापित कर तुम, इस अर्घ्य में चित्स्वरूपिणी होकर, अमृतस्वरूपिणी, हे सर्वोच्चशक्ति! मुझमें चित्स्फुरण कर ॥ ५६ ॥

हेतुसंस्तुतिरेतत्तु मया प्रोक्तमगात्मजे ।
इति ते पृष्टमखिलं निरूपितमतिस्फुटम् ॥ ५७ ॥

हे पर्वतपुत्रि, ये ही हेतु-संस्तुति हैं। आपने जो पूछा, उन प्रश्नों का उत्तर मैंने अत्यन्त स्पष्ट रूप से आपके सामने अभिव्यक्त कर दिया ॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वेऽर्घ्यादिमन्त्रनिरूपणं नामैकादशस्तरङ्गः ॥ ११ ॥

इति त्रिपुरार्णव तन्त्र (त्रिपुरासारसर्वस्व) में अर्घ्यादिमन्त्र निरूपण नामक ग्यारहवाँ तरङ्ग सम्पन्न हुआ ॥ ११ ॥

अथ द्वादशस्तरङ्गः

(त्रिपुरायाः सोपचारपूजाया उत्तरक्रिया विधिः)

उमोवाच

महेश करुणासिन्धो वद पश्चात्तनीं क्रियाम् ।
पूजायाः सोपचारायाः साङ्गोपाङ्गं सविस्तरम् ॥ १ ॥

पार्वती ने पूछा—

हे महेश, हे दयासागर! इसके बाद भगवती **त्रिपुरा की पूजा की साङ्गोपाङ्ग उत्तरक्रिया** विस्तारपूर्वक हमें बतलायें ॥ १ ॥

महादेव उवाच

उमे शृणु प्रवक्ष्यामि पूजामुत्तरसंज्ञिताम् ।

उपचारं समभ्यर्च्य ताम्बूलान्तं ततः परम् ॥ २ ॥

महादेव ने कहा—

हे उमे, अब ताम्बूलान्त उपचारपूजा, जिसे **उत्तरपूजा** के नाम से भी जाना जाता है, उसे मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

आवृतिं पूजयेत् पश्चात् पुनः पञ्चोपचारकम् ।
नैवेद्यापोशनं दत्त्वा प्राणाद्यास्तु प्रदर्शयेत् ॥ ३ ॥

आवृति अर्थात् परिक्रमा या आवरण पूजा के बाद पञ्चोपचार पूजा करे, नैवेद्य चढ़ायें आपोशन अर्थात् भोजनान्त मन्त्र पढ़ें, फिर, प्राणादि मुद्रा प्रदर्शन करे ॥ ३ ॥

चित्पात्रे सद्धविः सौख्यं विविधानेकभक्षणम् ।
निवेदयामि ते देवि सानुगायै जुषाण तत् ॥ ४ ॥

चित् अर्थात् विवेकरूपी पात्र में सुन्दर हवि अनेक सुखकर एवं विविध भोज्य पदार्थ हे देवि, आपको निवेदित करता हूँ, आप अपने अनुगामियों के साथ इसे ग्रहण करे ॥ ४ ॥

इति प्रार्थ्य जपेन्मूलं ध्यायेत् कामकलां पराम् ।
शिवशक्तिमयं यत्तु वर्णयुग्ममह प्रिये ॥ ५ ॥

इतनी प्रार्थना कर, मूलमन्त्र का जप करे और पराशक्ति की कामकला का ध्यान करे। जो शिवशक्तिमय अ ह इन दो वर्णों का प्रशंसनीय संगम है ॥ ५ ॥

विश्वगर्भं पराशक्ति-शून्याकार-परापरम् ।
आत्मशक्तिमभिध्यायेत् प्रत्यावृत्त-स्वचक्षुषा ॥ ६ ॥

शून्याकार, विश्वगर्भा परापर उस पराशक्ति का ध्यान करे, फिर लौटकर अपनी आँखों से आत्मशक्ति का ध्यान करे ॥ ६ ॥

एतत् कामकलाध्यानं जीवन्मुक्तिप्रवर्तनम् ।
सूक्ष्मध्यानेऽसमर्थश्चेत् स्थूलं ध्यायेद् यथोक्तवत् ॥ ७ ॥

यही जीवन्मुक्ति प्रदान करनेवाली **काम-कला का ध्यान** है। सूक्ष्म ध्यान करने में यदि कोई असमर्थ हो तो स्थूल ध्यान ही यथोक्त रीति से करे ॥ ७ ॥

बिन्दुत्रयं तु तज्ज्ञात्वा तत्प्ररूढौ त्रिकोणकम् ।
मुखं स्तनद्वयं योनिर्देवता स्वात्मनोः स्मरेत् ॥ ८ ॥

तीनों विन्दुओं की जानकारी प्राप्त कर उस पर बढ़े त्रिकोण, मुख, दोनों स्तन, योनि देवता और अपनी आत्मा का स्मरण करे ॥ ८ ॥

ततो होमं विदध्याद् वै संसाध्याग्निं निरुक्तवत् ।
वह्निं देवीं प्रपूज्याथ षडङ्गं च गुरुत्रयम् ॥ ९ ॥

इसके बाद अग्निसंसाधन के पश्चात् होम करे। पूर्वोक्त ढंग से, अग्नि और देवी को पूजाकर षडङ्ग और गुरुत्रय की पूजा करे॥ ९॥

कामेश्वर्यादिकं चापि मूलमष्टोत्तरं शतम्।
पुनः पूज्योद्वास्य चात्र परिषिञ्चेन्मुखान्त्ययोः॥ १०॥

कामेश्वरी आदि की पूजा कर एक सौ आठ बार मूलमंत्र का जप करे। पुनः पूजा कर उद्वासन करे, यहाँ मुख और अन्त्य का परिषिञ्चन भी करे॥ १०॥

बलिपूजां ततः कुर्यात् तद्विधानं क्रमाच्छृणु।
ईशादिमारुतान्तं वै प्रागादिष्वपि दिक्षु च॥ ११॥

इसके बाद बलि पूजा करे। इसका विधान क्रमशः सुनो। ईश से लेकर मरुत तक और पूर्वादि दिशाओं में॥ ११॥

द्वारान्तर्द्वारबाह्ये च बलिदेव्यो दश स्मृताः।
वटुकं योगिनी क्षेत्रपालं गणपतिं तथा॥ १२॥

द्वार के भीतर और द्वार के बाहर दश बलि देवियाँ कही गई हैं तथा उनके साथ बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल और गणपति भी पूजनीय हैं॥ १२॥

तिरस्कृतिं च वाराहीं सर्वभूतं च मन्त्रिणीम्।
उच्छिष्टाद्यां श्यामलां च भैरवं चेति वै दश॥ १३॥

ये दस क्रमशः पूजनीय हैं—तिरस्कृति, वाराही, सर्वभूत, मन्त्रिणी, उच्छिष्टा, आद्या, श्यामला और भैरव॥ १३॥

चतुरस्त्रं तथा वृत्तं त्रिकोणं च प्रकल्पयेत्।
तत्रादौ मण्डलानीष्ट्वा वटुकाद्यांश्च पूजयेत्॥ १४॥

चतुष्कोण, वृत्त एवं त्रिकोण की परिकल्पना करे। यहाँ सर्वप्रथम मण्डलों की पूजा कर बटुकादि की पूजा करे॥ १४॥

उपचारैः पञ्चभिस्तु तत्तदग्रे तु विन्यसेत्।
बलिपात्रं व्यञ्जनान्नाद्यखिलोपेतमद्रिजे॥ १५॥

हे पार्वति, इसके बाद पञ्चोपचार की सामग्रियाँ उनके सामने रक्खें। फिर, व्यञ्जन, अन्नादि सारी सामग्रियाँ बलिपात्र के साथ वहाँ रक्खे॥ १५॥

विशेषार्घ्यस्थितैर्हेतुबिन्दुभिश्च द्वितीयकैः।
तत्तन्मुद्रासमायोग-मन्त्रपाठ-प्रपूर्वकम्॥ १६॥

विशेष अर्घ्यपात्र में स्थित हेतु और बिन्दुओं से मन्त्रपाठपूर्वक उनकी विशेष मुद्राओं का प्रदर्शन करे॥ १६॥

प्रार्थयेत्तत्तदनु च क्रमेण प्रणमेत् तथा।

बलिदानेन सन्तुष्टो वटुकः सर्वसिद्धिदः ॥ १७॥

इसके बाद इनकी प्रार्थना कर क्रमशः उन्हें प्रणाम करे। बलिदान से पूर्ण सन्तुष्ट बटुकभैरव सर्वसिद्धि प्रदान करते हैं॥ १७॥

शान्तिं करोतु मे नित्यं भूतवेतालसेवितः ।
या काचिद् योगिनी रौद्रा सौम्या घोरतरा परा ॥ १८॥

भूत और वैताल सेवित वटुक देव मुझे शान्ति प्रदान करे। जो कोई योगिनी रौद्रा, सौम्या, घोरतरा, या परा॥ १८॥

खेचरी भूचरी व्योमचरी प्रीतास्तु मे सदा ।
योऽस्मिन् क्षेत्रे निवासी च क्षेत्रपालः सकिङ्करः ॥ १९॥

खेचरी, भूचरी, व्योमचरी मुझपर सदा प्रसन्न हों, अपने सेवकों के साथ इस क्षेत्र में निवास करने वाले जो क्षेत्रपाल हैं॥ १९॥

प्रीतोऽयं बलिदानेन सर्वरक्षां करोतु मे ।
सर्वदा सर्वकार्याणि निर्विघ्नं साधयन् मम ॥ २०॥

वे इस बलिदान से प्रसन्न होकर हर तरह से मेरी रक्षा करे। मेरे सभी कार्यों को निर्विघ्न पूरा करते रहें॥ २०॥

शान्तिं करोतु सततं विघ्नराजः सशक्तिकः ।
पशुवाग्दृष्टिचित्तानि समाच्छाद्य तिरस्कृतिः ॥ २१॥

अपनी शक्ति के साथ विघ्नराज हमेशा हमें शान्ति प्रदान करे, गुप्तरीति से वे मेरे पशु, वाक्, दृष्टि और चित्त को आच्छादित करे॥ २१॥

बलिं गृह्णातु सन्तुष्टा पूजिता मे शुभप्रदा ।
दुष्टान् तीव्रेण दण्डेन दण्डयित्वा तु दण्डिनी ॥ २२॥

सदैव शुभप्रदा दण्डिनी मेरी पूजा से सन्तुष्ट होकर बलि स्वीकार करे। दण्डिनी देवी, अपने तीव्रदण्ड से दुष्टों को दण्डित करे॥ २२॥

प्रीणातु बलिदानेन सङ्कर्षिण्यादिसंयुता ।
सर्वे भूता विघ्नकराश्चोर्ध्वाधो मध्यलोकगाः ॥ २३॥

अपरलोक, अधोलोक, मध्यलोक में भ्रमण करनेवाले सभी विघ्नकर्त्ता, भूतगण सङ्कर्षिणी आदि के साथ मेरी बलि स्वीकार कर प्रसन्न हों॥ २३॥

बलिं गृह्णन्तु पूजां च प्रसन्नाः सन्तु मे सदा ।
मन्त्रिणी बलिदानेन सन्तुष्टा वाञ्छितार्थदा ॥ २४॥

इस बलिदान से सन्तुष्ट होकर वाञ्छित अर्थ देनेवाली मन्त्रिणी सन्तुष्ट हो। ये मेरी दी हुई बलिग्रहण करे, मेरी पूजा से सर्वदा वे प्रसन्न हों॥ २४॥

पूजिता च मया सम्यङ् मातङ्गी गणसंयुता ।
उच्छिष्टश्यामलायास्तु देवतोद्वासनां ततः ॥ २५ ॥

मैंने अच्छी तरह गजों के साथ मातङ्गी की पूजा की है। इसके बाद उच्छिष्ट-श्यामला की पूजा तथा देवताओं के लिए उद्वासन अर्थात् यज्ञीय आसन बिछाता हूँ॥ २५॥

नैवेद्यान्नेन तस्यै तु बलिर्देयो वरानने ।
पूर्वदत्तैर्बलिद्रव्याण्यादायोच्छिष्टभैरवे ॥ २६ ॥

हे वरानने, नैवेद्य के अन्न से उनके लिए बलि देना चाहिए। पूर्वप्रदत्त बलिपात्र अथवा बलि द्रव्यों को उच्छिष्टभैरव के लिए प्रदान करे॥ २६॥

इमं बलिं समादद्यादुच्छिष्टश्यामला परा ।
उच्छिष्टभागिनी देवी प्रीणात्वखिलपूर्त्तिदा ॥ २७ ॥

परादेवी उच्छिष्ट श्यामला को यह बलि ठीक से प्रदान करे। क्योंकि, उच्छिष्ट बलि पाने के हकदार यही हैं। ये अखिल कामनाओं को पूरा करती हैं। वे प्रसन्न हों॥ २७॥

बलिद्रव्यैर्मया दत्तैः प्रीयतां भक्तवत्सलः ।
उच्छिष्टभैरवो देवो मम संरक्षको भवेत् ॥ २८ ॥

मेरे द्वारा प्रदत्त बलि द्रव्य से भक्तवत्सल उच्छिष्टभैरव देव प्रसन्न होकर मेरे संरक्षक हों॥ २८॥

उच्छिष्टभैरवबलिं तदन्ते तु प्रदापयेत् ।
उच्छिष्टभैरवबलिं मण्डले तु विनिक्षिपेत् ॥ २९ ॥

उपासना के अन्त में उच्छिष्टभैरव को बलि प्रदान करे। बनाये गये मण्डल पर उच्छिष्टभैरव की बलि को बिखेर दे॥ २९॥

पात्रं तथा हस्तपादौ प्रक्षाल्याचम्य शङ्करि ।
तत्पात्रं तोयसम्पूर्णं गृहीत्वान्तर्व्रजेत् ततः ॥ ३० ॥

हे शङ्करि, पात्र तथा हाथ-पाँव को धोकर, आचमन कर, पानी भरे उस पात्र को लेकर अन्त:प्रवेश करे॥ ३०॥

उदयोऽस्तु ब्रुवन् तस्मिन् विशेषार्घ्यस्य लेशकम् ।
दत्त्वा तदुदकैः सर्वानभिषिञ्चन् यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥

''उदयोऽस्तु'' यह बोलते हुए उस अर्घपात्र को लेक के हाथ में थमाकर उस जल से अभिषेक करना चाहिए॥ ३१॥

पठेच्छान्तिस्तवं पश्चात् कुर्यात् पूजासमापनम् ।
एतत्ते कथितं सर्वं यत्त्वया प्राग्विचारितम् ॥ ३२ ॥

इसके बाद शान्तिपाठ करके पूजा समाप्त करे। पूर्व में तुमने जो पूछा था, उसका उत्तर तुम्हें मैंने सुना दिया॥ ३२॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे होमबलिकथनं नाम द्वादशस्तरङ्गः॥ १२॥

इस प्रकार श्रीत्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में होमबलिकथन नामक बारहवाँ तरङ्ग सम्पन्न हुआ॥ १२॥

●

अथ त्रयोदशस्तरङ्गः

(पूजोत्तरविधिः)

अगजोवाच

पुरारे श्रोतुमिच्छामि बलिमन्त्रान् यथाक्रमम्।
विसर्जनं तथाऽर्घ्याणां तद्वत् पूजासमापनम्॥ १॥

पार्वती ने कहा—

हे महादेव, अब मैं यथाक्रम बलिमन्त्रों को सुनना चाहती हूँ। उसी तरह अर्घ्यों का विसर्जन तथा पूजासमाप्ति कैसे करे? यह भी बतलायें॥ १॥

त्रिनेत्र उवाच

शृणु गोत्राङ्गजनिते बलिमन्त्रादिकं क्रमात्।
एह्येहि देवीपुत्राच्च कपिलान्ते जटा ततः॥ २॥

महादेव ने कहा—

हे पर्वतपुत्रि, क्रम से बलिमन्त्रादि मैं बतलाता हूँ तुम सुनो, कपिलान्त जटाधारी पुत्र के पास से हे देवि आओ, चली आओ॥ २॥

भारभासुर त्रिनेत्र ज्वालामुख च सर्वतः।
विघ्नान्नाशय सर्वोपचार वै सहितं बलिम्॥ ३॥

प्रचण्ड चमकीली तीनों आँखें जिनसे सारी दिशाओं में ज्वालामुखी फूट रही हों उनके सामने बलिसहित पूजा के सारे उपचार करता हूँ वे मेरे विघ्नों को विनष्ट करे॥ ३॥

गृह्ण द्वयं वह्निजाया वटुकस्य बलेर्मनुः।

यां योगिनीभ्यः स्वाहा वै सर्वयोगिनीभ्यो हुं फट् ॥ ४ ॥

अग्निपत्नी स्वाहा यह बलि दुहरे रूप में स्वीकार करे, बटुक भैरव के निमित्त प्रदत्त यह बलि 'योगिनीभ्यः स्वाहा' तथा 'सर्वयोगिनीभ्यः हुँ फट्' के रूप में स्वीकारे॥४॥

वह्निजाया तथा चायं योगिन्यास्तु बलेर्मनुः ।
क्षां क्षीमित्यादिषट्कं च वर्मस्थानं च क्षेत्रपा ॥ ५ ॥

अग्निपत्नी स्वाहा तथा ये योगिनी की बलि का मन्त्र 'क्षां क्षीं' इत्यादि षट्क वर्मस्थान और क्षेत्रपाल॥५॥

ल धूपदीपसहितं बलिं गृह्ण द्वयं ततः ।
सर्वकामान् पूरय च स्वाहा क्षेत्रपतेर्मनुः ॥ ६ ॥

धूप और दीप सहित दुहरी बलि आप ग्रहण करे। इसके बाद क्षेत्रपति मन्त्र 'स्वाहा' कर प्रार्थना करे—आप मेरी सारी कामनाओं को पूरा करे॥६॥

गां गीं गूं गणपतये वर वरद सर्व च ।
विघ्नान् नाशय सर्वोपचार वै सहितं बलिम् ॥ ७ ॥

गां गीं गूं वरद गणपति से मैं वरदान की याचना करता हूँ। सब कुछ देनेवाले गणेश मेरे सारे विघ्नों को विनष्ट करे, सारे उपचारों के साथ यह बलि स्वीकार करे॥७॥

गृह्ण द्वयं शिरश्चापं गणपस्य बलेर्मनुः ।
त्रितारं च तिरस्करणिके सर्वपशून् ततः ॥ ८ ॥

दुहरे शिरवाले गणप के बलिमन्त्र आप स्वीकार करे। इसके बाद हे तिरस्करणि के, त्रितार (तिहरे तार वाले) अथवा भव्य पशुओं को स्वीकार करे॥८॥

मोहय द्वितयं चेमं बलिं गृह्ण द्वयं शिरः ।
तिरस्करणिकायास्तु बलेरेष मनुः स्मृतः ॥ ९ ॥

दो शिरवाले इस दुहरी बलि को मोहित कर इसे ग्रहण करो। तिरस्करणिका का यह बलिमन्त्र कहा है॥९॥

वाग्भवं ग्लौं तु वाराहि दुष्टान् दण्डय दण्डिनि ।
बलिं गृह्ण द्वयं स्वाहा वाराह्यास्तु बलेर्मनुः ॥१०॥

वाणी से उत्पन्न 'ग्लौं' वाराही ग्रहण करे, दण्डिनी दुष्टों को दण्डित करे। दुहरी बलि स्वाहा स्वीकार करे। वाराही बलिग्रहण का यह मन्त्र है॥१०॥

सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो वर्म वै शिरः ।
सर्वभूतेभ्य एषोऽथो बलिर्न मम चेति वै ॥११॥

सर्वविघ्न कर्त्ताओं के लिए, सर्वभूतों के लिए शिर ही कवच है। यह सर्वभूतों के लिए है, मेरी यह बलि नहीं है॥११॥

सर्वभूतबलेर्मन्त्रः प्रोक्तश्चैवमगात्मजे ।
त्रितारं राजमातङ्गि तथा वीणाविनोदिनि ॥ १२ ॥

हे पार्वती, सर्वभूत बलि का मन्त्र मैंने बतला दिया। त्रितार, राजमातङ्गि, तथा वीणा-विनोदिनि ॥ १२ ॥

इमां पूजां बलिं गृह्ण द्विर्मां रक्ष द्वयं तथा ।
वर्मास्त्रं वह्निजाया च श्यामलाया बलेर्मनुः ॥ १३ ॥

ये दोनों पूजा और बलि आप स्वीकार करे, ये दोनों मेरी रक्षा करे। वर्मास्त्र एवं अग्निपत्नी स्वाहा तथा **श्यामला का बलिमन्त्र** स्वीकार करे ॥ १३ ॥

वाग्भवं हृदयम् उच्छिष्टचण्डाली च मातङ्गी ।
सर्वजनवशङ्करी शिरश्चेति मनुर्भवेत् ॥ १४ ॥

वाग्भव, हृदय, उच्छिष्ट चाण्डाली, और मातङ्गी, सर्वजनवशङ्करी, और शिर ये मन्त्र होते हैं ॥ १४ ॥

उच्छिष्टश्यामलायास्तु भैरवस्यापि संशृणु ।
त्रितारमुच्छिष्टभेरवबलिं गृह्ण युग्मकम् ॥ १५ ॥

उच्छिष्ट श्यामला और भैरव के मन्त्र भी सुनो त्रितार और उच्छिष्टभैरव की दोनों बलि को स्वीकार करे ॥ १५ ॥

वर्मास्त्रं वह्निजाया च मनुरेषः प्रकीर्तितः ।
होमं बलिं समाप्यान्ते पानीयाद्युपचारकम् ॥ १६ ॥

वर्मास्त्र एवं वह्निजाया का यह **मन्त्र** कहा जाता है। होम और बलि समाप्त कर अन्त में पानी आदि उपचार दे ॥ १६ ॥

ताम्बूलं दक्षिणां चापि कुर्यादारार्त्तिकं ततः ।
तत्पात्रं पुरतो न्यस्य मायया ज्वालयेदपि ॥ १७ ॥

पान एवं दक्षिणा देकर, आरती करे। उस पात्र को आगे रखकर मायामुद्रा से उसे प्रज्वलित भी करे ॥ १७ ॥

गन्धपुष्पाक्षतैरिष्ट्वा नवरत्नानि सञ्जपेत् ।
ज्योतिर्मुद्रां चक्रमुद्रां प्रदर्श्य प्रणमेत् ततः ॥ १८ ॥

गन्ध, पुष्प और अक्षत से पूजाकर नवरत्नों का जप करे। इसके बाद ज्योतिमुद्रा एवं चक्रमुद्रा का प्रदर्शन कर प्रणाम करे ॥ १८ ॥

पात्रमुत्थाप्य चोत्थाय पादान्मूर्धान्तमीश्वरि ।
त्रिर्भ्राम्य मन्त्रपूर्वं तु संस्थाप्य प्रणतिं चरेत् ॥ १९ ॥

पात्र को उठाकर और स्वयं खड़े होकर सिर से पैर तक आरती घुमाकर उस परमेश्वरी को प्रणाम करे॥ १९॥

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवि नवात्मिके।
आरार्त्तिकमिदं दिव्यं गृहाण मम सिद्धये॥ २०॥

(आरती करते समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ें—)

''समस्त चक्र चक्रेशी के साथ हे नवात्मिके देवि, यह दिव्य आरती मेरी सिद्धि के लिए स्वीकार करे''॥ २०॥

एवमारार्त्तिकं सर्वैर्दर्शनीयं प्रयत्नतः।
तज्ज्वालां तु स्पृशेद् देवि हस्ताभ्यां प्रणमेत्ततः॥ २१॥

इस तरह उस आरती का प्रयत्नपूर्वक सबको दर्शन करना चाहिए। हे देवि, दोनों हाथों से उस ज्वाला का स्पर्श करने के बाद प्रणाम करना चाहिए॥ २१॥

दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च दौर्भाग्यं पातकं चापि नाशयेत्।
ततो गुरुं चासनाद्यैरिष्ट्वा नत्वा च पात्रकम्॥ २२॥

देखकर और स्पर्श कर, दुर्भाग्य को और पाप को भी नष्ट करे, इसके बाद गुरु और आसनादि को पूजकर और पात्र को प्रणाम कर॥ २२॥

विशेषार्घ्यात् प्रदद्याद्वै गुरुश्चापि स्वयं ततः।
स्वात्मीकुर्याद् विधानेन सन्तर्प्य च यथाक्रमम्॥ २३॥

इसके बाद गुरु स्वयं विशेष अर्घ्य प्रदान करे, फिर अपना आत्मीकरण विधानपूर्वक करे और यथाक्रम तर्पण करे॥ २३॥

असान्निध्ये गुरूणां तु पूजयेत् तत्समान् शिवे।
गुरोः कनिष्ठाः स्वज्येष्ठास्तथा पुत्रादिका अपि॥ २४॥

गुरु की अनुपस्थिति में हे शिवे, उनके समान समादृत लोगों की पूजा करनी चाहिए। गुरु के कनिष्ठ, गुरुपुत्रादि एवं स्वज्येष्ठ भी समस्तरीय माने गये हैं॥ २४॥

प्रोक्ता गुरुसमास्तास्तु गुरुस्थाने प्रपूजयेत्।
गुर्वादिपूर्वपूर्वेषां पत्नी स्यात् सधवा यदि॥ २५॥

ऊपर कहे गये सब गुरु के समान हैं; अतः गुरु के अभाव में उनकी जगह पूजा करनी चाहिए, कहे गये गुरु आदि पूर्व पूर्वक्रम से, उनकी पत्नी भी यदि सधवा हो तो उसी तरह पूजनीया है॥ २५॥

स्वज्येष्ठा वा कनिष्ठा वा गुरुपूजां समर्हति।
गुरोर्ज्येष्ठः कनिष्ठो वा स्वावरो यदि योनितः॥ २६॥

अपनी बड़ी या छोटी गुरुपूजा के योग्य होती हैं। गुरु से ज्येष्ठ या कनिष्ठ अथवा उम्र की दृष्टि से अपने से छोटा या नीचा॥ २६॥

गुरुप्रतिनिधिर्नैव कदापि भवतीश्वरि ।
गुर्वादीनामभावे तु ध्यात्वा तान् स्वकलेवरे ॥ २७॥

हे ईश्वरि, ये कदापि गुरु के प्रतिनिधि नहीं हो सकते, गुरु आदि के अभाव में अपनी ही देह में गुरु का ध्यान करना चाहिए॥ २७॥

समर्प्य मनसा तस्य शेषबुद्ध्या हुनेत् स्वयम् ।
निर्वर्त्य श्रीक्रमं सम्यग् गुरवे शिवरूपिणे ॥ २८॥

मन से सब कुछ गुरु को समर्पित कर शेष बुद्धि से स्वयं हवन करे। गुरु, शिव के स्वरूप होते हैं, उनके लिए अच्छे ढंग से श्रीक्रम का स्वयं सारा कार्य सम्पन्न करे॥ २८॥

शक्त्यै च श्रीमहाराज्ञीरूपायै भक्तितोऽर्चयन् ।
बलिपात्रं प्रदद्याद्यस्तेन दत्तं न किं भवेत् ॥ २९॥

श्री महाराज्ञी स्वरूपा शक्ति के लिये भक्तिपूर्वक पूजा करते हुए बलिपात्र जो प्रदान करता है, इससे भला दाता ने क्या नहीं दिया?॥ २९॥

इष्टास्तेन मखाः सर्वे दत्ताश्चाखिलदक्षिणाः ।
स्वगुरूणां सन्निधौ तु यदि शिष्यः प्रपूजयेत् ॥ ३०॥

सारे यश उसे अभिमत होते हैं। यदि शिष्य गुरु के समीप हो तो गुरु के लिए उसके पास कुछ भी अदेय नहीं होता है॥ ३०॥

न स्वीकुर्यात् पूजनं वै गुरूणां सम्मुखे क्वचित् ।
तेषामाज्ञां विना देवि त्वन्यथा गुरुघातकः ॥ ३१॥

गुरु के सामने किसी के द्वारा की गयी पूजा स्वीकार नहीं करनी चाहिए जबतक गुरु की आज्ञा न हो। इसके विपरीत चलनेवाला व्यक्ति गुरुघातक होता है॥ ३१॥

ततः सुवासिनी पूज्या ध्यायेत् तां त्रिपुरामयीम् ।
सुवासिनीमसम्पूज्य पूजनं वै निरर्थकम् ॥ ३२॥

उसके बाद त्रिपुरामयी सुवासिनी की पूजा कर उनका ध्यान करे। ऐसा जो नहीं सुवासिनी को बिना पूजे सारे पूजन निरर्थक होते हैं॥ ३२॥

तस्माद् यथा कथञ्चिद् सम्पूज्यादौ सुवासिनी ।
श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता देवतोपासने रता ॥ ३३॥

अतः सर्वप्रथम यथाकथञ्चित् सुवासिनी को पूजकर श्रद्धा भक्ति समन्वित देवता की उपासना करे॥ ३३॥

शुद्धचित्ता दीक्षिता वै शक्तिः श्रेष्ठा सभर्तृका ।

असान्निध्ये सुवासिन्या मनसा तु यथाविधि।
सम्पूज्योद्दिश्य तां तत्र त्यजेद् द्रव्यं यथाविधि ॥ ३४॥

शुद्धचित्त और दीक्षित पति के साथ शक्ति श्रेष्ठ होती है। सुवासिनी का असामीप्य होने पर यथाविधि मन से उनका ध्यान कर, तन्निमित्तक उनकी पूजा कर, यथाविधि द्रव्य का त्याग करे॥ ३४॥

अलाभे तु सुवासिन्याः सर्वथा हिमशैलजे।
तद्रूपां देवतां ध्यात्वा पूजयित्वा यथाविधि ॥ ३५॥

हे पर्वतनन्दिनी, सुवासिनी की सर्वथा अनुपलब्धि पर तद्रूप देवता का ध्यान कर, यथाविधि उनकी पूजा कर॥ ३५॥

सन्तर्प्य चाष्टवारं तु शेषं भाव्य हुनेत् स्वयम्।
शक्तिपूजाविधाने तु दीक्षावत्युत्तमा स्मृता ॥ ३६॥

आठ बार तर्पण कर, होनेवाले अवशेष से स्वयं हवन करे। भक्तिपूजा के विधान में दीक्षावती नारी उत्तमा कही गई है॥ ३६॥

सर्वलक्षणहीनापि दीक्षायुक्ता प्रशस्यते।
अभावे केवलं मन्त्रवती पूज्या महेश्वरि ॥ ३७॥

सभी लक्षणों से हीन रहने पर दीक्षाप्राप्त नारी प्रशंसनीया या उत्तमा होती है। हे महेश्वरी इनके अभाव में मन्त्रवती पूज्या होती है॥ ३७॥

सापि चेल्लभ्यते नैव तदा पूज्या हि केवला।
तां तु संस्कृत्यैव सद्यः पूजयेत्तद्विधिं शृणु ॥ ३८॥

कदाचित् वह भी अनुपलब्ध हो जाय तो सामान्या भी पूजनीया होती है। ऐसी सामान्य नारी को भी सुसंस्कृत कर पूजे, उसकी विधि सुनो॥ ३८॥

मूलेन शङ्खतोयेन प्रोक्ष्य तस्याः स्तनौ न्यसेत्।
मूर्ध्न्यास्ये हृदये नाभौ श्रियं तत्त्वत्रयं क्रमात् ॥ ३९॥

मूलमंत्र पढ़ते हुए शङ्ख जल से उसके दोनों स्तनों को पोंछकर, माथे, मुख, हृदय, नाभि पर लक्ष्मी एवं तत्त्वत्रय का न्यास करे॥ ३९॥

प्रजपेद् दक्षकर्णे तु सकृत्तस्याः श्रियं शिवे।
सुवासिनीं पूजयेत्तु यथाशक्त्युपचारकैः ॥ ४०॥

हे शिवे, उसके दाहिने कान में 'श्री' मन्त्र का एक बार जप करे। इसके बाद यथाशक्ति उपचारों से सुवासिनी की पूजा करे॥ ४०॥

प्रदर्श्य मुद्रास्त्वखिला दद्यात् पात्राणि पूर्ववत्।
"बलिपात्रमिदं तुभ्यं दीयते पिशितान्वितम् ॥ ४१॥

फिर, सारी मुद्राओं का प्रदर्शन कर, पूर्ववत् बलिपात्र समर्पित करे। फिर यह कहे—''मांसमिश्रित यह बलिपात्र मैं तुम्हें समर्पित करता हूँ।''॥ ४१ ॥

स्वीकृत्य सुभगे देवि श्रियं देहि रिपून् दह''।
एवं प्रार्थ्य प्रदद्यात् तु पात्रं तस्यै तया ततः ॥ ४२॥

हे सुभगे, हे देवि, हमारा बलिपात्र स्वीकार कर, हमें लक्ष्मी दो, हमारे दुश्मनों को जला। इस तरह प्रार्थना कर, उन्हें बलिपात्र भेंट करे। फिर उससे॥ ४२ ॥

तत्त्वत्रयं विधानेन हुत्वा तुर्यं सशेषकम्।
पीतशेषं प्रदास्यामि वत्स तुभ्यं सुधारसम् ॥ ४३॥

तीनों तत्त्व को विधान से हवन कर चतुर्थ हुत शेष जो बचा है, उनमें से हे वत्स, सुधारसमय पीतशेष मैं तुम्हें दूँगा॥ ४३ ॥

तव शत्रून् हनिष्यामि दास्यामि परमां श्रियम्।
दद्यादाचार्याय चैवं हुनेत् सोऽपि तदात्मनि ॥ ४४॥

तुम्हारे शत्रुओं को मार डालूँगा, तुम्हें परम लक्ष्मी प्रदान करूँगा। इसी तरह आचार्य के लिए भी प्रदान करे; अपनी आत्मा में वह इस तरह हवन करे॥ ४४॥

समवाये बहूनां तु एकत्रैवोत्तमे शिवे।
गुरुपूजां शक्तिपूजां कुर्यान्न त्वखिलेष्वपि ॥ ४५॥

हे शिवे, यदि एक ही स्थान पर उत्कृष्ट कोटि के बहुत लोग जुट जायँ तो उनमें एकमात्र शक्तिस्वरूप गुरु की ही पूजा करनी चाहिए, न कि सबकी॥ ४५ ॥

ततः सामयिकानिष्ट्वा दद्यात् पात्राणि हेतुतः।
स्वात्मीकारविधानेन सर्वैर्होतव्यमद्रिजे ॥ ४६॥

इसके बाद हे पार्वति, यथावसर किसी कारणविशेष से **एक स्थान पर उपस्थित अनेक सुपात्रों की पूजा** कर स्वात्मीकार विधान से सबकी पूजा करे॥ ४६ ॥

सर्वे वर्णा ब्राह्मणाद्याः सधवा विधवाः स्त्रियः।
कुलटाश्च तथा वेश्या मान्याः पूज्यास्तथेश्वरि ॥ ४७॥

ब्राह्मणादि सब वर्ण, सधवा एवं विधवा स्त्रियाँ, हे महेश्वरि, वे वेश्या हों या कुलटा, सब ही मान्या एवं पूज्या हैं॥ ४७॥

मण्डले शिष्यभूताश्च नावमान्याः कदाचन।
सर्वान् सम्पूजयेन्मानपूर्वकं देवताधिया ॥ ४८॥

मण्डल में जो शिष्यभूत हैं उनकी अवहेलना या अवमानना कभी नहीं करनी चाहिए। उन की देवताबुद्धि से सम्मानपूर्वक पूजा करनी चाहिए॥ ४८ ॥

एवं सामयिकानिष्ट्वा प्रदद्यात् कुसुमाञ्जलिम्।

ततः कामकलां ध्यायन् जपं कुर्याद् विशेषतः ॥ ४९॥

इस प्रकार सामयिकों को पूजाकर, पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। इसके बाद **कामकला का ध्यान** करते हुए, विशेष जप करना चाहिए॥ ४९॥

अत्रैकधा जपस्यापि फलानन्त्यं समीरितम् ।
तस्मादालस्यरहितो यथाशक्त्या जपं चरेत् ॥ ५०॥

एक बार जप का भी अनन्त फल कहा गया है। अतः आलस्य छोड़कर यथाशक्ति जप करना चाहिए॥ ५०॥

ततः शेषोपचारांस्तु कृत्वा पूजां समर्पयेत् ।
इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः ॥ ५१॥

इसके बाद बचे उपचारों को पूरा कर, **पूजा समर्पित** करे। इससे पूर्व प्राण, बुद्धि और देहधर्म के अधिकार से॥ ५१॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु वै मनसा वाचा ।
कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण च वै शिश्ना ॥ ५२॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में, मन वचन और कर्म से, हाथों, पैरों, पेट और शिश्न से॥ ५२॥

यत्स्मृतं च यदुक्तं च यत्कृतं च तत्सर्वं श्री ।
गुरुदेवतासमर्पितमस्तु च शिरश्च माम् ॥ ५३॥

जो स्मृत है, जो कुछ मैंने कहा, जो भी कुछ किया, वे सब श्रीगुरु देवता के लिए समर्पित है, और मेरा शिर भी॥ ५३॥

मदीयं सकलं चैव त्रिपुरायै समर्पये ।
ॐ तत्सदिति वै जप्त्वा सामान्यार्घ्यात् समर्पयेत् ॥ ५४॥

मेरा जो कुछ है त्रिपुरा के लिए समर्पित है, ''ॐ तत्सत्'' यह जपकर सामान्य अर्घ्य समर्पित करना चाहिए॥ ५४॥

'साधु चासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया ।
तत्सर्वं कृपया देवि गृहाणाराधनं मम' ॥ ५५॥

उचित वा अनुचित कर्म जो कुछ भी मैंने किया वे सब हे देवि, कृपया मेरी वे सारी आराधनायें आप स्वीकार करो॥ ५५॥

इति शङ्खं देवताग्रे त्रिः परिभ्राम्य शैलजे ।
तेनोदकेन देवीं स्वं सामयिकांश्च प्रोक्षयेत् ॥ ५६॥

हे पार्वति, शङ्ख में जल भरकर, देवता के आगे तीन बार घुमाकर उसी शङ्ख जल से देवी को, अपने आपको तथा सामयिकों को प्रोक्षित करे॥ ५६॥

ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सर्वावरणसंयुताम् ।
तेजोमयीं तु सन्ध्यायन् मुद्राः षोडश दर्शयन् ॥ ५७ ॥

उसके बाद सब आवरणों से युक्त पुष्पाञ्जलि देकर उस तेजोमयी देवी का अच्छे ढंग से ध्यान करते हुए सोलह मुद्राओं का प्रदर्शन करते हुए॥ ५७॥

जप्त्वा मूलं यथाशक्त्या समर्प्याथो प्रदर्शयेत् ।
संहारमुद्रां तेनैव ग्राह्यं यन्त्रस्थ-पुष्पकम् ॥ ५८ ॥

यथाशक्ति मूलमन्त्र का जपकर देवी को जप समर्पित कर संहार मुद्रा प्रदर्शित करे, फिर उसी मुद्रा से यन्त्रस्थ फूल ग्रहण करना चाहिए॥ ५८॥

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयो देवाः न विदुः परमं पदम् ॥ ५९ ॥

हे परमेश्वरि, जाओ, अपने परम स्थान को, ऐसी अपनी जगह जाओ जिसके बारे में ब्रह्मादि देवता भी नहीं जानते॥ ५९॥

आघ्राय कुसुमं तेन तेजसा सहितं ततः ।
मूर्ध्नि तेजोमयं प्राप्य हृदि देवीं समर्चयन् ॥ ६० ॥

उस पुष्प को सूँघकर, उस तेज के साथ तेजोमय शिर पाकर, हृदय में उस देवी की पूजा करते हुए॥ ६०॥

मूलाधारे कुण्डलिनीं ध्यायन् निश्चलमानसः ।
आत्मानं तन्मयं ध्यात्वा उच्छिष्टबलिमाहरेत् ॥ ६१ ॥

निश्चल मन से मूलाधार में कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए तन्मय अपनी आत्मा का ध्यान कर उच्छिष्ट बलि का आहरण करे॥ ६१॥

शान्तिस्तवं पठित्वाऽथ प्रार्थयेच्छ्रीगुरुं शिवम् ।
'देव नाथगुरो स्वामिन् देशिक स्वात्मनायक ॥ ६२ ॥

इसके बाद शान्ति-स्तव का पाठ कर, शिवरूप गुरु की प्रार्थना करे—''हे देव, हे नाथगुरु, हे स्वामिन्, हे आध्यात्मिक गुरु एवं हे आत्मनायक॥ ६२॥

त्रायस्व मां कृपासिन्धो पूजां पूर्णतरां कुरु ।
उत्थाप्य तु विशेषार्घ्यं तर्पयेन्मूर्ध्नि वै गुरून्' ॥ ६३ ॥

हे कृपासिन्धो मेरी रक्षा करो, मेरी पूजा पूर्णतर करो''। फिर विशेष अर्घ्यपात्र को उठाकर गुरु के शिर का तर्पण करे॥ ६३॥

स्वाहान्तां पादुकां मूलां पठन् स्वात्मनि तद्धुनेत् ।
शेषं शिष्याय भक्ताय प्रदद्यात् तु प्रियाय वै ॥ ६४ ॥

स्वाहान्त पादुकामूल का पाठ करते हुए अपनी आत्मा में उसका हवन करे, शेष, अपने शिष्य, भक्त और प्रिय को दे दे॥ ६४॥

एतन्न देयमप्राप्तषोडशीकाय सर्वथा ।
यद्यनेके प्रियाः शिष्या दत्त्वा ज्येष्ठाय वै गुरुः ॥ ६५॥

सोलह साल से छोटी को यह नहीं देना चाहिए। अपने अनेक प्रिय और शिष्य होने पर अपने बड़े गुरु को दे कर॥ ६५॥

आज्ञापयेत्तु सर्वांस्तान् क्रमेण नगकन्यके ।
सन्तोष्य श्रीगुरुं यस्तु विशेषार्घ्यस्य शेषकम् ॥ ६६॥

हे पर्वतपुत्रि, क्रमशः उन सबको आज्ञापित करे, विशेषार्घ्य के शेष से जो श्रीगुरु को सन्तुष्ट कर॥ ६६॥

गुरोरासाद्य जुहुयात् तस्यानन्त्यफलं भवेत् ।
सहस्त्रधा सोमपानफलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ६७॥

गुरु को प्राप्त कर जो हवन करता है; उसका उसे अनन्त फल मिलता है। सहस्रवार सोमपान का फल निश्चित रूप से उसे मिलता है॥ ६७॥

मार्तण्डभैरवायार्घ्यं दत्त्वा पुष्पोदकादिभिः ।
प्राणायामं त्रिधा कृत्वा त्रिपुरां हृदि संस्मरन् ॥ ६८॥

मार्त्तण्डभैरव के लिए अर्घ्य देकर, जल फूल से उन्हें सन्तुष्ट करे। हृदय में त्रिपुरा का स्मरण करते हुए तीन बार प्राणायाम कर॥ ६८॥

विन्यस्य कामबीजेन निर्माल्यं मूर्ध्नि धारयेत् ।
भुक्त्वा सामयिकैः सार्धं विहरेद् देवतात्मकः ।
एतत् सर्वं मयोद्दिष्टं यत्त्वया प्रविवक्षितम् ॥ ६९॥

कामबीज का विन्यास कर शिर पर निर्माल्य धारण करे। सामयिक अर्थात् स्थानीय लोगों के साथ भोजन कर वह देवता के रूप में विचरण करे। तुमने जो पूछा, उसका उत्तर हे पार्वति, मैंने तुम्हें दे दिया॥ ६९॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे पूजोत्तरविधिर्नाम त्रयोदशस्तरङ्गः ॥ १३॥

इस प्रकार त्रिपुरार्णवस्थ (त्रिपुरासारसर्वस्व) पूजोत्तरविधि नामक
तेरहवाँ तरङ्ग पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशस्तरङ्गः

(स्वात्मीकारविधि-कौलिकधर्मादयः)

गौर्युवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि स्वात्मीकारविधिं स्फुटम् ।
कौलिकानां तथा धर्मं मण्डलस्य च सर्वशः ॥ १ ॥

गौरी ने कहा—

हे भगवन्, मैं स्वात्मीकारविधि, कौलिकों के धर्म तथा मण्डल का विधान सुनना चाहती हूँ॥ १॥

महादेव उवाच

महेश्वरि प्रवक्ष्यामि स्वात्मीकारादिकं क्रमात् ।
सम्यक् तु निर्णयेनैव सावधानेन तच्छृणु ॥ २ ॥

महादेव ने कहा—

हे महेश्वरि, स्वात्मीकारादि के सन्दर्भ में क्रमशः मैं तुम्हें बतलाता हूँ, तुम सुनो। उन्हें तुम अच्छी तरह निश्चयपूर्वक सावधान होकर सुनो॥ २॥

स्नातः शुचिः सुवासाश्च सपुण्ड्रः ससुसाधनः ।
सुचित्तो भावभक्तिश्च विशेन्नम्रस्तु मण्डले ॥ ३ ॥

स्नान कर, पवित्र होकर, सुन्दर पोशाक पहन कर, शिर पर साम्प्रदायिक चिह्नस्वरूप तिलक लगाकर, सुन्दर साधनों के साथ, स्थिरचित्त, भावभक्तियुक्त विनम्र होकर मण्डल में बैठना चाहिए॥ ३॥

अभुक्तश्चाप्रावृत-मूर्धानुष्णीषस्त्वपूजितः ।
अतर्कितो दिवा भुक्तो यदा रात्रौ समागतः ॥ ४ ॥

बिना भोजन किये, खुले माथे, अपूजित शिरोवेष्टन, अप्रत्याशित रूप से दिन में भोजन किये जब रात में आये॥ ४॥

तदा गुर्वाद्याज्ञया तु स्नात्वा सेवेत नान्यथा ।
भुक्त्वा न मण्डले गच्छेत् सर्वथा परमेश्वरि ॥ ५ ॥

तो गुरु आदि की आज्ञा से स्नानादि से निवृत्त होकर सेवन करना चाहिए, अन्यथा नहीं। हे परमेश्वरि, भोजनोपरान्त मण्डल में नहीं जाना चाहिए॥ ५॥

पूजागृहाद् बहिः स्थित्वा देवतादर्शनं चरेत् ।
कुलद्रव्यं तथा भुक्त्वा मोहाद् वापि प्रमादतः ॥ ६ ॥

पूजागृह से बाहर ही उपस्थित होकर देवदर्शन करना चाहिए। मोह से भ्रमवश कुलद्रव्य का बोजन के बाद सेवन न करे॥ ६॥

यः सेवेत स वै देवि देवताशापमाप्नुयात् ।
फलाद्यभ्यवहारस्तु न शक्तानां कदाचन ॥ ७ ॥

इस तरह कुलद्रव्य का जो सेवन करता है, हे देवि! वह देवता के शाप का भाजन होता है। समर्थ व्यक्ति को फलादि का भोजन कदापि नहीं करना चाहिए॥ ७॥

व्रतोक्तफलहारादिरशक्तातुरयोर्भवेत् ।
एवं सामयिको भक्त्या मानस्तम्भविवर्जितः ॥ ८ ॥

''फलग्रहण से व्रतभङ्ग नहीं होता''—यह कथन अशक्त एवं आतुरों के लिए ही कहा गया है, अतः ऐसा मानस्तम्भ छोड़कर भक्तिपूर्वक सामयिकों को करना चाहिए॥ ८॥

अनाहूतोऽपि चाहूतो व्रजेन्मण्डलमुत्तमम् ।
प्रविश्यैवं गन्धपुष्पाक्षतैः सम्पूज्य संविशेत् ॥ ९ ॥

बुलाये जाने पर या बिना बुलाये भी उत्तम मण्डल में जाना चाहिए। इस तरह मण्डल में प्रवेश कर गन्ध-पुष्प और अक्षत से पूजा कर प्रवेश करना चाहिए॥ ९॥

स्त्रीभिश्च पुरुषैश्चापि न स्थेयं मिलितैः शिवे ।
स्पर्शादिहेतुना कामक्रोधाद्युद्भवहेतुतः ॥ १० ॥

हे शिवे, पुरुष नारी को परस्पर एक दूसरे के साथ मण्डल में नहीं बैठना चाहिए। क्योंकि स्पर्श आदि दोष से काम और क्रोध आदि उत्पत्ति की संभावना होती है॥ १०॥

पृथक्स्थानस्थितास्तस्मात् स्त्रियश्च पुरुषा अपि ।
न स्त्रीषु पुरुषस्तिष्ठेन्न स्त्री पुरुषमध्यगा ॥ ११ ॥

अतः पुरुषों और स्त्रियों को अलग अलग स्थान में बैठना चाहिए। स्त्रियों के बीच पुरुष को और पुरुषों के बीच स्त्री को कदापि नहीं बैठना चाहिए॥ ११॥

भूमौ समाविश्य कर्म विधिनाऽपि कृतं शिवे ।
तन्निरर्थकतामेति भिन्नकुम्भस्थ-तोयवत् ॥ १२ ॥

फूटे घड़े में पानी की तरह, धरती पर बैठकर विधिवत् किये गये कर्म, हे शिवे, निरर्थक होते हैं॥ १२॥

अतस्त्वासनगो भूयादाचार्यस्तान् प्रपूजयेत् ।
वर्णविद्याक्रमज्येष्ठान् पूजयेत् पृथगास्थितान् ॥ १३ ॥

अतः आसन पर बैठकर आचार्य की पूजा करे। फिर वहाँ उपस्थित वर्ण, विद्या, क्रम में बड़े लोगों की, जो अलग अलग आसन पर बैठे हों, क्रमशः पूजा करे॥ १३॥

सर्वान् सम्पूज्य पात्राणि दद्याज्ज्येष्ठक्रमेण तु ।
असम्पूज्य शिष्यमपि यो दद्यात् पात्रमम्बिके ॥ १४॥

ज्येष्ठ क्रम से सबकी पूजा कर, हे अम्बिके सबको पात्र प्रदान करे। शिष्य को भी पूजा किये बिना जो पात्र प्रदान करता है॥ १४॥

तस्मै कुप्यति सा देवी यस्मात् सर्वं हि तन्मयम् ।
अदीक्षितोऽपि संन्यासी वनी पूज्योऽग्रतः शिवे ॥ १५॥

हे शिवे, उस पर वह देवी प्रकुपित होती हैं। क्योंकि, सामने उपस्थित अदीक्षित व्यक्ति भी, संन्यासी और बनवासी सबके सब पूजनीय होते हैं॥ १५॥

कौलिको यदि संन्यासी तस्योपास्तिविधिं शृणु ।
सन्ध्या-जपादिकं सर्वं कर्तव्यं प्रोक्तवर्त्मना ॥ १६॥

कौलिक यदि संन्यासी हो तो उसकी उपासना की विधि सुनो। पहले बतलाये गये ढंग से संध्या एवं जपादि कर्म करना चाहिए॥ १६॥

पूजां तु कुर्याद् बाह्यां वा मानसीं वाऽनुकूलतः ।
आश्रम-त्रितयस्थं तु गुरुं न प्रणमेद् बहिः ॥ १७॥

पूजा बाहरी करे वा मानसिक अथवा उसके अनुकूल जो हो वह करे; तीनों आश्रम में स्थित गुरु को बाहरी प्रणाम नहीं करना चाहिए॥ १७॥

तथाश्रमकनिष्ठं च मनसैव नमेत् सदा ।
उच्छिष्टमपि नो ग्राह्यं पादयोर्न च तर्पयेत् ॥ १८॥

तथा आश्रम में जो छोटे हों उन्हें सदा मन से ही नमस्कार करना चाहिए। इसी तरह किसी का उच्छिष्ट भी ग्रहण नहीं करना चाहिए और न पैरों का तर्पण करे॥ १८॥

कुमारी-शक्ति-शेषं तु स्वीकुर्याद् यत्नतो यतिः ।
गुरुपत्न्याश्च मातुश्च नान्यासां तु कदाचन ॥ १९॥

संन्यासी प्रयासपूर्वक कुमारी कन्या का शक्तिशेष स्वीकार करे। गुरु की पत्नी और अपनी माता का न कि किसी अन्य नारी का कदापि शक्तिशेष स्वीकार करे॥ १९॥

असंन्यासी गुरुरपि शिष्यं तं प्रणमेत् सदा ।
नारायणात्मकं मत्वा तेन दोषो न चोभयोः ॥ २०॥

जो संन्यासी नहीं है ऐसे गुरु भी शिष्य को तथा वे उनको प्रणाम करे, उन्हें नारायण का स्वरूप मानकर ऐसा करने पर उन्हें कोई दोष नहीं लगता॥ २०॥

चतुर्थाश्रमसंस्थस्तु गुरुर्ज्येष्ठो यदि स्वतः ।
कर्तव्यस्तु प्रणामो वै तर्पणं चापि चर्वणम् ॥ २१॥

संन्यासाश्रम में रहते हुए भी गुरु यदि स्वतः श्रेष्ठ हैं तो उन्हें निश्चित रूप से प्रणाम करना चाहिए तर्पण एवं चर्वण भी करना चाहिए॥ २१॥

अदीक्षितं कनिष्ठं वा पित्रादिं पूजयेत् पुरः।
विद्या-सम्बन्धतो योनि-सम्बन्धः प्रबलो यतः॥ २२॥

दीक्षारहित हों, छोटे हों या पिता प्रभृति व्यक्ति सामने हों तो उनकी पूजा अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि, विद्या-सम्बन्ध से योनि-सम्बन्ध प्रबल होता है॥ २२॥

प्रसङ्गात् पूजितश्चादौ स्वात्मीकाराय सर्वथा।
प्रतीक्षेत् स्वात्मनो ज्येष्ठानन्यथा पतितो भवेत्॥ २३॥

पहले प्रसङ्गवश यदि स्वात्मीकार के लिये पूजित हो तो अपने से बड़ों की पूजा के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए, अन्यथा पतित होने की संभावना होती है॥ २३॥

विशेषार्घ्यात्तु शक्तीनां वीराणां हेतुपात्रतः।
अन्यथा पात्रदानात् तु देवताशापमाप्नुयात्॥ २४॥

विशेष अर्घपात्र से शक्तियों की, हेतुपात्र से वीरों की अभ्यर्थना करनी चाहिए। अन्यथा पात्रदान से देवताओं का शाप मिलता है॥ २४॥

विशेषार्घ्याच्छक्तिशेषं वीरशेषं च हेतुतः।
स्वीकुर्वन्नैव दुष्येत वीरः शक्तिरपीश्वरि॥ २५॥

विशेष अर्घ्य से शक्तिशेष को और हेतु से वीरशेष को जो स्वीकार करते हैं, हे परमेश्वरि, न तो वीर दूषित होते हैं और न शक्तिशेष ही॥ २५॥

ग्राह्यं पात्रं दक्षकरे दीक्षावद्भिर्नरैः शिवे।
अन्यैर्वामेन हस्तेन ग्राह्यमेवं विनिर्णयः॥ २६॥

हे शिवे, दीक्षावान् पुरुषोंको दाहिने हाथ से पात्रों को ग्रहण करना चाहिए तथा अशिक्षितों को बायें हाथ से—यही विनिर्णय है॥ २६॥

एवं समुपविश्यैव तर्पयेन्मूर्ध्नि वै गुरून्।
देवतां हृदये तद्वदात्मानं मूलपङ्कज॥ २७॥

इस तरह बैठकर ही गुरुओं का माथे पर तर्पण करे, देवताओं का हृदय में उसी तरह अपने आप का चरण कमलों में तर्पण करे॥ २७॥

हुनेत् कुण्डलिनीवह्नौ द्रव्यशेषं समन्त्रकम्।
देवतातुष्टये तद्वन्महाफलसमाप्तये॥ २८॥

कुण्डलिनी रूपी अग्नि में मन्त्र के साथ द्रव्यशेष के साथ हवन करे, देवताओं की तुष्टि के लिए और उसी तरह महाफल की समाप्ति के लिए हवन करे॥ २८॥

पूजादिकमकृत्वा वा स्वीयं सामयिकार्चने।

व्रती वापि हुनेदेव न दोषस्तत्र विद्यते ॥ २९ ॥

पूजादि किये बिना ही अपनी या सामयिक अर्चन या व्रती के हवन करने पर कोई दोष नहीं लगता ॥ २९ ॥

व्रतादिशङ्कया यस्तु न व्रजेदाहूतोऽपि सन् ।
व्रतं तस्य प्रतिहतमनर्थं च समाप्नुयात् ॥ ३० ॥

व्रतादि की आशङ्का से बुलाने पर भी वहाँ न जाय, उसका व्रत तो विनष्ट होता ही है, उसे अनिष्ट भी होता है ॥ ३० ॥

तस्मात् कनिष्ठाहूतोऽपि प्रविशेदेव मण्डले ।
गुरूणां सन्निधौ तत्तन्मन्त्रैर्नामयुतैः शिवे ॥ ३१ ॥

अतः अपने से छोटे के बुलाने पर भी मण्डल में अवश्य जाना चाहिए। गुरु के समीप में हे शिवे, नामयुक्त उन मन्त्रों से अभिहित होना चाहिए ॥ ३१ ॥

चरणे परमेष्ठ्यादींस्तर्पयेत् पूजयेदपि ।
अदीक्षितानां देवेशि गुर्वादिक्रमतस्तथा ॥ ३२ ॥

चरण में परमेष्ठ्यादि का तर्पण करना चाहिए, पूजन भी। हे देवेशि, दीक्षाविहीन लोगों के लिए वैसा ही गुरु आदि का क्रम कहा गया है ॥ ३२ ॥

तर्पणं मस्तके प्रोक्तं न गुर्वाद्यङ्घ्रिपङ्कजे ।
स्वगुरून् सन्तर्प्य पश्चाच्छिष्यैस्तर्पणमाददेत् ॥ ३३ ॥

तर्पण मस्तक पर ही कहा गया है, न कि गुरु आदि के चरणकमलों में। अपने गुरु को संतुष्ट कर पीछे शिष्यादि का तर्पण करे ॥ ३३ ॥

असन्तर्प्य गुरून् स्वीयान् क्रमेण परमेश्वरि ।
न पात्रं नापि पूजां वा स्वीकुर्यादपि वै गुरुः ॥ ३४ ॥

हे परमेश्वरि, अपने गुरु को बिना सन्तुष्ट किये क्रमभङ्ग के कारण, गुरु को न तो पात्र और न पूजा ही स्वीकार करना चाहिए ॥ ३४ ॥

एवं गुरूँस्तु चरणे पादुकां मूर्ध्नि तर्पयेत् ।
गुरूँस्तत्र शिवादीन् वा नवमाद्यानथ त्रयम् ॥ ३५ ॥

इस तरह गुरुचरण की पादुका का तर्पण शिर पर करे। यहाँ गुरु से तात्पर्य शिवादि अथवा नवमादित्रय से हैं ॥ ३५ ॥

हृदि त्रिकोणवद् देवीर्महामाहेश्वरीमुखाः ।
अष्टोत्तरशतं मूलमात्मानं चात्मविद्यया ॥ ३६ ॥

हृदय में त्रिकोण की तरह देवी महामाहेश्वरी प्रमुख का ध्यान कर अपनी आत्मविद्या से आत्मा को पूजकर एक सौ आठ बार मूलमन्त्र का जप करे ॥ ३६ ॥

समर्च्य ओघान् स्वे मूर्ध्नि हृद्याम्नायानपीश्वरि ।
तत उत्थाय देवेशि भक्तिभावेन संयुतः ॥ ३७॥

हे देवि! अपने माथे पर सबकी अभ्यर्थना कर, हे ईश्वरी, हृदय में आम्नायों की भी पूजा कर, भक्तिभाव से उठकर॥ ३७॥

शक्तिशेषं गुरूणां च शेषं ग्राह्यमथापि वा ।
वीराज्ज्येष्ठात् तथाचार्याद् ग्राह्यं शेषं तु चर्वणम् ॥ ३८॥

शक्तिशेष गुरुओं का शेष ग्राह्य होता है। वीर से अपने से बड़ों के तथा आचार्य के शेष ग्राह्य एवं चर्वण योग्य होते हैं॥ ३८॥

तदभावेऽपि चान्यस्माज्ज्येष्ठाद् ग्राह्यं हिमाद्रिजे ।
कथञ्चिदादौ तु गुरोरगृहीते तु शेषके ॥ ३९॥

हे हिमालय पुत्रि, इनके अभाव में किन्हीं अन्य ज्येष्ठ का शेष ग्रहण करना चाहिए। गुरु के शेष ग्रहण करने के पूर्व प्रारम्भ में भी ग्रहण कर लेना चाहिए॥ ३९॥

सर्वान्ते वा गुरोः शेषो ग्राह्य एव नगात्मजे ।
आज्ञां होष्यामीति ततः प्रार्थयेत् पात्रहस्तकः ॥ ४०॥

हे पर्वतपुत्रि, अथवा सबके अन्त में ही गुरु का शेष ग्राह्य होता है। पुनः हाथों में पात्र लेकर 'हवन करूँगा'—इसकी आज्ञा के लिए गुरु से प्रार्थना करनी चाहिए॥ ४०॥

प्रार्थनं चाभ्यनुज्ञानं ज्येष्ठेषूत्थाय वै भवेत् ।
अन्यथा चाप्यवज्ञानाद् देवताशापमाप्नुयात् ॥ ४१॥

प्रार्थना और आज्ञा दोनों ही अपनों से बड़ों के सम्मुख उठ कर से प्राप्त करनी चाहिए अन्यथा, इनकी अवज्ञा से देवता प्रकुपित होते हैं॥ ४१॥

आचार्यमेवाद्रिकन्ये कनिष्ठमपि प्रार्थयेत् ।
त्रिखण्डं मातृकायास्तु अकथाद्यं यथाक्रमात् ॥ ४२॥

हे पार्वति, आचार्य ही छोटे की भी प्रार्थना करे, मातृका के त्रिखण्ड को भी यथाक्रम से कहे॥ ४२॥

आत्मविद्या शिवाख्यं च तत्त्वं तत्तत्समूहकम् ।
प्रकृत्याद्यं च मायाद्यं शिवाद्यं त्रितयं तथा ॥ ४३॥

आत्मविद्या, जो शिवनाम से ख्यात है और तत्त्व एवं उनका समूह तथा प्रकृत्याद्य, मायाद्य, शिवाद्य—ये त्रितय॥ ४३॥

शरीराणां स्थूलसूक्ष्मकारणानां तथा त्रयम् ।
ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपग्रन्थीनामगदेहजे ॥ ४४॥

शरीरों के स्थूल, सूक्ष्म कारणों का तथा तीनों ब्रह्म-विष्णु एवं रुद्ररूप ग्रंथियों का ॥ ४४ ॥

मिथुनत्रितयं वाणीवल्लभौ श्रीहरी तथा।
विद्याशङ्कररूपौ च त्रितयं हेतु-संस्तुतेः ॥ ४५ ॥

ये तीन जोड़े वाणी-वल्लभ, लक्ष्मी-नारायण, विद्याशङ्कर तीनों हेतु संस्तुति के ॥ ४५ ॥

मूलबीजत्रयं तत्तत्क्रमेण तु विशेषितम्।
ब्रह्मविष्णुपशुपतिभ्यो हुनेद् वह्निशक्तितः ॥ ४६ ॥

तीनों मूलबीज को उनके क्रम से विशेषित कर शक्तिपूर्वक अग्नि में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के लिए हवन करे ॥ ४६ ॥

मूलमध्यशिखारूप-कुण्डल्यग्नौ शिवात्मके।
एवं पात्रत्रयं हुत्वा पात्रं प्रक्षालयेत् सुधीः ॥ ४७ ॥

मूल, मध्य और शिखारूप, शिवात्मक कुण्डली की आग में इस तरह तीनों पात्रों का हवन कर, सुधीजन पात्रों का प्रक्षालन करे ॥ ४७ ॥

तत्त्वत्रयान्तरे यस्तु पात्रं पाणिद्वयं तथा।
क्षालयेदनिमित्तेन तस्य कर्म निरर्थकम् ॥ ४८ ॥

लगातार तीनों तत्त्वों में जो व्यक्ति अकारण पात्र का या दोनों हाथों का प्रक्षालन करता है, उसके किये गये सारे कर्म निरर्थक होते हैं ॥ ४८ ॥

सदाशिवाय च ततः समष्ट्या तुर्य-पात्रकम्।
हुताऽन्ते क्षालितेनैव पूर्णपात्रं हुनेच्छिवे ॥ ४९ ॥

इसके बाद समष्टि से एक चौथाई पात्र का सदाशिव निमित्तक हवन कर, अन्त में हे शिवे! क्षालित पूर्ण पात्र का हवन करे ॥ ४९ ॥

हिरण्यपात्रमन्त्रेण ततः प्रक्षाल्य शङ्करि।
शक्त्या स्वर्णादिसंयुक्तमर्पयेत् पात्रमम्बिके ॥ ५० ॥

हे शङ्करि! मन्त्र पढ़कर हिरण्यपात्र को धोकर शक्ति के अनुसार उस पात्र में सोना डालकर अर्पित करे ॥ ५० ॥

यत्किञ्चिद्वापि पात्रस्थं दत्त्वाऽनन्तफलं भवेत्।
सुवासिन्या कुमार्या च त्रितत्त्वान्ते महेश्वरि ॥ ५१ ॥

उस पात्र में जो कुछ भी दिया जाता है उसका अनन्त फल मिलता है। हे महेश्वरि, त्रितत्त्वान्त में कुमारी एवं सुवासिनी की पूजा करनी चाहिए ॥ ५१ ॥

आचार्याय प्रदातव्यं सावशेषं हि पात्रकम्।
एवं प्रोक्तविधानेन हुत्वा पात्राणि वै क्रमात् ॥ ५२ ॥

बचे पात्रों को आचार्य के लिये देना चाहिए। इस तरह कहे गये विधानों के साथ क्रमशः पात्रों का हवन कर॥ ५२॥

उच्छिष्टं तु समादेयं हेत्वादेर्ज्ज्येष्ठतः क्रमात्।
विद्यासम्बन्धतो वापि योनिसम्बन्धतस्तथा॥ ५३॥

विद्यासम्बन्ध से अथवा योनिसम्बन्ध से ज्येष्ठ का क्रमशः उच्छिष्ट (जूठा) समादेय होता है॥ ५३॥

ज्येष्ठानामपि चोच्छिष्टं दीक्षितानां तु भक्षयेत्।
पूर्वं दीक्षायुतो ज्येष्ठो महादीक्षायुतश्च वै॥ ५४॥

और, ज्येष्ठों का भी उच्छिष्ट (जूठा) दीक्षितों को खाना चाहिए। पहले जो दीक्षा लिये है वह ज्येष्ठ होता है। वह महादीक्षायुक्त कहलाता है॥ ५४॥

नान्ये ज्येष्ठाः समाख्याता वयो-विद्या-विशेषतः।
वयोहीनं योनिमात्रज्येष्ठं च परिवर्जयेत्॥ ५५॥

आय एवं विद्या विशिष्ट दूसरा कोई ज्येष्ठ नहीं कहलाता। वयोहीन योनिमात्र ज्येष्ठ का परित्याग कर देना चाहिए॥ ५५॥

दीक्षाहीनस्य चोच्छिष्टं जनकस्यापि दीक्षितः।
न भक्षयेत् सकृद्वापि भुक्त्वा पातित्यमाप्नुयात्॥ ५६॥

दीक्षित पुत्र को अपने अदीक्षित पिता का भी जूठा नहीं खाना चाहिए। ऐसे पिता का थोड़ा भी उच्छिष्ट खाकर दीक्षित पुत्र पतित हो जाता है॥ ५६॥

तथा गुरुसमेभ्यश्च सम्प्रार्थ्योच्छिष्टमाददेत्।
गुरोर्गुरुमुखास्तद्वद् गुरुज्येष्ठा अपीश्वरि॥ ५७॥

उसी तरह गुरुतुल्य भोगों की प्रार्थना कर उन्हें उच्छिष्ट प्रदान करे। गुरुमुख तथा उन्हीं की तरह हे ईश्वरि, गुरुज्येष्ठ को भी॥ ५७॥

सर्वे ते गुरवः प्रोक्तास्तेषां शिष्योऽपि स स्मृतः।
सुवासिनीभ्यः शिष्याभ्यो देयं नान्यत्र शेषकम्॥ ५८॥

वे सब गुरु कहलाते हैं, उनके शिष्य भी गुरु की तरह ही पूज्य हैं, सुवासिनियों को तथा शिष्याओं को उच्छिष्ट देय है, दूसरे को देय नहीं है॥ ५८॥

विद्यासम्बन्धहीनोऽपि ज्येष्ठ आचार्यसत्तमः।
शक्तिशेषानन्तरतस्तस्माद् ग्राह्यं तु चर्वणम्॥ ५९॥

विद्या सम्बन्ध रहित होने पर भी उत्तम आचार्य ज्येष्ठ होते हैं। शक्तिशेष से श्रेष्ठ रूप उच्छिष्ट ग्रहण करना चाहिए॥ ५९॥

एवं पात्राणि स्वीकुर्यादुल्लासे योग्यताक्रमात्।

आरम्भस्तरुणस्तद्वद् यौवनः प्रौढ एव च ॥ ६० ॥

योग्यता क्रम से, उल्लसित भाव से पात्रों को स्वीकार करना चाहिए। क्रम है आरम्भ, अर्थात् शैशव, तरुण, उसी तरह युवा एवं प्रौढ ॥ ६० ॥

प्रौढान्त्यश्चोन्मनस्तद्वदनवस्थ इति क्रमात् ।
एतद्भेदस्तु विज्ञेयो बोधानां तारतम्यतः ॥ ६१ ॥

प्रौढ, अन्त्य, उन्मन, इसी तरह अनवस्थ अर्थात् अस्थिर—इस क्रम से ये भेद बोध के न्यूनाधिक्य क्रम से जानना चाहिए ॥ ६१ ॥

यौवनान्तेषु सर्वेषामधिकारो वरानने ।
आचार्यस्य चतुर्थान्तमन्ये त्वभ्यासशीलिनाम् ॥ ६२ ॥

हे वरानने, यौवन के अन्त में तो सबको यह अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार अभ्यासशालियों का एवं आचार्य का चौथी अवस्था का अन्त माना जाता है ॥ ६२ ॥

पानमेतत् त्रिप्रकारं दिव्यवीरपशुक्रमात् ।
विशेषार्घ्योद्वासनान्तं दिव्यपानं प्रकीर्तितम् ॥ ६३ ॥

दिव्य, वीर एवं पशु—इस क्रम से यह **पान तीन प्रकार का** है। उद्वासन के अन्त में विशेषार्घ्य की स्थापना ही दिव्यपान कहलाता है ॥ ६३ ॥

ततः पश्चाद् वीरपानमन्यत् स्यात्पशुपानकम् ।
दिव्यमेव ब्राह्मणे तु वीरं च क्षत्रवैश्ययोः ॥ ६४ ॥

तत्पश्चात् वीरपान है और इससे भिन्न **पशुपान** होता है। ब्राह्मणों के लिए **दिव्यपान** का विधान है तथा क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिए **वीरपान** कहा गया है ॥ ६४ ॥

शूद्रस्य त्रितयं ज्ञेयमेवं शास्त्रस्य निर्णयः ।
एवं यथोक्तबोधान्ते जपध्यानादिकं चरेत् ॥ ६५ ॥

शास्त्रों के निर्णयानुसार शूद्रों का तीसरा जानना चाहिए। इस तरह यथोक्त बोध होने पर जप एवं ध्यानादि कर्म करे ॥ ६५ ॥

अभ्यासस्यानुरोधेन नात्यन्तं स्याद् बहिर्मुखः ।
उत्तमा मध्यमास्तद्वदधमाश्चाधमाधमाः ॥ ६६ ॥

अभ्यास के अनुरोध से अत्यन्त बहिर्मुख नहीं होना चाहिए। उत्तम, मध्यम, अधम, अधमाधम ॥ ६६ ॥

चतुर्धा कौलिकाः प्रोक्तास्तेषां भेदमिमं शृणु ।
अशेषजगतामात्मप्रसरत्वं सुवेत्ति यः ॥ ६७ ॥

कौलिक चार प्रकार के होते हैं, उनका भेद सुनो। अशेष (सम्पूर्ण) संसार को जो अपनी आत्मा का प्रसार ही प्रसार मानता है ॥ ६७ ॥

स कौलिकोत्तमो ज्ञेयो भावयत्यनिशं तु यः ।
जगद्देव्यात्मनामैक्यं स मध्यः कौलिको मतः ॥ ६८ ॥

वह कौलिक उत्तम कहलाता है जो ऐसी भावना दिनरात करता है। और, जो संसार को देवीमय मानता है, वह मध्य कौलिक माना जाता है ॥ ६८ ॥

योऽन्तराधारचक्रेषु मानसार्चापरः सदा ।
अधमः स तु विज्ञेयो यो बाह्यार्चारतः सदा ॥ ६९ ॥

जो हमेशा भीतर के आधार चक्रपर, मानसिक पूजा में तत्पर रहता है उसे अधम कौलिक कहा जाता है ॥ ६९ ॥

अधमाधमः स ज्ञेयो भवेदेवं चतुर्विधः ।
एवमभ्यासानुरूपाद् ध्यानाद्यं तु समाचरेत् ॥ ७० ॥

जो बाहरी पूजा में ही हमेशा तत्पर रहता है उसे अधमाधम कौलिक कहते हैं— इस तरह चार प्रकार के कौलिक कहे गये हैं ॥ ७० ॥

उत्तमः कुलयोगो हि यल्लाभान्नानुशोचति ।
तमेव सर्वथा जन्तुः साधयेद् गुरुमार्गतः ॥ ७१ ॥

कुलयोग उत्तम होता है, गुरुमार्ग से जिसे प्राप्त कर, अनुचिन्तन की आवश्यकता नहीं रह जाती। प्राणी को सर्वथा उसी को साधना चाहिए ॥ ७१ ॥

स्वविकल्पैकसंसिद्धिसारं जगदशेषकम् ।
स्वशक्तिमात्रं जानीयात् कुलयोगस्त्वयं शिवे ॥ ७२ ॥

सम्पूर्ण संसार में एकमात्र 'स्वविकल्प' ही संसिद्धि का सार है। हे शिवे, साधक को केवल अपनी शक्ति को जानना ही कुलयोग है ॥ ७२ ॥

एवमभ्यस्य सुचिरं शाम्भवीमुद्रयान्वितः ।
यथेच्छं तु पिबन् मद्यं सर्वं सर्वत्र भक्षयन् ॥ ७३ ॥

शाम्भवी मुद्रा के साथ चिरकाल तक इसका अभ्यास कर, यथेच्छ मद्यपान करते हुए, सर्वत्र सब कुछ खाते हुए ॥ ७३ ॥

वसन् वेश्यासु सततं जीवन्मुक्तो न संशयः ।
पिबन् मुहुः पतन् भूमावुत्थाय च पुनः पिबन् ॥ ७४ ॥

हमेशा वेश्याओं के बीच निवास करते हुए व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। पीते पीते धरती पर लुढक जाय, लड़ख़ड़ाते उठकर खड़ा हो जाय और फिर पीते हुए ॥ ७४ ॥

करेणादाय कलशमागलान्तं पिबन् वमन् ।
शीतोष्ण-सुखदुःखादि-द्वन्द्वं पश्यन् समं सदा ॥ ७५ ॥

हाथ से मद घट उठाकर गले तक पीते हुए वमन करे, जाड़ा-गर्मी, सुख-दुख को हमेशा समानभाव से देखते हुए॥ ७५॥

जपपूजाविहीनोऽपि स जीवन्मुक्त उच्यते।
अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिः सन्तुष्टो निश्चल-स्थितिः॥ ७६॥

जप-पूजाविहीन होने के बावजूद भी ऐसा व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाता है। लक्ष्य भीतर हो और आँखें बाहर, सतत संतुष्ट और स्थिति अडिग॥ ७६॥

एषा तु शाम्भवी मुद्रा जीवन्मुक्ति-फलप्रदा।
अथ वक्ष्ये मण्डलीयान् धर्मान् कौलिकसम्भवान्॥ ७७॥

यही **शाम्भवी मुद्रा** है जो जीवन में मुक्ति का फल देती है।
इसके बाद कौलिकों में पाये जानेवाले **मण्डलीय धर्म** बतलाता हूँ॥ ७७॥

गुप्त्यै नतिर्देवतायां भक्तिः कार्या सदा बुधैः।
गुरु-दैवत-मन्त्राणां समयाचारवर्त्मनः॥ ७८॥

रक्षा (गुप्ति) के लिये नमस्कार और देवता में भक्ति बुद्धिमानों को सदा करनी चाहिए। समयाचार की राह में गुरु-देवता और मंत्र की॥ ७८॥

न निन्दां शृणुयात् क्वापि, न तिष्ठेत् तत्र सर्वथा।
मन्त्रं मुद्रामात्मनाम शिष्यादन्यत्र नो वदेत्॥ ७९॥

निन्दा कभी न सुनें और ऐसे निन्दकों के बीच कभी न बैठे। मन्त्र, मुद्रा एवं अपना नाम शिष्य से अतिरिक्त किसी को न बोले॥ ७९॥

सुवासिनी-समूहं च दृष्ट्वा भक्त्या नतिं चरेत्।
पशुहस्तगतं नैव कुर्याच्च कुल-पुस्तकम्॥ ८०॥

सुवासिनी समूह को देखकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। कुलपुस्तक पशुहस्तगत कभी न करें॥ ८०॥

न गच्छेत् पशुसङ्गं वै पशुशास्त्रं विवर्जयेत्।
पशवस्तु परज्ञानभक्तिश्रद्धाविवर्जिताः॥ ८१॥

पशु सङ्ग कहीं न जाय पशुशास्त्र कभी न पढ़े, पशुवस्तु स्वीकार न करे, क्योकि ये पशु भक्ति श्रद्धा तथा परज्ञान रहित होते हैं॥ ८१॥

सच्छास्त्रनिन्दकास्तेषां शुष्कतर्कैकनिर्मितम्।
पशुशास्त्रमिति प्रोक्तं साधकस्तु न तत् स्पृशेत्॥ ८२॥

शुष्क तर्क पर आधारित, प्रतिष्ठित शास्त्रों का निन्दक ही **पशुशास्त्र** कहलाता है। साधक को ऐसे शास्त्रों का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए॥ ८२॥

सर्वदा कुलशास्त्रं तु चिन्तनीयं प्रयत्नतः।

मण्डले शिवरूपं तु सदा सर्वं विभावयेत् ॥ ८३॥

प्रयासपूर्वक सर्वदा कुलशास्त्र का चिन्तन करना चाहिए। मण्डल में उपस्थितजनों को हमेशा शिव स्वरूप ही समझना चाहिए॥ ८३॥

विशेषेण तु शक्तीश्च भावयेद् देवतात्मिकाः।
न कुर्यादपमानं हि नाज्ञां तासामसंश्रयेत् ॥ ८४॥

देवतात्मिका शक्तियों की खास ढंग से भावना करनी चाहिए, उनका न तो कहीं अपमान करना चाहिए और न कहीं उनकी आज्ञा की अवहेलना ही॥ ८४॥

कुलद्रव्यं निषेवेत मण्डलान्तर्न चान्यथा।
मण्डलाद् बाह्यतो यस्तु कुलद्रव्यं निषेवते ॥ ८५॥

कुलद्रव्य का सेवन मण्डल के भीतर ही करना चाहिए, अन्यत्र कदापि नहीं। जो व्यक्ति मण्डल के बाहर कुलद्रव्य का सेवन करते हैं॥ ८५॥

पशुपानं तेन कृतं सत्यं देवि ब्रवीमि ते।
मण्डलाद् बाह्यतोऽप्येताः सुवासिन्यस्तवांशजाः ॥ ८६॥

हे देवि, मैं आपसे सत्य कहता हूँ, वे पशुपान ही करते हैं और कुछ नहीं। ये सुवासिनी मण्डल से बाहर भी तेरे ही अंश हैं॥ ८६॥

निषेवन्त्यः कुलद्रव्यं न दोषं प्राप्नुवन्ति ताः।
प्रातःस्मृत्यादिसन्ध्यान्तं भूशुद्ध्यादिकमेव च ॥ ८७॥

ये कुलद्रव्य सेवन करने में किसी तरह के दोषभागी नहीं होतीं। प्रातःस्मृत्यादि से लेकर सन्ध्यान्त तक भूशुद्धि आदि कर्म॥ ८७॥

कुर्याज्जपेन्मुख्यमन्त्रानन्यमन्त्रान् सकृत् पठेत्।
पूजयेत् तु कथंचिद्वा शक्तिप्रज्ञानुसारतः ॥ ८८॥

करे। मुख्य मन्त्र का जप करे, अन्य मन्त्रों का जप भी एक बार करे। अथवा अपनी बुद्धि के अनुसार शक्ति की उपासना करे॥ ८८॥

स्तोत्रं च कवचं नाम्नामावलिं चापि नित्यशः।
एष नैत्यकधर्मस्तु साधकानां सुसंमतः ॥ ८९॥

साधकों के लिए साधुसम्मत विचार है कि वे भगवती का प्रतिदिन नित्यकर्म की तरह स्तोत्र, कवच और नामावली का पाठ करे॥ ८९॥

दीक्षां प्राप्य तु यो मर्त्यः सुकल्पश्चाप्युपासने।
त्यक्तुमिच्छेत मोहेन स्वदेहं पतितो हि सः ॥ ९०॥

दीक्षा पाकर जो व्यक्ति उपासना में आलस्य करता है या मोहवश उसे छोड़ना चाहता है अपनी देह में ही वह पतित हो जाता है॥ ९०॥

उपासनं विहत्यासौ न दीक्षाफलमश्नुते ।
समानां शतकं जीवेद् देवतोपासनाय वै ॥ ९१ ॥

उपासना छोड़कर वह दीक्षा का फल प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि, उपासना के लिए ही वह सौ साल तक जीता है ॥ ९१ ॥

इतीच्छेत सदा मर्त्यो न मृतिं दीक्षितः क्वचित् ।
दीक्षितस्यात्मसन्त्यागस्तस्मान्नैव विधीयते ॥ ९२ ॥

दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् दीक्षित को सदा उपासना में लगे रहना चाहिए और कदापि मृत्यु की कामना नहीं करनी चाहिए। यही कारण है कि दीक्षितों के आत्मसन्त्याग का कहीं विधान नहीं है ॥ ९२ ॥

आत्मानं त्यक्तुमिच्छेत मोक्षार्थमपि यो नरः ।
प्रयागादिष्वपि शिवे दुर्लभा तस्य सद्गतिः ॥ ९३ ॥

यदि दीक्षित आत्मसन्त्याग की भावना, मोक्ष की इच्छा से प्रयागादि में भी करता है, तो उसे सद्गति नहीं मिलती ॥ ९३ ॥

तस्माद् दीक्षायुतो नैव उपास्तिविहतिं चरेत् ।
उपास्याचरणादेव भवेत् साधकसम्मतः ॥ ९४ ॥

अतः दीक्षायुक्त व्यक्ति को उपासना छोड़कर मित्रों के साथ विचरण नहीं करना चाहिए। **उपासक का आचरण** ही साधक-सम्मत कहा गया है ॥ ९४ ॥

एवं गुरूक्ति-सच्छास्त्र-विश्वासाद् भक्तियोगतः ।
सर्वमात्मवता कार्यमन्यथा नाशमृच्छति ॥ ९५ ॥

इस तरह गुरुवचन, सत् शास्त्रों में विश्वास तथा इष्टदेव में भक्ति, सबको आत्मतुल्य समझना चाहिए, अन्यथा उसका नाश हो जाता है ॥ ९५ ॥

अयं सर्वोत्तमो धर्मः शिवोक्तः सुखसिद्धिदः ।
जितेन्द्रियस्य सुलभो नान्यस्यानन्तजन्मभिः ॥ ९६ ॥

यही सर्वोत्तम धर्म है, सुख और सिद्धि देनेवाला शिवोक्त हैं; जो जितेन्द्रिय हैं उनके लिए सुलभ है, इससे भिन्न को अनन्त जन्म में भी सिद्धि नहीं मिलती ॥ ९६ ॥

यदूर्ध्वरेतसां सर्वत्यागिनामनिकेतिनाम् ।
क्षणेन स्मृतमात्रं तु मोहमुत्पादयत्यलम् ॥ ९७ ॥

स्त्री-संभोग से वर्जित अर्थात् अर्थात् आजीवन ब्रह्मचारी, सब कुछ त्याग करनेवाले, घरद्वार रहित तपस्वी जन भी एक क्षण के लिये किसी रमणी का ध्यान भर कर लें तो उन्हें मोह उत्पन्न हो जाता है ॥ ९७ ॥

तदेवात्र हि संसिद्धौ कारणं सर्वमीरितम् ।

इतो मद्यमितो मांसं भक्ष्यमुच्चावचं तथा ॥ ९८ ॥

वही इस शास्त्र में ही सब संसिद्धि का कारण माना गया है। इधर मदिरा, उधर मांस जहाँ तहाँ विषम भोजन ॥ ९८ ॥

तरुण्यश्चारुवेषाढ्या मदघूर्णितलोचनाः ।
तत्र संयतचित्तत्वं सर्वथा ह्यतिदुष्करम् ॥ ९९ ॥

जहाँ मदमस्त लाल-लाल आँखोंवाली, सुन्दर वेषभूषा सजी सजाई युवतियाँ हों वहाँ संयमित चित्त की बात ही सर्वथा दुष्कर है ॥ ९९ ॥

भक्तिश्रद्धाविहीनस्य कथं स्यादेतदीश्वरि ।
महाविघ्नसहस्त्रौघमकरग्राहसङ्कुलम् ॥ १०० ॥

हे परमेश्वरी, भक्ति और श्रद्धाविहीन लोगों को यह सुलभ कहाँ? यहाँ तो यह संसार महासागर में महाविघ्न से भरा पड़ा है। यह हजारों जलप्लावन, मकर और ग्राह से भरा पड़ा है ॥ १०० ॥

सन्मुक्ति-द्वीपनगरी सिन्धुमार्गं भयानकम् ।
दृढश्रद्धाकर्णयुतां भक्तिनौकां विना जनः ॥ १०१ ॥

ऐसे भयानक सिन्धुमार्ग से ही सन्मुक्ति की द्वीपनगरी तक कोई ही जा सकता है। इस सिन्धुमार्ग को पार करने के लिए दृढ़ श्रद्धारूपी डाड़-पतवार लगी भक्ति की नौका के बिना कोई कैसे जा सकता है! ॥ १०१ ॥

सदाचारानुकूलोद्यद्वायुमात्रेण शङ्करि ।
न सन्तरेदुपायानां सहस्त्रैः प्रगुणैरपि ॥ १०२ ॥

सदाचार के अनुकूल उद्यमरूपी वायुमात्र से यह सिन्धु पार किया जा सकता है। हे शङ्करि, अन्यथा हजारों उपायों या विशेष गुणों से नहीं ॥ १०२ ॥

तस्मात् सदा भक्तियुतः श्रद्धाभावन-संयुतः ।
कौलमार्गमुपासीनः शुभां गतिमवाप्नुयात् ।
एतत्त्वया तु यत् पृष्टं तदाख्यातमगात्मजे ॥ १०३ ॥

अतः सदा भक्तियुक्त, श्रद्धा भावना समन्वित, कौलमार्ग की उपासना करते हुए शुभगति प्राप्त करनी चाहिए। हे पर्वतपुत्रि, तुमने जो पूछा, उसका उत्तर यह मैंने तुम्हें दिया ॥ १०३ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे स्वात्मीकारादिकथनं नाम चतुर्दशस्तरङ्गः ॥ १४ ॥

इस तरह त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में चौदहवें तरङ्ग 'स्वात्मीकारादिकथन' का व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

●

अथ पञ्चदशस्तरङ्गः

(मुद्रालक्षणानि)

गिरिजोवाच

महेश करुणासिन्धो मत्प्राणप्रियवल्लभ ।
मुद्राणां लक्षणं ब्रूहि त्रिपुरार्णवसंस्थितम् ॥ १ ॥

गिरिजा ने कहा—

हे महेश्वर, हे करुणा के सिन्धु, हे मेरे प्राणप्रिय वल्लभ! त्रिपुरार्णव में वर्णित **मुद्राओं के लक्षण** कृपया बतलायें ॥ १ ॥

शिव उवाच

श्रृणु प्रियतमे वक्ष्ये मुद्राणां लक्षणं परम् ।
यद्दर्शनान्मुदं राति मुद्रा तस्मात् प्रकीर्तिता ॥ २ ॥

शिव ने कहा—

हे प्रियतमे, सुनो मुद्राओं को परम लक्षण मैं बतलाता हूँ। जिसके दर्शन से प्रसन्नता प्राप्त होती है, उसे ही **मुद्रा** कहा जाता है ॥ २ ॥

त्रिपुरार्णवसम्प्रोक्तविधिना संश्रृणु प्रिये ।
संक्षोभिणी विद्राविण्याकर्षणी च वशङ्करी ॥ ३ ॥

हे प्रिये, त्रिपुरार्णव में जो विधि बतलाई गयी है वह सुनो। संक्षोभिणी, विद्राविणी, आकर्षिणी, व शङ्करी ॥ ३ ॥

उन्मादिनी महाङ्कुशा खेचरी बीजरूपिणी ।
योनिः पाशाङ्कुशौ चापबाणाश्चेति त्रयोदश ॥ ४ ॥

उन्मादिनी, महाङ्कुशा, खेचरी, बीजरूपिणी और योनि—नौ मुद्रायें तथा पाश, अङ्कुश, चाप, बाण—ये चार आयुध मुद्रा। कुल मिलाकर **तेरह मुद्रायें** हैं ॥ ४ ॥

त्रयोदशविधा मुद्रा देवतायाः प्रदर्शने ।
मध्यादित्रितयं चोर्ध्वमुखं सम्मिलितं द्वयोः ॥ ५ ॥

देवता श्री ललिता-महात्रिपुर सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिए ये तेरह तरह की मुद्रायें प्रदर्शित की जाती है।

मध्यादि तीन अँगुलियाँ दोनों मिली हुई ऊर्ध्वमुख अर्थात् ऊपर की ओर उठी हुई हों ॥ ५ ॥

अङ्गुलं पृष्ठमिलितमङ्गुष्ठाग्रयुतं तथा ।
ऋजुरूपे च तर्जन्यावग्रदेशसुयोजिते ॥ ६ ॥

तथा अँगूठे के साथ अँगुलियों का अग्रभाग मिली हों, सामान्य रूप में तर्जनी के अग्र भाग में मिले हों॥ ६॥

संक्षोभिणी नाम मुद्रा प्रथमा परिकीर्तिता।
अत्रैव मध्यमाद्वन्द्वं तर्जनीवत् स्थितं तथा॥ ७॥

प्रथम **संक्षोभिणी** नाम की यह मुद्रा बतलाई गई।
तथा यहाँ ही दोनों मध्यमा तर्जनी की तरह स्थित हो॥ ७॥

तत्पार्श्वे तर्जनीयुग्मं द्वितीयेयं प्रकीर्तिता।
अङ्गुष्ठादित्रयं प्राग्वद्युक्तं स्यात् परमेश्वरि॥ ८॥

उसके बगल में दोनों हाथों की तर्जनी को सटा दे, यह **दूसरी मुद्रा** कहलाती है। हे परमेश्वरि, अँगूठे आदि तीनों पहले की ही तरह होनी चाहिए॥ ८॥

अनामा च कनिष्ठा च ऋजुरूपा च पूर्ववत्।
तृतीयेयं च करयोः सम्प्रोतान्यङ्गुलानि च॥ ९॥

अनामिका और कनिष्ठा अँगुलियाँ पहले की तरह सीधी रहनी चाहिए। दोनों हाथों की सारी अँगुलियाँ एक दूसरे के साथ ठीक से मिली हों, यह **तीसरी मुद्रा** कहलाती हैं॥ ९॥

मुष्टिरूपकरद्वन्द्वोदरसंस्थानि तानि तु।
चतुर्थीयन्तु विख्याता कनिष्ठाद्वितयं तु यत्॥ १०॥

दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बँधी हों और उसके भीतरी भाग ही **चौथी मुद्रा** नाम से विख्यात हैं और जो दोनों कनिष्ठायें हैं॥ १०॥

दक्षोपरि स्थिता वामेत्येवं व्यत्यस्य तदद्वयम्।
मध्यमाभ्यां धृतेऽनामातर्जन्यौ च प्रसारिते॥ ११॥

दायें हाथ पर बायीं मुट्ठी को विपरीत क्रम से रखकर मध्यमा अंगुलि पर अनामिका और तर्जनी को फैलाकर॥ ११॥

मध्यमाग्रयुताङ्गुष्ठे मुद्रेयं पञ्चमी मता।
वक्रतर्जनिकायोगादियं षष्ठी प्रकीर्तिता॥ १२॥

अंगूठे पर अग्रयुक्त मध्यमा को रखे यह **पंचमी मुद्रा** कहलाती है।
इसी मुद्रा में तर्जनी को टेढ़ी कर सटा देने पर **छठी मुद्रा** कहलाती है॥ १२॥

वामानामाकनिष्ठोर्ध्वस्थितं तदितरद्वयम्।
तर्जनीभ्यामवष्टब्धद्वयाग्रं मध्यपार्श्वयोः॥ १३॥

बायें हाथ की अनामिका और कनिष्ठा ऊपर की ओर उठी हुई, उससे भिन्न दोनों तर्जनियों के सहारे दोनों के अग्रभाग के बीच में और उसके बगल के सहारे॥ १३॥

तदग्रद्वितयं युक्तं तदन्तःसन्निधापितम् ।
अङ्गुष्ठाग्रद्वयं हस्तद्वयवेष्टनतः कृतम् ॥ १४॥

दोनों के अग्रभागयुक्त और अँगुलियों के अन्तिम छोर को मिलाकर, दोनों हाथों के अंगूठे के अग्रभाग को दोनों हाथों से घेरा लगाकर॥ १४॥

सप्तमी मध्यमायुग्ममनामावत् तथा पुनः ।
अनामा मध्यमावत् स्यादङ्कुशैवाष्टमी भवेत् ॥ १५॥

ये **सप्तमी मुद्रा** हुई। और दोनों मध्यमा अनामिका की ही तरह तथा फिर अनामिका को मध्यमा की तरह अङ्कुश बनाकर **अष्टमी मुद्रा** होती है॥ १५॥

नवमी तु पुरा प्रोक्ता तर्जन्यौ मुष्टिनिर्गते ।
वेष्टिते व्यत्यस्य करौ मध्यच्छिद्रयुतं तथा ॥ १६॥

नवमी तो पहले कही जा चुकी है, दोनों हाथ की तर्जनी को बाहर निकाल कर रक्खे। विपरीत हाथों से घेरकर बीच में छिद्रयुक्त बना ले॥ १६॥

वामस्कन्धे तु विन्यस्ता दशमी सम्प्रकीर्तिता ।
वक्रतर्जनिका मुष्टेर्निर्गता चाङ्कुशा मता ॥ १७॥

बायें कन्धे पर इसे रखने पर यह **दशमी मुद्रा** कहलाती है। टेढ़ी तर्जनी मुट्ठी से बाहर **अङ्कुशा** कहलाती है॥ १७॥

तीर्थाऽऽह्वाने तु सम्प्रोक्ता क्रोंबीजेन तु संयुता ।
दक्षस्कन्धे सन्निविष्टा तीर्थाऽऽह्वानाङ्कुशा परा ॥ १८॥

क्रों बीजमन्त्र के साथ तीर्थ के आह्वान में इसका प्रयोग कहा गया है। दायें कन्धे पर अंकुश मुद्रा रखकर तीर्थ का आह्वान किया जाता है॥ १८॥

वाममुष्टिर्हृत्समीपे द्वादशी परिकीर्तिता ।
तदग्रे दक्षिणा मुष्टिश्चरमा सम्प्रकीर्तिता ॥ १९॥

बायीं मुट्ठी को हृदय के समीप ले जाने पर **बारहवीं मुद्रा** कहलाती है।
उससे आगे दायीं मुट्ठी **तेरहवीं मुद्रा** होती है॥ १९॥

वाम-मध्यानामिके च ऊर्ध्वस्थे दक्षयोस्तयोः ।
दक्षमध्यानामिकाग्रे तथा वामस्थयोस्तयोः ॥ २०॥

बायें हाथ के मध्यमा और अनामिका के ऊपर टिके दायीं ओर दोनों तथा दायीं ओर मध्यमा, अनामिका के अग्रभाग में तथा बायीं ओर उन दोनों का॥ २०॥

तर्जनीं च कनिष्ठां च योजयेद् वामदक्षयोः ।
अधोमुखी धेनुमुद्रा प्रोक्तैषा परमेश्वरि ॥ २१॥

दायें बायें हाथों की तर्जनी और कनिष्ठा एक साथ मिलाकर औंधे मुख लटका दे। हे परमेश्वरि यह **धेनुमुद्रा** कहलाती है॥ २१॥

दक्षतर्जन्यूर्ध्वतस्तु कनिष्ठायास्तथैव च।
वामाभ्यां वेष्टयेत् ताभ्यामङ्गुष्ठाग्रे सुयोजिते॥ २२॥

दायें हाथ की तर्जनी को ऊपर की ओर उठाकर, उसी तरह कनिष्ठा को भी ऊपर उठाकर बायें हाथ की अंगुलियों को घेर दे तथा अंगूठे के अग्रभाग उसके साथ नियोजित कर दे॥ २२॥

करपृष्ठद्वयं युक्तं मध्यमानामिकाद्वयम्।
वक्ररूपं सुयुक्तं च तार्क्ष्यमुद्रेयमीरिता॥ २३॥

दोनों हाथों के पृष्ठ भागों को मिलाकर, मध्यमा और अनामिका को टेढ़ी कर एक साथ मिला दे यह **तार्क्ष्य मुद्रा** कहलाती है॥ २३॥

अङ्गुल्यग्राणि संयोज्य कुम्भमुद्रा तु कुम्भवत्।
दक्षोर्ध्वरीत्या संवेष्ट्य करौ प्रोताङ्गुलौ शिवे॥ २४॥

अङ्गुलियों के अग्रबाग को एख साथ मिलाकर घड़े की तरह **कुम्भमुद्रा** होती है। दक्षोर्ध्व रीति से दोनों हाथों की अंगुलियों को सटाकर सीधे फैला दे॥ २४॥

पृष्ठतः परिवर्त्त्याथ मध्यमादित्रयं तथा।
मुष्टौ स्थितं तर्जनिकाऽङ्गुष्ठौ बाह्ये ऋजू युते॥ २५॥

पीठ की ओर से बदलकर तथा मध्यमा आदि तीनों अंगुलियों को मुट्ठी में रखकर, तर्जनी और अंगूठे को बाहर सीधे रक्खे॥ २५॥

संहारमुद्रा सम्प्रोक्ता देवतोद्वासकर्मणि।
तर्जनी मुष्टि-निर्मुक्ता भ्रामयेत् त्रिः प्रदक्षिणम्॥ २६॥

यह **संहारमुद्रा** कहलाती है। देवता के उद्वासकर्म में तर्जनी को मुट्ठी से बाहर निकालकर प्रदक्षिणा क्रम में तीन बार घुमाये॥ ३६॥

ज्योतिर्मुद्रा तु सम्प्रोक्ता नियुक्तारार्तिके शिवे।
वामाङ्गुष्ठं दक्षमुष्टौ दक्षाङ्गुष्ठाग्रयोजितम्॥ २७॥

यह **ज्योतिमुद्रा** कहलाती है, इसका उपयोग देवता की आरती के समय में किया जाता है। बायें अंगूठे को दाहिनी मुट्ठी में दायें अंगूठे के अगले हिस्से को उसके साथ सटा दे॥ २७॥

वामाङ्गुलाग्रं चैषा तु शङ्खमुद्रा प्रकीर्तिता।
दक्षोर्ध्वक्रमयोगेन तलोपरि तलं न्यसेत्॥ २८॥

तथा बायीं अंगुली के अग्रभाग को मिलाकर **शङ्खमुद्रा** कहलाती है। दक्षोर्ध्वक्रम से योग से एक तलहथी पर दूसरी तलहथी रक्खें॥ २८॥

पृथक् कृतान्यङ्गुलानि कनिष्ठामूलदेशके ।
अङ्गुष्ठमूलयोगेन चक्रमुद्रा समीरिता ॥ २९॥

कनिष्ठा के मूल देश में अंगुलियों को अलग अलग करके अंगूठे की जड़ को सटा देने पर **चक्रमुद्रा** कहलाती है॥ २९॥

दक्षाङ्गुष्ठादिकं वामाङ्गुष्ठसन्ध्यादिषु क्षिपेत् ।
अङ्गुल्यग्राणि संयोज्य करपृष्ठे तु मध्यमे ॥ ३०॥

दाहिने अंगूठे आदि को बायें अंगूठे के सन्धिस्थल में रक्खें फिर, अंगुलियों के अन्तिम पोरों को एक साथ मिलाकर करपृष्ट पर मध्यमा अंगुलि को॥ ३०॥

ऋजूर्ध्वाग्रे योजिते च कूर्परान्तं करद्वयम् ।
संयोजितं समाख्याता गदामुद्रेति शङ्करि ॥ ३१॥

सीधे ऊपर के अग्रभाग में संयोजित, घुटने के अन्त तक दोनों हाथों को सटा दे। हे शङ्करि, यह **गदामुद्रा** कहलाती है॥ ३१॥

दक्षे कनिष्ठामूले तु अङ्गुष्ठाग्रं विनिक्षिपेत् ।
ऋजुयुक्तोर्ध्वाङ्गुलानि खड्गमुद्रा भवेदियम् ॥ ३२॥

दायें हाथ की कनिष्ठा के मूल में अंगूठे के अग्रभाग को रखे, अन्य अंगुलियाँ सीधी ऊपर की ओर उठी हों, यह **खड्गमुद्रा** होती है॥ ३२॥

करयोस्तलमूलं च कनिष्ठाङ्गुष्ठमस्तकम् ।
संयोज्य चेषद्वक्राणि पृथगूर्ध्वाङ्गुलानि च ॥ ३३॥

दोनों हाथों की तलहथी के मूल को सटाकर कनिष्ठा एवं अंगूठे के सिरे को मिलाकर जो थोड़ी टेढ़ी हो और उससे अलग ऊपर की अँगुलियों को॥ ३३॥

परस्परं सम्मुखाग्राण्येषा पद्माभिधा भवेत् ।
पुरा प्रोक्ता योनिमुद्रा सैवात्रानन्तरा मता ॥ ३४॥

सामने के अग्रभाग को मिला देने पर **पद्मा** नाम की **मुद्रा** कहलाती है। पहले इसे **योनिमुद्रा** कहा जाता था, यही यहाँ मतान्तर है॥ ३४॥

दक्षमुष्टि-विनिर्गच्छत्तर्जन्याद्यङ्गुलत्रयम् ।
पृथगृजूर्ध्वाग्रकं तु त्रिशूलाख्या भवेदियम् ॥ ३५॥

दायें हाथ की मुट्ठी से बाहर तर्जनी आदि तीन अंगुलियाँ अलग अलग सीधे ऊपर की ओर उठी **त्रिशूलमुद्रा** कहलाती हैं॥ ३५॥

तार्क्ष्य-धेनुद्वयं प्रोक्तं शृणु तत्पश्चिमं शिवे ।

दक्षमुष्टि-विनिर्गच्छत् तर्जन्याद्यङ्गुलद्वयम् ॥ ३६ ॥

इसके पश्चात् हे शिवे ! गरुड़ एवं धेनु दोनों मुद्रायें कही गई हैं उन्हें सुनो, दायीं मुट्ठी से निकलती हुई तर्जनी आदि दोनों अंगुलियाँ ॥ ३६ ॥

तर्जनी-पृष्ठदेशे तु मध्यमोदरयोजनात् ।
ऊर्ध्वाङ्गुलाग्रा सम्प्रोक्ता मुद्रा डमरुसंज्ञिता ॥ ३७ ॥

तर्जनी के पृष्ठ देश में मध्यमा अंगुली के संयोग से उदर योजना बना लें, अर्थात् अन्य अंगुलियों को मुट्ठी की तरह बाँधकर बीच में खोखला बना लें तथा मध्यमा (दोनों हाथों को) सीधे ऊपर की ओर खड़ा कर **डमरुमुद्रा** बना ले ॥ ३७ ॥

मुष्टिद्वयं कनिष्ठायां करभान्तं तु योजितम् ।
उत्तानं तु तलं कृत्वा चाङ्गुष्ठद्वितयं ऋजु ॥ ३८ ॥

दोनों मुट्ठियों को कनिष्ठा में करभान्त अर्थात् हाथ की पीठ (कलाई से लेकर नाखूनों तक) में मिला दे, फिर, हाथ की हथेली को फैलाकर और दोनों अंगुलियों को सीधा खड़ा कर ॥ ३८ ॥

दक्षोत्तराग्रकं कुर्यान्मुद्रा शार्ङ्गाह्वया भवेत् ।
मुष्टिद्वयं विनिर्गच्छदङ्गुष्ठं चोर्ध्वमस्तकम् ॥ ३९ ॥

दाहिने अंगूठे को उत्तराग्र बनाकर, **शार्ङ्गमुद्रा** बनाई जाती है। फिर दोनों मुट्ठियों से निकल ऊर्ध्वमस्तक दोनों अंगूठों को ॥ ३९ ॥

प्रागग्रां तर्जनीं कुर्यादियं नाराच-संज्ञिता ।
दक्षहस्तोर्ध्वयोगेन वेष्टयित्वा कनिष्ठिके ॥ ४० ॥

सबसे आगे तर्जनी अंगुलि को बढ़ाकर **नाराच मुद्रा** बना ले। दाहिने हाथ के ऊर्ध्वयोग से दोनों कनिष्ठा को घेरकर ॥ ४० ॥

वाममध्यानामिकयोरग्रभागे तु वेष्टयेत् ।
तर्जन्या दक्षया वामतर्जन्यग्रेण योजयेत् ॥ ४१ ॥

बायें हाथ के अनामिका और मध्यमा के अग्रभाग में घेर दे। दाहिने हाथ की तर्जनी से बायें हाथ की तर्जनी से मिला दे ॥ ४१ ॥

दक्षाङ्गुष्ठा मध्यमाग्रमनामाग्रं नभोमुखम् ।
वामाङ्गुष्ठा दक्षपृष्ठे मुद्रा कौस्तुभ-संज्ञिता ॥ ४२ ॥

दाहिने हाथ के अंगूठे, मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग को आकाशोन्मुख अर्थात् ऊपर की ओर मुख कर दे। फिर, बायें हाथ के अंगूठे को दायें हाथ की पीठ पर सटाकर **कौस्तुभ** नामक मुद्रा बना ले ॥ ४२ ॥

अधोमुखं दक्षहस्तमुत्तानं वामहस्तकम् ।

दक्षतर्जनिकां वामकनिष्ठोपरि निक्षिपेत् ॥ ४३ ॥

अधोमुख दाहिना हाथ हो और उत्तानमुख बायां हाथ हो, दाहिने हाथ की तर्जनी को बायें हाथ की कनिष्ठा पर रखे ॥ ४३ ॥

वामतर्जनिकायाञ्च कनिष्ठां दक्षिणां क्षिपेत् ।
वामतर्जनिकापृष्ठाद् वामाङ्गुष्ठोदरे क्षिपेत् ॥ ४४ ॥

बायें हाथ की तर्जनी अंगुलि पर दायें हाथ की कनिष्ठा को रखे, बायें तर्जनी की पीठ से दायें अंगूठे के बीच में रखे ॥ ४४ ॥

दक्षमध्याऽनामिकाग्रे दक्षाङ्गुष्ठोदरे क्षिपेत् ।
वाममध्यानामिकाग्रे मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिता ॥ ४५ ॥

दायें हाथ के अनामिका और मध्यमा के अग्रभाग को मोड़ दे और दायें अंगूठे को उसके भीतरी भाग में सटा दे, बायें हाथ के मध्यमा और अनामिका के मध्य में सटा दे। यह **श्रीवत्स** नामक **मुद्रा** होती है ॥ ४५ ॥

दक्षमुष्टिर्दक्षिणाग्रे मुद्रा मुसलसंज्ञिता ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयुगलकरपृष्ठाग्रयोः पृथक् ॥ ४६ ॥

दायीं मुट्ठी दक्षिणाग्र में रख **मुसल मुद्रा** बनाई जाती है। कर पृष्ठाग्र में दोनों कनिष्ठा और अंगूठे को अलग अलग रक्खे ॥ ४६ ॥

[मुसलमुद्रा की एक अन्य परिभाषा भी है—

मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्।
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥

दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर बायें हाथ की मुट्ठी पर दायें हाथ की मुट्ठी को रखकर सर्वविघ्नविनाशिनी **मुसलमुद्रा** बनाई जाती है ॥]

एवंविधा योनिमुद्रा त्रिखण्डा सम्प्रकीर्तिता ।
एता मुद्रा जपादौ तु प्रदर्श्या देवतामुदे ।
एतन्मुद्राविवरणं प्रोक्तं शुश्रूषितं तु ते ॥ ४७ ॥

इस तरह त्रिखण्डा **योनिमुद्रा** होती है। देवता की प्रसन्नता के लिए जप करने से पूर्व ये मुद्रायें प्रदर्शित की जाती है ॥

सुनने की इच्छा रखनेवाली हे पार्वति, यह मुद्राविवरण मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे मुद्राविवरणं नाम पञ्चदशस्तरङ्गः ॥ १५ ॥

इस तरह त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में मुद्राविवरण नामक पन्द्रहवें तरङ्ग की व्याख्या सम्पन्न हुई ॥ १५ ॥

अथ षोडशस्तरङ्गः

(असमर्थपुरुषाणां कृते गौणपूजा)

पार्वत्युवाच

शङ्कराऽशक्तविषयां पूजां वद दयानिधे ।
असमर्थैस्तथा मन्दैर्नैषा कर्त्तुं प्रभाविता ॥ १ ॥

पार्वती ने कहा—

हे दयानिधे, हे शङ्कर! अशक्त पुरुषों के लिये मुझे पूजा की विधि बतला दे, क्योंकि असमर्थ एवं मन्दबुद्धि व्यक्ति पूर्ण पूजा कर पाने में अशक्त होते हैं॥ १॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पूजां गौणां लघीयसीम् ।
मुख्य-द्रव्येण पूजायां न संक्षेपो विधीयते ॥ २ ॥

महादेव ने कहा—

हे देवि, सुनो, महादेवी की विशिष्ट पूजा से अपेक्षाकृत हल्की **गौण पूजा** मैं बतलाता हूँ। गौण पूजा में भी मुख्य द्रव्य से पूजा को संक्षिप्त नहीं किया जाता॥ २॥

आपत्काले त्वावृतिं तु चतुर्थाद्यामथापि वा ।
षष्ठाद्यां वापि कुर्वीत मुख्या वै पञ्चिकास्वपि ॥ ३ ॥

फिर भी, आपत्काल में एक से चार अथवा एक से छः तक के आवरणों की पूजा और मुख्यरूप से पञ्चिकाओं में भी होती है॥ ३॥

होमं मन्त्रं समावृत्त्या सर्वभूताभिधं बलिम् ।
शान्तिस्तुतिं यथाशक्त्या चैवमन्यत्र शङ्करि ॥ ४ ॥

हे शङ्करि! आवरणमन्त्रों से होम, सर्वभूतबलि, तथा शान्तिस्तव का पाठ यथाशक्ति, करे॥ ४॥

अनुकल्पेन पूजायामपीत्थं तु लघीयसीम् ।
अत्राप्यशक्तौ वक्ष्यामि समाहिततया शृणु ॥ ५ ॥

यदि तर्पण नहीं करे, तो 'अनुकल्पेन पूजयामि' इतना बोलकर ही पूजन करे। यह **अतिलघुपूजा क्रम** है। यह भी करने में यदि अशक्त हो तो एकनिष्ठ चित्तसे सुनो, मैं बतलाता हूँ॥ ५॥

सामान्यार्घ्यमेकमेव पीठशक्तीश्च पूजयेत् ।
यथाशक्त्या समावाह्य सम्पूज्योक्तविधानतः ॥ ६ ॥

यदि इसमें भी अशक्त हो, तो केवल एक सामान्य अर्घ्यपात्र स्थापित कर पीठ

शक्तियों की पूजा, यथाशक्ति आवाहन और आगे बताये हुए क्रम से विधानपूर्वक अर्जन करे॥ ६॥

मूलां त्रिस्तिथिनित्यां च षोडशीं तत्परामपि।
त्रिगुरून् पादुकामङ्गत्रिकोणाखण्डदेवताः॥ ७॥

इसमें मूलदेवी की तीन बार, तिथिनित्या, षोडशी, महाषोडशी, गुरुत्रय षडङ्ग तथा त्रिकोण अखण्ड देवता॥ ७॥

अष्टादशेमाः सम्पूज्य चान्याश्चापि तु देवताः।
माला-मन्त्रोक्तनाम्ना तु प्रत्येकं कुसुमाक्षतैः॥ ८॥

इन **अठारह देवताओं की पूजा** तथा यथासंभव अन्य देवताओं की भी पूजा का विधान है। पुष्प एवं अक्षत से **मालामन्त्र द्वारा पूजा** करने से भी पूजा का फल प्राप्त होता है॥ ८॥

पूजयन्नपि पूजायाः फलं प्राप्नोत्यसंशयम्।
अलब्धे चोपकरणे मनसार्चां समाचरेत्॥ ९॥

ऊपर लिखित देवताओं की पूजा करते हुए निश्चित रूप से पूजा का फल प्राप्त होता है। पूजोपकरण नहीं मिलने पर मनसा पूजा करे॥ ९॥

माला-मन्त्रजपो वापि कर्तव्यः परमेश्वरि।
सर्वमेतद् बाह्यरते चान्तरोपासनेन तु॥ १०॥

अथवा हे परमेश्वरि, **मालामन्त्र** का ही जप करना चाहिए। ये सब बाह्य पूजा में संलग्न साधकों के लिए है, आन्तरोपासना करने वाले को तो॥ १०॥

आन्तरोपासना देवि तन्त्रेषु बहुधा स्थिता।
तत्र किञ्चित् प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु॥ ११॥

आन्तरोपासना तन्त्रों में बहुत प्रकार कही गई है। उनमें से यहाँ कुछ प्रकार को बतलाता हूँ, सावधान मन से सुनो॥ ११॥

सुषुम्णोर्ध्वे सुधारश्मि-कोटिकान्तिसमप्रभम्।
अधोमुखं गुरुस्थानं सहस्रदलशोभितम्॥ १२॥

सुषुम्ना के ऊर्ध्वभाग में अधोमुख श्वेत सहस्रदल कमल है, वहाँ गुरु का स्थान है। यह सुधारश्मि करोड़ों कान्ति से सम्पन्न है॥ १२॥

सुषुम्णाधो रक्तवर्णं सहस्रदलपङ्कजम्।
कुलाख्यं कर्णिकासंस्थं कुलकुण्डे स्थिता हि सा॥ १३॥

सुषुम्ना के नीचे रक्तवर्णी सहस्र दल कमल हैं। उसे कुल कहते हैं वही कर्णिका में कुलकुण्ड है॥ १३॥

कुण्डलीशक्तिरित्युक्ता तटित्कोटिनिभारुणा ।
अकुले पूर्णचन्द्राभः श्रीगुरुः परमेश्वरः ॥ १४॥

कुलकुण्ड में अत्यन्त तेजस्वी कुण्डली शक्ति विराजमान है। ऊर्ध्व कमल में पूर्णचन्द्र जैसी कान्तिवाले गुरु स्थित है॥ १४॥

अ-हकारात्मनावेतौ भावयित्वा व्यवस्थितौ ।
चतुर्दलाधारपद्मादधःस्थाद्विषुवाख्यकम् ॥ १५॥

इन दोनों को अर्थात् कुण्डलिनी एवं गुरु को 'अ' तथा 'ह' रूप मानकर भावना करे। मूलाधार चतुर्दल पद्म के नीचे विषुव नामक लाल दलवाला षट्दल कमल है॥ १५॥

षट्दलं रक्तवर्णं स्यात् तदाज्ञां द्योत-सप्तके ।
क्रमेण तां नयेद् देवीं गन्धाद्यैः पञ्चभिर्यजन् ॥ १६॥

वहीं से आज्ञा चक्र तक उस कुण्डलिनी को क्रमशः ले जाय। गन्ध आदि पञ्चोपचार, ताम्बूल और प्रणतिपूर्वक यजन करते हुए उसका ध्यान करे॥ १६॥

ताम्बूलं प्रणतिं चापि ततस्तु शिवसंयुताम् ।
ध्यायन् क्षणं तु विश्रम्य शून्यत्रमयौ स्मरेत् ॥ १७॥

ताम्बूल और प्रणतिपूर्वक यजन करते हुए सर्वप्रथम उसका ध्यान करे। वहाँ शिव से युक्त सामरस्य को प्राप्त मानकर क्षणभर विश्राम करके उन दोनों का शून्य त्रयमय (बिन्दु-विसर्ग रूप) स्मरण करे॥ १७॥

अ-हकारौ तत्र तौ तु तत्त्वाद्यन्तौ प्रकीर्तितौ ।
तत्त्वाद्यः शून्यरूपो वै विसर्गस्त्वन्त्य ईरितः ॥ १८॥

वहाँ वे दोनों अ-ह-कार तत्त्वाद्यन्त कहे गये हैं। इनमें तत्त्वाद्य शून्य रूप है तथा अन्त्य विसर्ग रूप है॥ १८॥

अ-हकारौ तु तस्माद् वै शून्यत्रितयरूपकौ ।
तदेव तेजस्त्रितयमहंरूपं हृदि स्मरेत् ॥ १९॥

अ-ह-कार तभी शून्य त्रितय रूप में आ जाता है, फिर उसी तेजस्त्रितय महारूप का हृदय में स्मरण करे॥ १९॥

एवमादिप्रकारेण भावयन् भवजिज्जनः ।
एवंविधोपासकानां न पूजादिर्विधीयते ।
एवं ते सर्वमाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २०॥

ऐसी भावना करने से मनुष्य संसार पर विजय पा लेता है। इस प्रकार की आन्तर उपासना करनेवालों के लिये पूजाविधि की अपेक्षा नहीं है। इस तरह, हे पार्वति, मैंने सब कुछ तुम्हें बतला दिया अब और क्या सुनना चाहती हो, बोलो॥ २०॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे संक्षेपपूजाविधिर्नाम षोडशस्तरङ्गः ॥ १६ ॥

इस तरह त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासासर्वस्व) में संक्षेपपूजाविधि नामक
सोलहवें तरङ्ग की व्याख्या समाप्त हुई ॥ १६ ॥

●

अथ सप्तदशस्तरङ्गः

(नैमित्तिकपूजा)

देव्युवाच

महादेव ब्रूहि विभो पूजां नैमित्तिकाभिधाम् ।
कृपया परया युक्तो यद्यहं तव वल्लभा ॥ १ ॥

देवी ने कहा—

हे महादेव, हे विभो ! परायुक्त **नैमित्तिक पूजा** क्या है ? इसे आप बतलायें क्योंकि मैं आपकी प्रियतमा हूँ, अत: मुझपर कृपा करे ॥ १ ॥

वृषध्वज उवाच

निशामय महादेवि वदतो मम तद्विधिम् ।
नित्यां नैमित्तिकां चापि साधकस्त्वाचरेत् सदा ॥ २ ॥

वृषभध्वज बोले—

इसका अनुष्ठान या कृत्य मैं बताता हूँ आप इसे सुनें। साधक को नित्य एवं नैमित्तिक दोनों प्रकार की पूजा करनी चाहिए ॥ २ ॥

अशक्तो नित्यपूजायां मालामन्त्रं पठेच्छिवे ।
नैमित्तिकां सर्वथैव कुर्यात् साधकपुङ्गवः ॥ ३ ॥

नित्यपूजा में अशक्त हो, तो केवल मालामन्त्र का ही पाठ करे तथा नैमित्तिक पूजा करे। साधक श्रेष्ठ के लिए यही उचित है ॥ ३ ॥

तत्रासमर्थो गुर्वाद्यैः कारयेदर्चनं बुधः ।
प्रतिमासं चैकवारमपि वार्चां तु कारयेत् ॥ ४ ॥

यदि उसमें भी असमर्थ हो, तो गुरु आदि से पूजा करवायें। बुद्धिमान व्यक्ति यदि उसमें भी अशक्त हो तो भी प्रतिमास में एक बार तो पूजा करवायें ही ॥ ४ ॥

तत्राप्यशक्तः षड्भिस्तु मासैर्वा कारयेत् तु ताम् ।
तत्रोक्तविधिना हेतुमुखैर्द्रव्यैस्तु भक्तितः ॥ ५ ॥

यदि उसमें भी अशक्त हो तो छह महीने में एक बार भक्तिपूर्वक हेतुमुख द्रव्यों से पूर्वोक्त विधि से पूजा करवायें ॥ ५ ॥

यथाशक्त्या पराशक्तेः पूजां वै कारयेत् सुधीः ।
आलस्यादथवा लोभात् षड्भिर्मासैरनर्चयन् ॥ ६ ॥

पराशक्ति की पूजा सुधीजनों को यथाशक्ति करनी या करानी चाहिए, क्योंकि जो आलस्य या लोभवश छह महीने में एक बार भी पूजा नहीं करता या करवाता ॥ ६ ॥

पशुर्भवेत् तस्य सङ्गं साधकः परिवर्जयेत् ।
पञ्चपर्वयुगाद्यादौ तथा पुण्याधिके दिने ॥ ७ ॥

वह पशु हो जाता है, साधक को उसके सम्पर्क में नहीं रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रथम दिन तथा पुण्याधिक दिन में पर्वपूजायें भी करणीय हैं ॥ ७ ॥

तत्तद्द्रव्यैः पूजयेद् वै कुलपर्वस्वपीश्वरि ।
समा तिथिः कुलतिथिर्द्वितीया दशमी तथा ॥ ८ ॥

हे ईश्वरि, कुलपर्वों पर भी उन द्रव्यों से पूजा करनी चाहिए। समातिथि, कुलतिथि, द्वितीया और दशमी तिथि ॥ ८ ॥

कुलाकुलतिथिः षष्ठी चान्या स्यादकुला तिथिः ।
कुलवारौ भौमशुक्रौ कुलाकुलमयो बुधः ॥ ९ ॥

षष्ठी कुलाकुल तिथि है, अन्या तिथियाँ अकुला कही गई है। मंगल और शुक्र कुलदिन माने गये हैं। बुध कुल और अकुल दिन है ॥ ९ ॥

कुलं स्यात् समनक्षत्रं रौद्रवारुणमूलभम् ।
कुलाकुलं चाभिजिच्च तथाऽन्यदकुलं स्मृतम् ॥ १० ॥

रौद्र, वारुण और मूल नक्षत्र समनक्षत्र के रूप में कुल होते हैं। अभिजित् कुलाकुल होते हैं। अन्य सभी अकुल कहे गये हैं ॥ १० ॥

कुलतिथ्यादिकं देवि कुलपर्वप्रकीर्तितम् ।
कृष्णत्रयोदशी शुक्ले तृतीया दशमी तथा ॥ ११ ॥

कुलतिथ्यादि को हे देवि, कुलपर्व कहा जाता है। कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी, शुक्लपक्ष की तृतीया और दशमी तिथि ॥ ११ ॥

असितद्वादशी चामा शुक्लषष्ठी सितेतरा ।
चतुर्दशी तथा शुक्लनवमी कृष्णपञ्चमी ॥ १२ ॥

कृष्ण पक्ष की द्वादशी, अमावस्या, शुक्ल षष्ठी, कृष्ण चतुर्दशी तथा शुक्ल नवमी और कृष्ण पञ्चमी ॥ १२ ॥

पूर्णमासी शुक्लगता चतुर्थी कृष्णपक्षगा ।
एकादशीति चैत्रादिमासेष्वेकैकशो भवेत् ॥ १३ ॥

शुक्लपक्ष पूर्णमासी, कृष्णपक्ष की चतुर्थी एवं एकादशी, चैत्रादि महीने में एक एक कर होते हैं ॥ १३ ॥

एतानि देवीपर्वाणि पूजयित्वा महाफलम् ।
कुलपर्वस्वपि तथा स्नानं दानं जपो व्रतम् ॥ १४ ॥

हे देवि, ये पर्व कहलाते हैं। इनमें देवीपूजा कर लोग महाफल प्राप्त करते हैं। कुल पर्व पर भी स्नान, दान, जप और व्रत का महत्त्व है ॥ १४ ॥

पूजनं चाप्यनन्तं स्यात् त्रिपुराप्रीतिकारकम् ।
नित्यपूजां दिवा कुर्याद् रात्रौ नैमित्तिकीं तथा ॥ १५ ॥

इस अवसर पर पूजा का अनन्त फल है। यह पूजा भगवती त्रिपुरा के लिये, प्रीतिकारक है। दिन में नित्य पूजा तथा रात में नैमित्तिक पूजा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

दिवापर्वसमायोगे दिवाऽपि परमेश्वरि ।
काले प्राप्ते नित्यपूजां पश्चात् कुर्यादगाङ्गजे ॥ १६ ॥

हे परमेश्वरि, दिवापर्व का योग हो तो दिन में भी पूजा कर सकते हैं। समान काल होने पर पहले नित्यपूजा और तदनन्तर नैमित्तिकपूजा करे ॥ १६ ॥

एवं सन्ध्यादिकं सर्वं मध्येऽन्त्ये वा समाचरेत् ।
मध्ये त्वावश्यके प्राप्ते समाप्यैकाङ्गमीश्वरि ॥ १७ ॥

इसी बीच सन्ध्या आदि का समय आ जाए तो मध्य में अथवा एक अंगपूर्ण करके अथवा अन्त में उन्हें सम्पन्न करना चाहिए ॥ १७ ॥

पात्रादिस्थापनारूपं कुर्यादावश्यकक्रियाम् ।
एकदा पर्वणां योगे चाङ्गाधिक्ये च कर्मणाम् ॥ १८ ॥

पात्रादिस्थापनारूप आवश्यक क्रिया करे। एक साथ एकाधिक पर्वों का योग आने पर कर्मों का ॥ १८ ॥

उल्लिख्य तु निमित्तानि सङ्कल्पे त्वखिलानि तु ।
आवर्त्तयेत् पूजनं वै तत्तदङ्गेन मिश्रितम् ॥ १९ ॥

निमित्तों का सङ्कल्प में उल्लेख करके घूम घूमकर उनके अङ्गों के साथ मिश्रित पूजा करे ॥ १९ ॥

तदभावे तु चैकेन पूजनेन कृतार्थता ।

गुरु-शक्त्यादि-पूजा तु सर्वान्ते भवतीश्वरि ॥ २० ॥

इसके अभाव में एकक्री पूजा से भी कृतार्थता होती है। हे परमेश्वरि, पूजा के अन्त में गुरु, शक्ति-सुवासिनी आदि की पूजा करे॥ २०॥

पूर्णिमायां चैत्रमासि त्रिपुरां दमनैर्यजेत्।
पूजयेद् दमनं देवि तथैव कुसुमाक्षतैः ॥ २१ ॥

इसके बाद चैत्र पूर्णिमा में दमनकार्पण से त्रिपुरा का यज्ञ करे। हे देवि, पुष्प और अक्षत से दमन की पूजा करनी चाहिए॥ २१॥

'शिवप्रसादसम्भूत! अत्र सन्निहितो भव ।
शिवकार्ये समुच्छिद्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया' ॥ २२ ॥

शिव की कृपा से उत्पन्न, यहाँ समीपवर्ती हो, शिवकार्य में समुच्छेदन कर शिव की आज्ञा से तुम नेतव्य हो॥ २२॥

रतिकामौ तत्र यजेद् यथाविभवविस्तरम् ।
समूलं वा तथा गुच्छमाहरेदस्त्रमन्त्रतः ॥ २३ ॥

वहाँ रति और काम की यथाविभव पूजा करे। अस्मयन्त्र से जड़सहित अथवा फूलों के गुच्छे का आहरण करे॥ २३॥

अलाभे तु क्रयक्रीतं सम्पूज्याहृत्य पूजयेत् ।
पात्रे संस्थाप्य सम्पूज्य नववस्त्रेण छादयेत् ॥ २४ ॥

यदि यह उपलब्ध न हो, तो इसे खरीदकर ले आयें और इसकी पूजा करे। किसी पात्र में इसे रखकर इसकी पूजा कर इसे नये वस्त्र से ढँक दे॥ २४॥

जपेदघोरमन्त्रेण धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
अघोरे वाक्तथा घोरे ह्रीं सर्वतः सर्व शर्वे-
भ्यो घोरतरे श्री नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः
ह्रीं श्रीमादौ वेदमुखं प्रोक्षयेदिति मन्त्रतः ॥ २५-२६ ॥

फिर, अघोर मन्त्र का जप करे, धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करे। अघोर हो वा घोर—"ह्रीँ सर्वतः सर्वशर्वेभ्यो घोरतरे श्रीँ नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ह्रीँ श्रीँ" इस मंत्र से वेदमुख का प्रोक्षण करे॥ २५-२६॥

दीक्षोक्तवत्तु कलशं पूर्णपात्रेण संयुतम् ।
तण्डुलैर्भरितं तत्र पूजयेत्त्रिपुराम्बिकाम् ॥ २७ ॥

दीक्षा में बतलाये गये ढंग से पूर्णपात्रयुक्त कलश की स्थापना करे। पूर्णपात्र को चावल से भर दे। उस कलश में अम्बा की पूजा करे॥ २७॥

वसुपत्रं कर्णिकायां नवयोनिं च बाह्यतः ।

भूपुरं सिन्दूरकृतं तत्र तत् कलशं क्षिपेत् ॥ २८ ॥

कर्णिका में वसुपत्र बाहर से नवयोनि तथा सिन्दूर से अलङ्कृत भूपुर को इस कलश में डाल दे॥ २८॥

तद्दक्षिणेऽष्टपत्रस्य कर्णिका शोकगर्भिता ।
नानावर्णैः सुरुचिरा तरुमूले त्रिकोणकम् ॥ २९ ॥

उससे दायें अष्टपत्र की शोकगर्भिता कर्णिका को अनेक रङ्गों में रँग दे उस रुचिर वृक्ष की जड़ में एक त्रिकोण का निर्माण करे॥ २९॥

त्रिकोणे कामदेवं तु रति-प्रीतियुतं यजेत् ।
पूजयेत् त्रिपुरां तद्वत् कलशे पर्वतात्मजे ॥ ३० ॥

हे पार्वति, उस त्रिकोण में रतिप्रीतियुक्त कामदेव की पूजा करे। उसी तरह कलश में भगवती त्रिपुरा की भी पूजा करे॥ ३०॥

यन्त्रादावपि सम्पूज्य सर्वत्र दमनैर्यजेत् ।
पञ्च-पूजादिहोमाद्यं ततो निर्वर्तयेत् क्रमात् ॥ ३१ ॥

यन्त्र आदि में भी पूजा कर सर्वत्र दमन की पूजा करे। इसके बाद पञ्चपूजा कर होमादि को क्रमशः निवृत्त हो॥ ३१॥

तथाग्निं बलिदेवाँश्च गुर्वाद्यं दमनैर्यजेत् ।
पूजान्ते तस्य निर्माल्यं धारयेन्मूर्ध्नि भक्तितः ॥ ३२ ॥

उसी तरह अग्नि, बलिदेव और गुरु आदि की दमन से पूजा करे। पूजा की समाप्ति पर उसका निर्माल्य सिर पर धारण करे॥ ३२॥

सवस्त्र-दक्षिणायुक्तं कलशं यत् प्रपूजितम् ।
दद्यात् तत्तु सुवासिन्यै ब्राह्मणायाथवा शिवे ॥ ३३ ॥

हे शिवे! वस्त्र और दक्षिणा के साथ कलश की जो पूजा की है उसे ब्राह्मण अथवा सुवासिनी को दे देना चाहिए॥ ३३॥

चैत्रादिज्येष्ठपर्यन्तं नागाङ्केन्दुदिनेऽथवा ।
दमनैः पूजयेद् देवीं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ३४ ॥

चैत्र पूर्णिमा को दमनकार्पण का विधान है। यह पूजा चैत्र से ज्येष्ठ मास तक होती है। यह पूजा सप्तमी, नवमी अथवा प्रतिपदा के दिन होती है। इसमें दमनपूजा के साथ भक्ति और श्रद्धा से युक्त होकर देवी की पूजा करनी चाहिए॥ ३४॥

पवित्रैस्त्रिपुरामर्चेच्छ्रवणे प्रोक्तरात्रिषु ।
आश्विनान्तेषु वा पूजां पवित्रैः पर्वतात्मजे ॥ ३५ ॥

ऊपर बतलाई गयी श्रवण की रातों में पवित्रों (दर्भों) से देवी की पूजा करनी चाहिए अथवा हे पर्वतपुत्रि, अश्विनान्त में पवित्रों से यह पूजा करनी चाहिए॥ ३५॥

सूवर्ण-रौप्य-कौशेय-कार्पास-शण-मुञ्जकैः ।
दर्भैर्निर्मितसूत्रेण पवित्रं तु विधीयते ॥ ३६ ॥

सोना, चाँदी, रेशम, रूई, सन (पटसन) मूँज एवं कुशों से निर्मित सूत से पवित (जनेऊ) बनाये जाते हैं॥ ३६॥

प्रोक्तेषु शणमुञ्जादि वनस्थानामुदीरितम् ।
भूभुजां तु सुवर्णादि सर्वेषां पट्टसूत्रजम् ॥ ३७ ॥

पूर्व निर्धारित में सन-मुञ्जादि वनवासियों के लिये यज्ञोपवीत निर्धारित किये गये हैं। राजाओं के लिए सोने-चाँदी के और सबके लिये, पट्टसूत्र कहे गये हैं॥ ३७॥

रक्तकौशेयसूत्रोत्थं त्रिपुरा-परमप्रियम् ।
वितस्तित्रितयं मालाकारवद्वेष्टयेत् क्रमात् ॥ ३८ ॥

लाल रेशम के धागे से बने यज्ञोपवीत भगवती त्रिपुरा को परमप्रिय है। यह तीन वित्ते के माला के आकार के गले में तीन धागे का लेना चाहिए॥ ३८॥

तदर्धान्यूनमपि वा वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।
तत्रान्त्यसूत्रेण समप्रदेशे ग्रन्थयेद् दृढम् ॥ ३९ ॥

वित्त की शठता छोड़कर उससे आधे या कम भी अन्तिम सूत्र से समप्रदेश में मजबूत गाँठ डाल दे॥ ३९॥

संयोज्य सूत्रान्त्ययुगं ग्रन्थयेच्चरमं दृढम् ।
ग्रन्थिभिः षणवतिभिस्तावत्सूत्रैर्विनिर्मितम् ॥ ४० ॥

अन्तिम दोनों सूत्रों को मिलाकर अन्तिम मजबूत गाँठ दे कर छियानवे धागे से उस सूत्र का निर्माण करे॥ ४०॥

एकं षोडशरूपं तु द्वयमेकं तदात्मकम् ।
तत्तदावृतिसंख्यानि सामान्यान्यानि पार्वति ॥ ४१ ॥

हे पार्वति! एक का सोलह स्वरूप है। फिर दो में एक है। वह तदात्मक स्वरूप में है। उसकी संख्या आवृत्तिपरक है। अन्य सामान्य है॥ ४१॥

बलीनां तु त्रिसंख्यानि गुर्वादीनामपीश्वरि ।
अष्टगन्धेनानुघृष्य पात्रे शुद्धेऽधिवासयेत् ॥ ४२ ॥

हे ईश्वरि! गुरु आदि को तीन बलियाँ दे फिर अष्टगन्ध को घिसकर शुद्ध पात्र में अधिवासित अर्थात् प्राणप्रतिष्ठा करे॥ ४२॥

महत् पवित्रं कलशे ततः षोडशरूपकम् ।

चक्रराजे सुवासिन्यामग्नावेकात्मकं तथा ॥ ४३ ॥

विशेष एवं महत्त्वपूर्ण पवित्र कलश में तथा अग्नि में एकात्मक कर चक्रराज एवं सुवासिनी की पूजा करे ॥ ४३ ॥

अन्यानि तत्तदावृत्तौ बल्यादिष्वपि वै क्रमात् ।
पूर्ववत् कलशं दद्यात् पवित्रैरिति पूजनम् ॥ ४४ ॥

अन्य को उस आवृत्ति में बली आदि में भी पहले की तरह क्रम से कलश में डाल दे और पवित्र अर्थात् दर्भ से पूजा करे ॥ ४४ ॥

एवमन्येषु तदद्रव्यैर्देवतामग्निमेव च ।
सुवासिनीसामयिकानर्चयेद् विधिवच्छिवे ॥ ४५ ॥

इसी तरह अन्य में भी उन द्रव्यों से देवता, अग्नि, सुवासिनी और सामयिकों की पूजा करे ॥ ४५ ॥

आश्विनशुक्लप्रतिपत्समारभ्य महेश्वरि ।
नवरात्रव्रतं कुर्यात् तद्विधानं निगद्यते ॥ ४६ ॥

हे महेश्वरि, आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से लेकर नौ रात का अर्थात् **नवरात्र व्रत** करे। हे महेश्वरि, उसके व्रत का विधान बतलाता हूँ ॥ ४६ ॥

सम्पूज्याद्यतिथौ कुर्याज्जपं होमं शते शतम् ।
द्वितीयादौ द्वित्रिशतजपहोमौ समाचरेत् ॥ ४७ ॥

नवरात्रव्रतविधान : प्रतिपदा के दिन भगवती की पूजाकर सौ सौ की संख्या में जप एवं होम करे। द्वितीयादि तिथि में दो सौ, तीन सौ बार जप एवं होम करे ॥ ४७ ॥

नवम्यामधिकं चैकं शतं स्याज्जपहोमयोः ।
एका सुवासिनी तद्वदधिका पूजने भवेत् ॥ ४८ ॥

नवमी में एक अधिक सौ जप और होम होता है। इसी तरह एक अधिक सुवासिनी का पूजन हो ॥ ४८ ॥

दुर्गामुमां तथा गौरीं पद्मामपि रमां तथा ।
लक्ष्मीं च भारतीं तद्वन्मेधामपि ततः परम् ॥ ४९ ॥

दुर्गा, उमा, गौरी, पद्मा, रमा, लक्ष्मी, भारती और उसी तरह मेधा भी ॥ ४९ ॥

सरस्वतीं नवम्यां तु महात्रिपुरसुन्दरीम् ।
पूजयेत् तु सुवासिन्यां नवम्यन्तं यथाक्रमात् ॥ ५० ॥

इसके बाद सरस्वती की पूजा करे। नवमी में महात्रिपुर सुन्दरी को पूजना चाहिए और नवमी के अन्त में यथाक्रम सुवासिनी पूजें ॥ ५० ॥

कुमार्यां वापि तद्वत्तु पृथङ्नैवेद्यमाचरेत् ।
मुद्गैस्तिलैस्तथा माषैर्हरिद्राद्यैर्गुडैरपि ॥५१॥

उसी तरह कुमारी के लिए भी अलग नैवेद्य रक्खें, मूँग, तिल, उड़द, हल्दी, गुड़ आदि भी॥५१॥

दधिभिश्च घृतैर्दुग्धैः संस्कृतान्नैश्च पायसैः ।
आवृत्त्यन्तं तु निर्वर्त्य नैवेद्यस्य जपान्ततः ॥५२॥

आवृत्ति के अन्त में जप समाप्त कर दही, घी, दूध, पका अन्न, पायस प्रभृति के नैवेद्य चढ़ाये॥५२॥

शतं जपेत्तु होमान्ते शतधा च पृथग् हुनेत् ।
एवमेव द्वितीयादौ तथैव तु सुवासिनी ॥५३॥

होम के अन्त में सौ बार मूलमंत्र का जप करे और इससे अलग सौ भागों में हवन करे। इसी तरह द्वितीयादि में तथा सुवासिनी पूजा में करे॥५३॥

पूजाङ्गतोऽन्या सम्पूज्या चालाभे पूजयेत् तु ताम् ।
इयं पूजा महापुण्या त्रिपुराप्रीतिकारिणी ॥५४॥

पूजा के अङ्ग से भिन्न की भी पूजा करनी चाहिए। इनके न ही मिलने पर उस भगवती को ही पूजे। यह पूजा त्रिपुरा को अत्यन्त प्रिय है तथा महत् पुण्यफल देने वाली हैं॥५४॥

एतां विना हीयते वै त्रिपुरोपासकः शिवे ।
कार्तिके तु प्रकुर्वीत दीपपूजामगात्मजे ॥५५॥

हे शिवे, इसके बिना त्रिपुरा के उपासक हीन होता है। हे पार्वति, कार्त्तिक महीने में दीपपूजा करनी चाहिए॥५५॥

घृतपक्वपिष्टजेषु डमरु-प्रतिभेषु वै ।
पात्रे तु दीपान् प्रज्वाल्य क्रमेण तु समर्पयेत् ॥५६॥

आटे के बने घी में पकाये डमरू आकार के पात्र में दीपों को क्रमशः जलाकर समर्पित करे॥५६॥

अभ्यर्च्योक्तविधानेन यन्त्रराजं महेश्वरि ।
आवृत्त्यन्तं समभ्यर्च्य ततो दीपान् समर्पयेत् ॥५७॥

कहे गये विधान से हे महेश्वरि, यन्त्रराज की पूजा कर तथा आवृति के अन्त में उसकी भी पूजाकर दीपों को समर्पित करे॥५७॥

दीपोपचारमन्त्रेण तत्तन्नामान्ततोऽर्पयेत् ।
अवृत्तौ पूजितानां तु क्रमेण प्राणवल्लभे ॥५८॥

हे प्राणवल्लभे, आवृत में पूजित देवताओं के नामोच्चार के अन्त में दीपोपचार मंत्रसे क्रमशः पूजित दीप समर्पित करे॥ ५८॥

नागनन्देन्दुसंख्याता दीपाः स्युर्मुख्यकल्पकाः।
सकृत् प्रपूजनादेवं वाञ्छितार्थान् समा लभेत्॥५९॥

यहाँ पूजा में १९८ दीपक-समर्पण मुख्यकल्प है, थोड़ी पूजा करने पर भी अर्चक को अभिलषित फल की प्राप्ति होती है॥ ५९॥

एवं प्रोक्त-निमित्तेषु कुर्यान्नैमित्तिकार्चनम्।
अशक्तः सर्वपूजायां दमनं च पवित्रकम्॥६०॥

इस तरह बतलाये गये निमित्तों में नैमित्तिक अर्चन करे। यदि यह सब नहीं कर सके, तो नवरात्र में अथवा नौ दिन के अनुष्ठान में दमनक और पवित्र अर्पण कर ले॥ ६०॥

पूजयेन्नवरात्रञ्च सर्वपूजा-फलोदयम्।
एतत् त्रयमकृत्वा तु न भजेदखिलं फलम्।
एतत्ते सर्वमाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥६१॥

इन तीनों अनुष्ठानों को किए बिना, अर्चन का सम्पूर्ण फल नहीं मिलता। ये बातें तो मैंने सुना दी, अब आगे हे पार्वति, तुम क्या सुनना चाहती हो बोलो॥ ६१॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे नैमित्तिकपूजाकथनं नाम सप्तदशस्तरङ्गः॥ १७॥

इस तरह त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासासर्वस्व) में नित्य एवं नैमित्तिक पूजाविधान नामक सत्रहवें तरङ्ग की व्याख्या सम्पन्न हुई॥ १७॥

●

अथाष्टादशस्तरङ्गः

(मालामन्त्रः)

देव्युवाच

देव देव महेशान परिपूर्ण सनातन।
पुरा यः सूचितो मालामन्त्रस्तं कथयस्व मे।
खड्गसिद्धिप्रदं नृणां महासाम्राज्यदायकम्॥ १॥

देवी ने कहा—

हे देवों के देव महादेव, हे परिपूर्ण सनातन! आपने पहले जिस मालामन्त्र का वर्णन किया है वह मुझे बताइये। यह मन्त्र खड्गसिद्धिदाता है तथा मनुष्यों के लिए महा साम्राज्यदायक है॥ १॥

ईश्वर उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
तस्य श्रवणमात्रेण ललिता प्रीतिमाप्नुयात्॥ २॥

ईश्वर ने कहा—

हे देवि, तुमने जो पूछा है, उसका उत्तर मैं देता हूँ, इसे सुनने मात्र से ललिता की प्रीति उसे प्राप्त होती है॥ २॥

इदं रहस्यं तन्त्रेषु गोपितं परमार्थदम्।
न वक्तव्यं कस्यचिद् वा लोभान्मोहादपीश्वरि॥ ३॥

परमार्थ देनेवाला यह रहस्य तन्त्रों में गुप्त रक्खा गया है। हे परमेश्वरि, लोभवश या मोहवश यह किसी को नहीं बतलाना चाहिए॥ ३॥

मालामन्त्रं महापुण्यं जप्त्वा सिद्धिमवाप्नुयात्।
ऋषिस्तु वरुणादित्य उपस्थाधिष्ठितात्मकः॥ ४॥

मालामन्त्र महापुण्यप्रद है। इसे जपकर लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं। इस मन्त्र के ऋषि वरुणादित्य हैं, जो अपने स्वभाव से शरीर के मध्य भाग अवस्थित हैं॥ ४॥

गायत्रीछन्द इत्युक्तं ललिता देवतेरिता।
मूलवत् तु प्रविन्यस्य ध्यायेत्तां परदेवताम्॥ ५॥

इस मन्त्र का छन्द गायत्री है तथा देवता ललिता है। मूल मंत्र की तरह न्यास कर उस परदेवता का ध्यान करना चाहिए॥ ५॥

पद्मरागप्रतीकाशां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्।
नवरत्नलसद्भूषां भूषितां पादमस्तकाम्॥ ६॥

पद्मराग अर्थात् लाल लाल माणिक्य की तरह भव्य, तीन आँखों वाली, शिर पर विराजित चन्द्रछटा, शिर से पैर तक नवरत्न के आभूषणों से भूषित॥ ६॥

पाशाङ्कुशौ पुष्पशरान् दधतीं पुण्ड्रचापकम्।
पूर्णतारुण्य-लावण्य-तरङ्गितकलेवराम्॥ ७॥
स्वसमानाकार-वेष-कामेशाश्लेषसुन्दरीम्।
ध्यात्वैवं मानसैर्देवीमाराध्य प्रपठेत् ततः॥ ८॥

हाथों में पाश, अङ्कुश, पुष्पशर और श्वेत कमल के चाप धारण किये पूरी जवानी

के सौन्दर्य से तरङ्गित शरीरवाली देवी का और अपने ही तरह अतीव आकर्षक शरीरवाले कामेश महादेव से लिपटी महादेवी का ध्यान कर मन से देवी की आराधना करने के बाद यह मन्त्र पढ़े॥ ७-८॥

अथ मालामन्त्रमिह प्रवक्ष्यामि शृणु प्रिये।
वाग्लज्जा श्रीः समुच्चार्य तारं हृदयमेव च॥ ९॥

यहाँ शिव पार्वती से कहते हैं। हे प्रिये, अब यहाँ मैं **मालामन्त्र** बतलाता हूँ, आप सुनो। (यहाँ मालामन्त्र से तात्पर्य 'खड्गमाला' है।) 'वाग्लज्जा श्रीः' का हृदय में ऊँचे स्वर से उच्चारण करे॥ ९॥

त्रिपुरा-शब्दतः सुन्दरीति प्रोक्त्वा ततः परम्।
हृदयाच्छिरसस्तद्वच्छिखा-कवचनेत्रतः॥ १०॥

त्रिपुरा शब्द से सुन्दरी तक का उच्चारण कर, उसके बाद हृदय के शिर तक उसी तरह शिखा से कवच नेत्र तक॥ १०॥

अस्त्राद् देवि समालिख्य कामेश्वरि भगात् ततः।
मालिन्यथ नित्यक्लिन्ने भेरुण्डे वह्निवासिनि॥ ११॥

हे देवि, अस्त्र से लिखकर कामेश्वरि, उसके बाद भग से, मालिनि, नित्यक्लिन्ने, भेरुण्डे, वह्निवासिनि॥ ११॥

महाविद्येश्वरि शिवदूति वै त्वरिते कुलात्।
सुन्दर्यथ तु नित्ये नीलपताके च तत्परम्॥ १२॥

महाविद्येश्वरि, शिवदूति, ज्वरिते, कुल से, सुन्दरि, नित्ये, नीलपताके, और उसके बाद॥ १२॥

विजये सर्वतो मङ्गले ज्वालान्ते तु मालिनि।
चित्रे महान्ते नित्ये च परमेश्वर-शब्दतः॥ १३॥

विजये, सर्वथा मङ्गलदायिनि, ज्वालान्ते, मालिनि, चित्रे, महान्ते, और नित्ये, और परमेश्वर शब्द से॥ १३॥

परमेश्वरि मित्रीशषष्ठीशोड्डीशशब्दतः।
चर्यानाथाच्च लोपामुद्रागस्त्यात् कालतापनात्॥ १४॥

परमेश्वरि, मित्रीश, षष्ठीश, उड्डीश शब्द से, चर्यानाथ से अगस्त्य से लोपामुद्रा, कालतापन से॥ १४॥

धर्माचार्यान्मुक्तकेशीश्वराद् दीपकलादिकात्।
नाथान्मयि पठित्वा तु विष्णोरथ प्रभाकरात्॥ १५॥

धर्माचार्य से मुक्तकेशी, ईश्वर से दीपकला, 'नाथान्मयि' पढ़कर प्रभाकर से विष्णो॥ १५॥

तेजसश्च मनोजाच्च कल्याणादपि रत्नतः।
वासुशब्दाद् देव मयि श्रीरामानन्दतो मयि॥ १६॥

रत्न से, कल्याण से भी तेज और मनोज, वासु शब्द से देव, मुझसे श्रीरामानन्द से मुझ में॥ १६॥

अणिमा-लघिमाशब्दान्महिमेशित्वशब्दतः।
वशित्व-प्राकाम्य-भुक्तीच्छाशब्दात् प्राप्तिशब्दतः॥ १७॥

लघिमा शब्द से अणिमा, ईशत्व शब्द से महिमा, वशित्व, प्राकाम्य, प्रापि एवं भुक्तीच्छा शब्द से॥ १७॥

सर्वकामपदात् सिद्धे ब्राह्मि माहेश्वरीति च।
कौमारि वैष्णवि वाराहि माहेन्द्रि च ततः परम्॥ १८॥

सर्वकामपद से सिद्धि, ब्राह्मि, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इसके बाद माहेन्द्री॥ १८॥

चामुण्डे च महालक्ष्मि सर्वशब्दान्ततः पठेत्।
संक्षोभिणि च विद्राविण्याकर्षिणी वशङ्करि॥ १९॥

चामुण्डे, महालक्ष्मी सभी शब्दों के अन्त में पढ़ें, संक्षोभिणी और विद्राविणी, आकर्षिणी, और वशङ्करि॥ १९॥

उन्मादिनि महाशब्दादङ्कुशे खेचरीति च।
बीजे योनौ त्रिखण्डे च त्रैलोक्यान्मोहनादथ॥ २०॥

उन्मादिनी, महाशब्द से अंकुशा, खेचरी, बीजे, योनौ, त्रिखण्डे, त्रैलोक्यमोहन से॥ २०॥

चक्रस्वामिनि तद्वत्तु प्रकटादपि योगिनि।
कामाद् बुद्धेरहङ्काराच्छब्दात् स्पर्शाच्च रूपतः॥ २१॥

चक्रस्वामिनि, उसी तरह प्रकट से योगिनी, काम से बुद्धि, अहंकार शब्द से स्पर्श से, और रूप से॥ २१॥

रसाद् गन्धाच्चित्तधैर्यस्मृतिनामाच्च बीजतः।
आत्मामृतशरीराच्चाकर्षिणीति पठेत् क्रमात्॥ २२॥

रस और गन्ध से चित्त का धैर्य और स्मृति नाम से और बीजाक्षर से आत्मा, अमृत और शरीर से आकर्षिणी, इन्हें क्रम से पढ़े॥ २२॥

सर्वाशापरिपूराच्च चक्रस्वामिनीति वै।

गुप्तशब्दाद्योगिनीति ततोऽनङ्गपदात् क्रमात् ॥ २३ ॥

हर तरह की आशाओं की पूरिका चक्रस्वामिनी हैं। योगिनी गुप्तपदक हैं। इसके बाद अनङ्ग पद से क्रमशः ॥ २३ ॥

कुसुमे मेखले तद्वन्मदने मदनातुरे।
रेखे वेगिन्यङ्कुशे च मालिनीति च सर्वतः ॥ २४ ॥

कुसुमे, मेखले, उसी तरह मदने, मदनातुरे, रेखे, वेगिनी, अङ्कुशे, मालिनी, और सर्वतः ॥ २४ ॥

संक्षोभणात्तु चक्रान्ते स्वामिनीति च गुप्ततः।
तरयोगिनि पश्चात्तु सर्वशब्दान्ततः क्रमात् ॥ २५ ॥

संक्षोभणा, चक्रान्ते, स्वामिनी, गुप्ता, तरयोगिनि, बाद में क्रमशः सर्वशब्दान्ते ॥ २५ ॥

संक्षोभिणि च विद्राविण्याकर्षिणि च वै ततः।
आह्लादिनि च सम्मोहिनि स्तम्भिनि च जृम्भिणि ॥ २६ ॥

संक्षोभिणि, विद्राविणि, आकर्षिणि, उसके बाद आह्लादिनि, सम्मोहिनि, स्तम्भिनि और जृम्भिणि ॥ २६ ॥

वशङ्करि रञ्जिनि चोन्मादिन्यर्थाच्च साधिनि।
सम्पत्तिपूरणि मन्त्रमयि द्वन्द्वक्षयङ्करि ॥ २७ ॥

वशङ्करि, रञ्जिनि, उन्मादिनि और अर्थात् साधिनि, सम्पत्तिपूरणि, मन्त्रमयि, इन्द्रक्षयङ्करि ॥ २७ ॥

सर्वसौभाग्यदायाच्च कचक्रस्वामिनीति वै।
सम्प्रदायाद् योगिनि च सर्वशब्दान्ततः क्रमात् ॥ २८ ॥

सर्वसौभाग्यदा, आयात्, कचक्रस्वामिनि, सम्प्रदाय से योगिनि, और क्रम से सर्व शब्दान्ततः ॥ २८ ॥

सिद्धिप्रदे च सम्पत्प्रदे प्रियङ्करि वै ततः।
मङ्गलात् कारिणि तथा कामशब्दात् प्रदे तथा ॥ २९ ॥

सिद्धिप्रदे, सम्पत्प्रदे, उसके बाद प्रियङ्करि, मङ्गलकारिणि, तथा कामप्रदे ॥ २९ ॥

दुःखाद् विमोचनि तथा मृत्युप्रशमनीति च।
विघ्नान्निवारण्यङ्गात् तु सुन्दरीति ततः परम् ॥ ३० ॥

दुःखविमोचिनि, तथा मृत्युप्रशमनि, विघ्नान्निवारिणि, इसके बाद अङ्गसुन्दरि ॥ ३० ॥

सौभाग्यदायिनि तथा सर्वार्थात् साधकान्ततः।
चक्रस्वामिन्यथ कुलोत्तीर्णयोगिनि वै ततः ॥ ३१ ॥

सौभाग्यदायिनि, सर्वसाधकान्ततः, चक्रस्वामिनि, इसके बाद कुलोतीर्णयोगिनि ॥ ३१ ॥

क्रमात् सर्वपदान्ते तु ज्ञे शब्दे च ततः परम् ।
ऐश्वर्याच्च प्रदे ज्ञानमयि व्याधिविनाशनि ॥ ३२ ॥

क्रमशः सर्व ज्ञे शब्द का प्रयोग करना चाहिए। उसके बाद ऐश्वर्यप्रदे, ज्ञानमयि, और व्याधिविनाशिनि ॥ ३२ ॥

आधाराच्च स्वरूपे वै पापादपि हरे ततः ।
आनन्दमयि रक्षास्वरूपिणीप्सिततः प्रदे ॥ ३३ ॥

आधारस्वरूपे, पापहरे, आनन्दमयि, रक्षास्वरूपिणि, इप्सितप्रदे ॥ ३३ ॥

सर्वरक्षाकराच्चक्रस्वामिनीति ततः परम् ।
निगर्भाद् योगिनि तथा वशिन्यथ ततः परम् ॥ ३४ ॥

सर्वरक्षाकरा, चक्रस्वामिनि, निगर्भयोगिनि, तथा वशिनि ॥ ३४ ॥

कामेश्वरि मोदिनि च विमले चारुणे ततः ।
जयिनि सर्वेश्वरि च कौलिनीति च सर्वतः ॥ ३५ ॥

कामेश्वरि, मोदिनि, विमले, चारुणे, जयिनि, सर्वेश्वरि, कौलिनि, सब ओर से ॥ ३५ ॥

रोगान्ते हरचक्रात् स्वामिनि रहस्ययोगिनि ।
वाणिन्यथ चापिनि च पाशिन्यङ्कुशिनि ततः ॥ ३६ ॥

रोगान्ते, हरचक्रस्वामिनि, रहस्ययोगिनि, वाणिनि, चापिनि, पाशिनि, इसके बाद अङ्कुशिनि ॥ ३६ ॥

महान्ते कामेश्वरीति वज्रेश्वरि भगान्ततः ।
मालिनि श्रीसुन्दरि च सर्वसिद्धिप्रदादथ ॥ ३७ ॥

महान्ते, कामेश्वरि, व्रजेश्वरि, भगमालिनि, श्रीसुन्दरि, सर्वसिद्धिप्रदा ॥ ३७ ॥

चक्रस्वामिन्यतिरहस्याद् योगिनि च श्रीद्वयम् ।
महाभट्टारिके सर्वानन्दान्ते मयचक्रतः ॥ ३८ ॥

महान्ते, कामेश्वरि, व्रजेश्वरि, भगमालिनि, श्रीसुन्दरि, सर्वसिद्धिप्रदा ॥ ३८ ॥

स्वामिन्यथ परापररहस्याद् योगिनी ततः ।
त्रिपुरे त्रिपुरेश्वरि त्रिपुरात्सुन्दरी तथा ॥ ३९ ॥

चक्रस्वामिनि, परापररहस्ययोगिनि, त्रिपुरे, त्रिपुरेश्वरि, तथा त्रिपुरसुन्दरि ॥ ३९ ॥

त्रिपुराद्वासिनि तथा त्रिपुराश्रीस्ततः परम् ।
त्रिपुरामालिनि तथा सिद्धेम्बत्रिपुरां ततः ॥ ४० ॥

त्रिपुरवासिनि, त्रिपुराश्री, त्रिपुरामालिनि, तथा सिद्धे, अम्ब, त्रिपुरा ॥ ४० ॥

क्रमान्महाशब्दतस्तु त्रिपुरात् सुन्दरीति वै ।
महेश्वरि महाराज्ञि शक्ते गुप्ते महापदात् ॥ ४१ ॥

क्रमशः महात्रिपुरसुन्दरि, महामहेश्वरि, महामहाराज्ञि, महाशक्ते, महागुप्ते ॥ ४१ ॥

महाज्ञप्ते महानन्दे महास्पन्दे महाशये ।
श्रीचक्रनगरात् साम्राज्ञीत्यन्तेऽथ नमस्तु ते ॥ ४२ ॥

महाज्ञप्ते, महानन्दे, महास्पन्दे, महाशये, श्रीचक्रनगरसाम्राज्ञी, आपको प्रणाम है ॥ ४२ ॥

नमस्ते च शिरो लक्ष्मीर्माया वाग्बीजमेव च ।
एष मालामहामन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ४३ ॥

लक्ष्मी, माया और वाग्बीज को मैं शिरसा प्रणाम करता हूँ। यही हर प्रकार की सिद्धि प्रदान करनेवाला **मालामहामंत्र** है ॥ ४३ ॥

एकत्रिंशत्सहस्त्रार्णः सर्वसाम्राज्यदायकः ।
पठित्वैतत्खड्गहस्तस्तेन खड्गेन संयुगे ॥ ४४ ॥

इसमें एकत्तीस हजार वर्णों का प्रयोग हुआ है। यह मन्त्र सर्वसाम्राज्यदायक है। खड्गहस्त होकर इसका पाठ करने से वह खड्ग सिद्ध हो जाता है। युद्ध में उस खड्ग का प्रयोग करने से ॥ ४४ ॥

देवेन्द्रं विष्णुमपि च जयत्येव न संशयः ।
श्रीदेव्यावरणैर्युक्तः पूजाक्रममयः शुभः ॥ ४५ ॥

देवेन्द्र विष्णु को भी साधक जीत लेता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह मालामन्त्र श्रीदेवी के आवरणों से युक्त पूजाक्रममय शुभ है ॥ ४५ ॥

पूजाविधावशक्तोऽपि साधकः सकृदुच्चरन् ।
पूजाफलमवाप्नोति नात्र शङ्का महेश्वरि ॥ ४६ ॥

इस पूजाविधि में अशक्त साधक भी यदि इसका पाठ करता है, तो उसे पूजा का फल प्राप्त होता है। हे महेश्वरि, इसमें कोई शङ्का नहीं है ॥ ४६ ॥

एतद्भेदं प्रवक्ष्यामि सावधानेन तच्छृणु ।
आदौ बीजचतुष्कं स्यात् ततो नम इतीरितम् ॥ ४७ ॥

इसका भेद मैं बतलाता हूँ, सावधान मन से इसे सुनो। पहले चार बीजमंत्रों का उसके बाद 'नमः' का प्रयोग होना चाहिए ॥ ४७ ॥

मूलदेव्या नाम ततः षडक्षरमुदाहृतम् ।
ततो हृदयदेवीति चास्त्रदेव्यवसानकम् ॥ ४८ ॥

प्रथमतः मूलदेवी का नाम फिर 'षडक्षर' का उदाहरण, फिर हृदय देवी और अन्त में अस्त्र देवी ॥ ४८ ॥

अङ्गावरणके षट्कं भूतपञ्चाक्षरं स्मृतम् ।
कामेश्वरीं समारभ्य महानित्यावसानकम् ॥ ४९ ॥

छह अङ्गावरणक तथा भूत को पञ्चाक्षर कहा गया है। कामेश्वरी से प्रारंभ कर महानित्या पर अवसान होता है ॥ ४९ ॥

नित्यास्तु नृपसंख्याका भूततर्काक्षरात्मकाः ।
परमेश्वरीमारभ्य रामानन्दमयीति वै ॥ ५० ॥

नित्या नृप संख्यक होती है और तर्काक्षरात्मक भूत होता है। रामानन्दमयी परमेश्वरी अथवा वासुदेवमय परमेश्वर से प्रारम्भ होकर ॥ ५० ॥

गुरुमण्डलमेकोनविंशतिः स्यान्महेश्वरः ।
भूपक्षचन्द्राक्षरकमणिमासिद्धितः शिवे ॥ ५१ ॥

हे महेश्वरि, गुरुमण्डल उन्नीस होता है, तथा हे शिवे, चार अक्षरों में अणिमादि की सिद्धि होती है ॥ ५१ ॥

तद्वत् प्रकटयोगिन्या सहितं भूपुरावृतिः ।
त्रिंशत्सङ्ख्यं पक्षवेदचन्द्रसंख्याक्षरात्मकम् ॥ ५२ ॥

उसी तरह प्रकटयोगिनी के साथ भूपुर की आवृत्ति से तीस की संख्या होती है ॥ ५२ ॥

कामाकर्षिणिमारभ्य गुप्तयोगिनिकावधि ।
नृपपत्रावरणं कं वसुचन्द्रोन्मितं शिवे ॥ ५३ ॥

कामाकर्षिणी से प्रारम्भ कर गुप्तयोगिनी तक नृपसंख्यक पत्रावरण हों तथा हे शिवे ये वसु (आठ) चन्द्र (एक) अर्थात् ९ नौ मूल्यक हों ॥ ५३ ॥

वसुनन्दाक्षरं तद्वदनङ्गकुसुमादितः ।
तथा गुप्ततराद्योगिन्यन्तमष्टदलावृतिः ॥ ५४ ॥

वसु (आठ) नन्द (नौ) अक्षर वाले, उसी तरह अनङ्ग कुसुम के आदि से तथा गुप्ततर योगिनी हो तथा अन्त में अष्टदल की आवृत्ति हो ॥ ५४ ॥

दिक्संख्यानन्दभूतार्णा सर्वसंक्षोभिणीत्यतः ।
सम्प्रदाययोगिनीति मनुकोणावृतिर्भवेत् ॥ ५५ ॥

दिक्संख्या (दश) नन्द (नौ) भूतार्णा (अक्षरवाले) ये सर्वसंक्षोभिणी हैं अतः यही सम्प्रदाययोगिनी भी कहलाती हैं। इसमें मनु (चौदह) कोणों की आवृत्ति होती है ॥ ५५ ॥

नृपसंख्या नेत्रपङ्क्तिवर्णा स्यात् तदनन्तरम् ।
सर्वसिद्धिप्रदा-नाम्नः कुलोत्तीर्णात् तु योगिनि ॥ ५६ ॥

इसकी नृप संख्या है, ये नेत्रपंक्ति वर्ण के हैं, इनके बाद सर्वसिद्धिप्रदा की स्थिति है। तत्पश्चात् कुलोत्तीर्णयोगिनी है॥ ५६॥

इत्यन्तं दशकोणस्य देवताः सूर्यसङ्ख्यकाः।
वसुनागाक्षराः सर्वज्ञामारभ्य निगर्भतः॥ ५७॥

दशकोण का यहीं अन्त होता है। इसके देवता सूर्य (बारह) की संख्या में हैं। वसु (आठ), नाग (सात) अक्षर वाले, सर्वज्ञा से लेकर निगर्भ तक॥ ५७॥

योगिन्यन्तं दशारस्य देवताः सूर्यसंख्यकाः।
मुनिपर्वतवर्णाः स्युर्वशिनीतो रहस्यतः॥ ५८॥

अन्त में योगिनी तक, दशार के बारह देवता हैं; मुनि (सात), पर्वत (सात), वर्ण (अक्षर) वाले हों, यहाँ से रहस्यपूर्ण वशिनी का स्थान है॥ ५८॥

योगिन्यन्तमष्टकोणदेवता दशसङ्ख्यकाः।
नेत्रवेदाक्षरा बाणिनिनाम्नोऽतिरहस्यतः॥ ५९॥

इसके अन्त में योगिनी और अष्टकोण के दश संख्यक देवता हैं। नेत्र (दो), वेद (तीन) कुल पाँच अक्षरों वाली इसका नाम वाणिनि है, यह अतिरहस्यमयी है॥ ५९॥

योगिन्यन्तं त्रिकोणस्य देवता दशसङ्ख्यकाः।
भूतबाणाक्षरा श्रीश्रीमहाभट्टारिकापदात्॥ ६०॥

इस त्रिकोण के अन्त में योगिनी है, इसके देवताओं की संख्या दस है; भूत (पाँच), वाण (पाँच) अक्षरवाली, इनका नाम श्री श्री महाभट्टारिका है॥ ६०॥

परापररहस्याद् योगिन्यन्तं बिन्दुदेवताः।
रामसङ्ख्यानन्दनेत्रवर्णाथो त्रिपुरापदात्॥ ६१॥

परापर रहस्य से इसके अन्त में योगिनी है, बिन्दु इसके देवता हैं, इनकी संख्या राम (तीन) हैं, नन्द (नौ) नेत्र (दो) इनके वर्ण अर्थात् अक्षर हैं; त्रिपुरा इनके नाम हैं॥ ६१॥

महात्रिपुरसुन्दर्यन्तं स्याच्चक्रेश्वरीगणः।
नवसङ्ख्यः षट्समुद्रवर्णश्चायो महामहात्॥ ६२॥

महात्रिपुर सुन्दरी इसका अन्त है, चक्रेश्वरीगण हैं, इनकी संख्या नौ है, षट् (छः), समुद्र (चार) अक्षर हैं, महामहा इनका पद है॥ ६२॥

ईश्वरीति समारभ्य महाश्रीचक्रतः परम्।
नगरात् साम्राज्ञिनामपर्यन्तं ललिता भवेत्॥ ६३॥

ईश्वरी से प्रारम्भ कर महाश्री चक्र तक उत्कृष्ट स्थान है, नगर से साम्राज्ञी नाम पर्यन्त ललिता का स्थान है॥ ६३॥

नवसङ्ख्यानन्दभूतवर्णाः पश्चात् षडक्षरः ।
स्वाहा विलोमबीजानां त्रयमेवं समीरितः ॥ ६४॥

इनकी संख्या नौ है; नन्द (नौ), भूत (पाँच) संख्यक वर्ण अर्थात् अक्षर बाद में छः अक्षर स्वाहा, विलोम और बीज ये तीन हीन ही कहे गये हैं ॥ ६४ ॥

एकमेकत्रिंशता च सहस्त्रार्णोऽयमीरितः ।
एष मालामनुर्देवि तिथिभेदेन संस्थितः ॥ ६५ ॥

इसमें कुल एक हजार इकत्तीस वर्ण हैं। हे देवि, यह मालामन्त्र तिथिभेद से संस्थित है ॥ ६५ ॥

तत्प्रकारं शृणु शिवे सावधानेन चेतसा ।
शुद्धो नमोऽन्तः स्वाहाऽन्तस्तर्पणान्तो जयान्तकः ॥ ६६ ॥

उसका प्रकार (भेद), हे शिवे, सावधान चित्त से सुनो। खड्गमाला के १. शुद्ध, २. नमोन्त, ३. स्वाहान्त, ४. तर्पणान्त, ५. जयान्त, ये पाँच प्रकार अर्थात् भेद होते हैं ॥ ६६ ॥

स्त्री-पुं-मिथुनभेदेन पुनः प्रत्येकतस्त्रिधा ।
सम्बुद्ध्यन्तस्तु शुद्धः स्यात् तद्वै त्रिपुरसुन्दरि ॥ ६७॥

ये ही स्त्री-पुरुष और मिथुन रूप से प्रयुक्त होने पर पन्द्रह प्रकार के होते हैं। सम्बुद्ध्यन्त जप में शुद्ध तथा वही त्रिपुरसुन्दरि हैं ॥ ६७ ॥

सुन्दर्यै नम इत्येवं नमोऽन्तो भवतीश्वरि ।
सुन्दर्यै स्वाहेति रीत्या स्वाहान्तः समुदीरितः ॥ ६८ ॥

हे ईश्वरि! पूजा में 'सुन्दर्यै नमः' इसके अन्त में 'नमः' का प्रयोग होता है, इसी तरह होम में 'सुन्दर्यै स्वाहा' स्वाहान्त कहा गया है ॥ ६८ ॥

सुन्दरीं तर्पयामीति तर्पणान्तः प्रकीर्तितः ।
अथैवं सुन्दरि जयेत्येवं स्यात् तु जयान्तकः ॥ ६९ ॥

इसी तरह 'सुन्दरीं तर्पयामि' तर्पण में तर्पणान्त कहा गया है। इसी तरह 'सुन्दरि जयेति' स्तोत्र में जयान्त पदों का प्रयोग होता है ॥ ६९ ॥

एवं सुन्दरदेवेति पुम्भेदस्तु प्रकीर्तितः ।
स्त्रीभेदस्तूक्त एवेह मिथुनाख्यमथो शृणु ॥ ७० ॥

इसी तरह 'सुन्दरदेव' पुंभेद के कारण पुलिङ्ग में भी, शुक्र, नमोऽन्त, स्वाहान्त, तर्पणान्त और जयान्त पदों का प्रयोग बतलाया गया है। स्त्रीभेद पहले बतला दिया गया है, अब मिथुनाख्य बतलाता हूँ, सुनो ॥ ७० ॥

सुन्दरात् सुन्दरीत्येवं देवाद् देवीति वै क्रमात् ।

एवं रीत्या पञ्चदशप्रकारस्तु समीरितः ॥ ७१ ॥

इसी तरह सुन्दर से सुन्दरी, देव से देवी, क्रमशः तीनों के पाँच पाँच भेद अर्थात् कुल पन्द्रह प्रकार कहे गये हैं ॥ ७१ ॥

जपे शुद्धस्तु पूजायां नमोऽन्तो होमकर्मणि ।
स्वाहान्तस्तर्पणान्तस्तु तर्पणे समुदाहृतः ॥ ७२ ॥

जप के अन्त में शुद्ध, पूजा में नमोऽन्त, होम कर्म में स्वाहान्त, तर्पण में तर्पणान्त कहा गया है ॥ ७१ ॥

स्तोत्रे जयान्त उदितस्त्वथैतस्य फलं शृणु ।
सकृज्जप्त्वा तु देव्यग्रे महापापात् प्रमुच्यते ॥ ७३ ॥

ऐसे ही स्तोत्र में जयान्त कहा गया है। अब इसका फल सुनो। देवी के आगे एक बार भी मालामन्त्र का जप कर लोग महापाप से भी मुक्त हो जाते हैं ॥ ७३ ॥

शतावृत्त्या तु ललिता प्रसन्ना तस्य सर्वतः ।
आवृत्तीनां सहस्रेण साक्षाद् देवी स्वरूपवान् ॥ ७४ ॥

सौ आवृत्ति जो इसका पाठ करता है स्वयं ललिता प्रसन्न होती है। एक हजार आवृत्ति से जो इसका पाठ करेगा उसके सामने स्वयं त्रिपुरा प्रकट हो जाती है ॥ ७४ ॥

सुगन्धिपुष्पैरभ्यर्च्य महापूजाफलं भवेत् ।
होमद्रव्यैस्तथा हुत्वा क्षीराद्यैस्तर्पयेत् तु यः ॥ ७५ ॥

सुगन्ध और पुष्पों से जो इनकी पूजा करता है उसे महापूजा का फल मिलता है। होमद्रव्य से हवन, क्षीरादि से तर्पण जो करता है ॥ ७५ ॥

जपान्तेनापि संस्तुत्वा तस्य पुण्यं न गण्यते ।
इति ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं पृष्टवत्यसि ।
एवं मालामनुः प्रोक्तः पुनः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ ७६ ॥

तथा जप के अन्त में स्तुति कर अनन्त पुण्यफल प्राप्त करता है। इस तरह हे पार्वति, आपने मुझसे जो कुछ पूछा है, उसका उत्तर मैंने दे दिया है। इस तरह मैंने मालामन्त्र आपको समझा दिया है आगे आप और क्या सुनना चाहेंगी, बोलें ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे मालामन्त्रकथनं नामाष्टादशस्तरङ्गः ॥ १८ ॥

इस तरह त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासासर्वस्व) में मालामन्त्रकथन नामक
अट्ठारहवाँ तरङ्ग की व्याख्या सम्पन्न हुई ॥ १८ ॥

●

अथैकोनविंशस्तरङ्गः

(रहस्यार्चनम्)

देव्युवाच

महेश्वर प्रियतम प्रोक्तं यत् त्रिपुरार्णवे।
रहस्यार्चनकं श्रेष्ठं श्रोतुमिच्छामि तद्वद ॥ १ ॥

देवी ने कहा—

महेश्वर, हे प्रियतम, आपने त्रिपुरार्णव में श्रेष्ठ 'रहस्यार्चनक' (रहोयाग) के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वही मैं सुनना चाहती हूँ, कृपया बतलायें॥ १॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहोयागं महत्तरम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २ ॥

महादेव ने कहा—

हे देवि, महत्तर रहोयाग के बारे में मैं बतलाता हूँ, तुम सुनो, इसे सुनकर लोग सब तरह के पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें किसी तरह का संशय नहीं करना चाहिए॥ २॥

पुरा ह्येतन्मया देवि परमेण सुगोपितम्।
विदित्वा संज्ञया पश्चात् प्रार्थितो बहुधा मया ॥ ३ ॥

हे देवि, पहले मैंने इस रहस्यार्चन को पूर्ण रूप से गुप्त रक्खा था। तदनन्तर विस्मृत हो जाने के कारण मैंने उसे जानने की प्रार्थना की॥ ३॥

तथापि न मया प्राप्तं ततस्तप्तं महत् तपः।
दिव्यवर्षसहस्राणां दशकं तु तदा परः ॥ ४ ॥

फिर भी रहस्यार्चन मुझे प्राप्त नहीं हुआ। इसे पाने के लिए तब मैंने घोर तपस्या की। दश हजार दिव्य वर्षों तक इसे पाने के लिए मैंने तपस्या की॥ ४॥

श्रीकण्ठं प्रेषयामास स दृष्टो भगवान् भवः।
पञ्चवक्त्रस्त्रिनयनो बालचन्द्रावतंसकः ॥ ५ ॥

तब उन्होंने श्रीकण्ठ को भेजा, उन्होंने भगवान् शिव के देखा, पाँच मुख, तीन आँखें तथा चन्दन की तरह शिर पर बालचन्द्र विराजित थे॥ ५॥

तेनाहमुक्तो देवेशि वत्स किं तपसेच्छसि।
ततः प्रणम्य साष्टाङ्गं मया श्रीकण्ठ ईरितः ॥ ६ ॥

हे देवेशि, उन्होंने मुझसे पूछा—वत्स, इतना कठोर तप किसलिये कर रहे हो? फिर मैंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर कहा॥ ६॥

भगवन् यदि सन्तुष्टो यद्यनुग्राह्यता मयि ।
रहोयागविधिं ब्रूहि यदुक्तं त्रिपुरार्णवे ॥ ७ ॥

हे भगवन्, हे श्रीकण्ठ ! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं, मुझपर यदि आपका अनुग्रह है तो त्रिपुरार्णव में लिखित 'रहोयागविधि' मुझे बतलायें ॥ ७ ॥

अथ प्रहस्य श्रीकण्ठः प्रोवाच मधुराक्षरम् ।
शृणु वत्स त्वया चाद्य तपस्तप्तं महत्तरम् ॥ ८ ॥

इसपर श्रीकण्ठ ने हँसते हुए मधुर शब्दों में कहा—सुनो वत्स, तुमने आज महत्तर तप किया है ॥ ८ ॥

अद्य यावन्न केनापि मत्तोऽन्येन श्रुतं त्विदम् ।
आज्ञया श्रीपरेशस्य तुष्टस्य तपसा तव ॥ ९ ॥

आज तक मेरे सिवा किसी अन्य ने इसे नहीं सुना है। तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट परमेश्वर की आज्ञा से ॥ ९ ॥

वदामि भक्तलोकानां सिद्ध्यै शृणु संयतः ।
श्रीपुरावाससंसिद्ध्या कैवल्यप्राप्तये शिवे ॥ १० ॥

भक्तों के कल्याण की सिद्धि के लिए मैं तुम्हें सब कुछ बतलाता हूँ, तुम संयत होकर सुनो। श्रीपुर में वास और कैवल्य की सिद्धि के लिए ॥ १० ॥

एकान्तपूजा कर्तव्या भक्तिश्रद्धायुतेन वै ।
दीक्षावतोऽधिकारोऽत्र नान्यस्य तु कदाचन ॥ ११ ॥

भक्ति और श्रद्धा के साथ यह एकान्त पूजा करनी चाहिए। पर, याद रहे जिसने दीक्षा ली है उसे ही इस पूजा का अधिकार है, दूसरे को नहीं ॥ ११ ॥

दीक्षाद्युक्तदिने पुण्यदेशे तीर्थादिसन्निधौ ।
एकान्ते निर्भये देशे दुष्ट-कण्टकवर्जिते ॥ १२ ॥

दीक्षायुक्त दिन में, पुण्य प्रदेश में, तीर्थादि के समीप में, दुष्ट कण्टकरहित निर्भय प्रदेश में यह पूजा करनी चाहिए ॥ १२ ॥

विघ्नेश्वरं समाराध्य गुरुं चापि प्रपूजयेत् ।
स्वस्ति-वाचनकं कृत्वा श्राद्धमभ्युदयं तथा ॥ १३ ॥

सर्वप्रथम विघ्नेश्वर की सम्यक् आराधना कर, गुरु की पूजा कर स्वस्ति वाचन करे फिर आभ्युदयिक श्राद्ध सम्पन्न करे ॥ १३ ॥

मातृका अपि सम्पूज्य ततः सङ्कल्पमाचरेत् ।
गुर्वाद्याज्ञानुरोधेन आचार्यादिवृत्तिं चरेत् ॥ १४ ॥

मातृकापूजन के बाद सङ्कल्प करे। तत्पश्चात् गुरु आदि की आज्ञा से आचार्य का वरण करे॥ १४॥

आचार्यश्च तथा ब्रह्मा होता स्तोता पुरःसरः ।
पञ्चर्त्विजो वृतास्तत्र पाद्याद्यैः सुप्रपूजिताः ॥ १५॥

आचार्य, ब्रह्मा, होता, स्तोता, पाँच ऋत्विज् का वरण कर पाद्य आदि से पूजा करे॥ १५॥

यागागारे चतुर्द्वारि मध्ये हस्तमितोच्छ्रितम् ।
चतुर्हस्तमितां वेदिं ईशान्ये योनिकुण्डकम् ॥ १६॥

चार दरवाजे वाला यज्ञमण्डप हो, बीच में एक हाथ का कुण्ड हो, चार हाथ की वेदी हो, और ईशान कोण में योनिकुण्ड हो॥ १६॥

वितान-कदली-स्तम्भ-मण्डितं यागमन्दिरम् ।
रङ्गवल्ली-पुष्पगुच्छ-सुधूपातिमनोहरम् ॥ १७॥

वितान और केले के स्तम्भ से यज्ञमण्डप सजा हो, रङ्गवल्ली और पुष्पगुच्छ से सुशोभित हो, धूप की सुगंध से स्थान चित्ताकर्षक हो॥ १७॥

पूर्वद्वारबहिर्देशे हस्तत्रितयतो बहिः ।
ध्वजस्तम्भस्तु बैल्वो वा खादिरः पैप्पलोऽथवा ॥ १८॥

पूर्व दरवाजे के बाहरी क्षेत्र में तीन हाथ आगे ध्वजारोपण करे। ध्वजा का स्तम्भ बेल, खैर या पीपल का होना चाहिए॥ १८॥

अष्टहस्तसमुच्छ्रायः स्थूलः अष्टाङ्गुलात्मना ।
समः श्लक्ष्णोऽतिरुचिरो वृत्तो वाच्यस्त्र एव वा ॥ १९॥

ध्वज आठ हाथ ऊँचा हो तथा स्तम्भ की मुटाई आठ अंगुल हो, गोलाकार, समरूप, चिकना और सुन्दर होना चाहिए॥ १९॥

हस्तसम्मित-तत्काष्ठत्रयं तिर्यङ् निवेशितम् ।
ऊर्ध्वाधः काष्ठयुगले चतुष्कोष्ठतया स्थितम् ॥ २०॥

एक हाथ के तीन काठ टेढ़े कर लगा दे, चार कोष्ठवाले दो काठ ऊपर-नीचे लगा दे॥ २०॥

काष्ठत्रये ह्येकपार्श्वे छिद्रयुक्तं ध्वजाग्रगे ।
चूडे हस्तमिते प्रोतं पताकाकारतां गतम् ॥ २१॥

तीनों काठों में एक के बगल में छेद कर दे, जो ध्वजा के अगले हिस्से में होंगे, एक हाथ ऊपर सिरे पर बाँधकर पताका का आकार बन जाय॥ २१॥

तदधः पश्चिमदिशि वेदीं हस्तमितां शुभाम् ।

वेदाङ्गुलसमुत्सेधां त्रिकोणां मण्डपोन्मुखाम् ॥ २२ ॥

उसके नीचे पश्चिम की ओर एक हाथ की सुन्दर वेदी बनायें, उसकी ऊँचाई तीन अंगुल हो, त्रिकोण हो और मण्डप सामने हो॥ २२॥

मृण्मयीं प्रतिमां तत्र ध्यानोक्तालङ्कृताकृतिम् ।
अश्वारूढां तु संस्थाप्य मण्डपाभिमुखां शुभाम् ॥ २३ ॥

वहाँ ध्यान में जैसा बतलाया गया है वैसे ही अलङ्कृत, अत्यन्त शुभ मण्डप के सामने, घोड़े पर सवार मिट्टी की मूर्त्ति की स्थापना करे॥ २३॥

कुर्याद् ध्वजारोपणं वै आचार्यः प्रयतस्ततः ।
दक्षिणद्वार-वेद्योस्तु मध्ये होता ह्युदङ्मुखः ॥ २४ ॥

इसके बाद आत्मसंयमी आचार्य ध्वजारोपण करे। दक्खिन द्वार पर वेदी हो, बीच में होता उत्तरमुख हो॥ २४॥

पद्मासनेन चासीनः कृताञ्जलिपुटः शुचिः ।
एवं स्तोता ह्युदग्भागे पूर्वाभिमुखतः स्थितः ॥ २५ ॥

इसके बाद पवित्र होकर, अञ्जलिबद्ध, पद्मासन में आसीन हों, इसी तरह स्तोता उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठ जाय॥ २५॥

पश्चिमद्वारदक्षे तु यजमानस्तु प्राङ्मुखः ।
ब्रह्मा दक्षिणतस्तस्य तथासीनो महेश्वरि ॥ २६ ॥

पश्चिम द्वार पर कुशल यजमान पूर्वाभिमुख होकर बैठ जायँ। फिर ब्रह्मा उसके दायें बैठ जाय॥ २६॥

आचार्यः पृष्ठभागे तु संस्थितः स्यात् पुरःसरः ।
कर्मकाले तु सर्वेषां नियमस्त्वेवमीरितः ॥ २७ ॥

हे परमेश्वरि, आचार्य जो पीछे बैठें, ये अब कर्मकाल में आगे आ जायें, क्योंकि सर्वत्र यही नियम निर्धारित है॥ २७॥

आचार्य आदौ सर्वत्र कर्मणां परमेश्वरि ।
कृताञ्जलिः प्रार्थयेद् वै ब्रह्माणं चोत्थितः स्वयम् ॥ २८ ॥

हे परमेश्वरि, सब कर्मों में सर्वत्र आचार्य का ही प्रथम स्थान है, अतः वह सर्वप्रथम अञ्जलिबद्ध खड़े होकर ब्रह्मा की प्रार्थना करे॥ २८॥

प्रत्युक्तस्तेन तत्पश्चात् कर्म कुर्याद् यथाविधि ।
देवतानां पूजनादावाह्वाने विनियोजयेत् ॥ २९ ॥

ब्रह्मा के उत्तर देने के बाद यथाविधि कर्म करना चाहिए। देवताओं की पूजा में सर्वप्रथम उनका आह्वान करे॥ २९॥

होतारं च ततः पश्चात् स्तोतारं स्तोतुमेव च ।
ब्रह्माज्ञां तु समादाय ध्वजारोपं समाचरेत् ॥ ३० ॥

फिर, हवन करने के लिए होता को, तथा स्तुति करने के लिए स्तोता को बुला ले। फिर ब्रह्मा से आज्ञा लेकर ध्वजारोपण का कार्यारम्भ करे ॥ ३० ॥

ध्वजं सम्पूज्य पुष्पाद्यैः कुशयुङ्नववाससा ।
दशसहस्रसुदीर्घेण वेष्टयेन्मूलतः शिवे ॥ ३१ ॥

पुष्पादि से ध्वजा की पूजा कर कुश के साथ नव वस्त्र लपेट दे। हे शिवे, दस हजार बार ध्वजमूल में धागे लपेट दे ॥ ३१ ॥

चूडा मूर्ध्नि दृढां बद्ध्वा मन्त्रपाठान्ततः शिवे ।
प्रलम्बयेद् वस्त्रशेषं पताकां पश्चिमोर्ध्वतः ॥ ३२ ॥

हे शिवे, मन्त्रपाठ के बाद में चूड़ा को शीर्षस्तर पर दृढ़ता से बाँध दे। वस्त्र शेष को फैलाकर लटका दे, पताका को पश्चिम ऊपर की ओर लटका दे ॥ ३२ ॥

पृथिव्यां हस्तमात्रं तु समाविष्टं दृढात्मना ।
मण्डपाभिमुखं तत्र ध्वजारोपणमाचरेत् ॥ ३३ ॥

धरती के नीचे एक हाथ मजबूती से गाड़ दे। फिर मण्डपाभिमुख ध्वज का आरोपण करे ॥ ३३ ॥

पुरःसरं तु विसृजेदादौ सम्भारसम्भृतम् ।
पुरःसरस्तु निर्गच्छेत् प्रत्यग्द्वारेण सर्वदा ॥ ३४ ॥

पहले साज-सामान के साथ सामने से विसर्जन करे, वहाँ के सबलोग पीछे अर्थात् पश्चिम दरवाजे से बाहर निकले ॥ ३४ ॥

दक्षद्वारेण होता वै स्तोता चोत्तरद्वारतः ।
यजमानब्रह्मणोस्तु प्राग्द्वारेणैव निर्गमः ॥ ३५ ॥

दाहिने दरवाजे से होता, उत्तरीय दरवाजे से स्तोता तथा यजमान और ब्रह्मा पूरब के दरवाजे से ही निकलें ॥ ३५ ॥

आचार्यः सर्वतो यायाद् नान्यथा तु कदाचन ।
प्रविशेयुः सर्व एव तत्तत्सम्मुखद्वारतम् ॥ ३६ ॥

आचार्य सब जगह जा सकता है, इससे भिन्न कभी नहीं, अपने अपने सामने के द्वार से सबको प्रवेश करना चाहिए ॥ ३६ ॥

पुरःसरस्तु सामग्रीं संस्थाप्य ध्वजसन्निधौ ।
आचार्यं सन्दिशेत् सोऽपि तत आचार्यवित्तमः ॥ ३७ ॥

ध्वज के पास आगे रक्खी सामग्रियों को रखकर, आचार्य जैसे कहे उसी तरह कार्यारम्भ करे॥ ३७॥

कुर्याद् ध्वजारोपणं तु सम्यगुक्तविधानतः।
ध्वजमभ्यञ्ज्य तैलेन स्नाप्य चोष्णेन वारिणा॥ ३८॥

पूर्व वर्णित विधान के अनुसार उचित ढंग से ध्वजारोपण करना चाहिए। ध्वज का अभिसिंचन कर तेल लगायें, फिर गर्म जल से स्नान कराकर॥ ३८॥

पुष्पाद्यलङ्कृतं कृत्वा समारोप्य पुरःसरः।
सन्दिशेदथ आचार्यो वेष्टयेद् वाससोक्तवत्॥ ३९॥

पुष्पादि से अलंकृत कर सामने उसे आरोपित कर आचार्य के संकेत पर पहले की तरह उसमें वस्त्र लपेटे॥ ३९॥

आहूतं संस्तुतं चेन्द्रं यजेद् देवसमावृतम्।
विसर्जयेत् सर्वतश्चाप्यादौ सम्भारसम्भृतम्॥ ४०॥

आहूत एवं संस्तुत देवताओं के साथ इन्द्र की पूजा करनी चाहिए। हर ओर से सामानों से भरपूर पूजित इन्द्र का विसर्जन कर दे॥ ४०॥

पुरःसरं सोऽपि तत्र गत्वा सर्वं प्रकल्पयेत्।
पात्रादिकं यथा युक्तमाचार्यमथ सन्दिशेत्॥ ४१॥

वह भी अग्रेसर होकर वहाँ पहुँचकर सब कुछ नियत करे, फिर पात्र आदि वस्तुओं को आचार्य को दिखलाये॥ ४१॥

आचार्यस्तत्र गत्वा तु विसृजेदग्रकर्मणि।
पुरःसरेण सन्दिष्टो मन्दिरासुरकोणके॥ ४२॥

आचार्य वहाँ पहुँचकर पूर्वकृत कर्मों को विसर्जित कर दे। पुनः पहले से निर्दिष्ट भवन के अग्निकोण में॥ ४२॥

तन्मण्डले क्षेत्रपालं बहिरभ्यर्च्य वै क्रमात्।
महिषं पिष्टरचितं हस्तोच्चं समलङ्कृतम्॥ ४३॥

उस मण्डल के बाहर क्रमशः क्षेत्रपाल की पूजा कर, आटे से बने एक हाथ ऊँचे, अलंकृत महिष को॥ ४३॥

कृष्णवर्णं तत्पुरतो दक्षिणाभिमुखं न्यसेत्।
पूजयेदुपचारैश्च रक्तमाल्योपहारकैः॥ ४४॥

उससे आगे काले रङ्ग (के महिष) को दक्खिन मुँह करके रख दे, फिर लाल माला एवं अनेक उपहारों एवं उपचारों से पूजा करे॥ ४४॥

ततस्तु मण्डपान्तर्वै वेदिकाधः प्रपूजयेत्।

श्रीदेवीमुक्तविधिना कुलद्रव्यैरनुक्रमैः ॥ ४५ ॥

इसके बाद मण्डप के भीतर वेदी के नीचे कुलद्रव्य के अनुक्रम से पूर्वोक्त विधि से श्रीदेवी की पूजा करे ॥ ४५ ॥

सुवासिनी ऋत्विगाद्याः स्वात्मीकुर्युर्यथाविधि ।
ततो निशीथसमये यजमानमुखाः शिवे ॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् सुवासिनी एवं ऋत्विक् प्रभृति का यथाविधि स्वात्मीकरण करे। हे शिवे, तत्पश्चात् रात के समय यजमानमुख ॥ ४६ ॥

स्व-स्व-स्थानगताश्चापि कर्म कुर्युर्यथाविधि ।
ब्रह्माज्ञया च सङ्कल्प्य तिरस्करणिकार्चनम् ॥ ४७ ॥

अपने अपने स्थान जाने के बावजूद यथाविधि कर्म करना चाहिए। ब्रह्मा की आज्ञा से संकल्प लेकर तिरस्करिणिका की पूजा करे ॥ ४७ ॥

सन्दिष्टश्चापि तन्मूर्तिपुरतः पात्रसंस्थितिम् ।
कृत्वा पीठं समभ्यर्च्य तथात्मानमपीश्वरि ॥ ४८ ॥

हे महेश्वरि, निर्दिष्ट पूजा करने पर भी उस मूर्ति के आगे पात्र रखकर यथाविधि पूजा सम्पन्न कर आत्मपूजन करे ॥ ४८ ॥

आहूतां च स्तुतां मूर्तौ तिरस्कृतिमथार्चयेत् ।
नीलैः पुष्पाक्षतैर्गन्धैर्नैवेद्यैर्वस्त्रभूषणैः ॥ ४९ ॥

तिरस्कृति की मूर्ति का आवाहन और स्तुति कर, नील पुष्प, अश्वगन्ध, नैवेद्य, वस्त्र और आभूषण से पूजा करे ॥ ४९ ॥

पूजयेदावृतिं तस्याः परितो मण्डले पृथक् ।
सिन्दूरेण कृते देवि त्र्यस्त्रवेद्युपरि क्रमात् ॥ ५० ॥

मण्डल से अलग वेदी के उपरिक्रम से त्रिकोण बनाकर सिन्दूर से देवी की पूजा करे ॥ ५० ॥

षट्त्रिकोणे षडङ्गानि मोहिनीं स्तम्भिनीं तथा ।
भयङ्करीं महाभीमां परुषां दृष्टिदर्पहाम् ॥ ५१ ॥

षट् त्रिकोण में षडङ्गों, मोहिनी, स्तम्भिनी, भयङ्करी, महाभीमा, परुषा तथा दृष्टिदर्पहा ॥ ५१ ॥

नेत्रघ्नीं श्रोत्रहन्त्रीं च पूजयेदग्रतः क्रमात् ।
अष्टत्रिकोणके पश्चादश्वं खड्गं च पूजयेत् ॥ ५२ ॥

नेत्रघ्नी और श्रोत्रघ्नी की पूजा आगे के क्रम से करे। इसके पश्चात् अष्टत्रिकोण में अश्व एवं खड्ग की पूजा करे ॥ ५२ ॥

आरत्यन्तं ततः कृत्वा नीलवस्त्रविभूषणाम् ।
तरुणीं चारुसर्वाङ्गीं पूजयेत् तु सुवासिनीम् ॥५३॥

आरती के अन्त में नीले वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित, तरुणी एवं सर्वाङ्गसुन्दरी सुवासिनी की पूजा करे॥५३॥

उद्वासरहितां पूजां समाप्योत्तरद्वारके ।
बहिः सुवेदिकामध्ये रक्तचन्दनमण्डले ॥५४॥

निर्वासनरहित पूजा समाप्त कर, उत्तर दरवाजे के बाहर सुन्दर वेदी के बीच में, रक्त चन्दन से निर्मित मण्डल में॥५४॥

त्रिकोणे भैरवं चोक्तरीत्या सम्पूजयेच्छिवे ।
मध्ये महाभैरवं च भैरवीसंयुतं ततः ॥५५॥

हे शिवे, उक्त रीति से भैरव को त्रिकोण में पूजे। इसके बाद भैरवी के साथ महाभैरव की पूजा बीच में करनी चाहिए॥५५॥

तदष्टदिक्षु ब्राह्म्यादियुक्ताश्चाप्यष्टभैरवाः ।
पूज्याश्च तद्बहिर्देविबटुकत्रयमर्चयेत् ॥५६॥

तत्पश्चात् आठों दिशाओं में अष्टभैरव की पूजा करे। हे देवि, उससे बाहर तीनों बटुक की पूजा करे॥५६॥

सम्पूज्य बटुकं तत्र भैरवीं च सुवासिनीम् ।
तिरस्करणिकायाश्च भैरवस्य च शङ्करि ॥५७॥

वहाँ बटुक की पूजा के पश्चात् भैरवी, सुवासिनी, तिरस्करणिका और भैरव की पूजा करे॥५७॥

आवृत्त्यर्चनकाले तु स्तोता तत्स्तुतिमीरयेत् ।
ततः प्रातर्महेशानि कृतनित्यक्रियास्तु ते ॥५८॥

प्रत्यावर्त्तन पूजा के समय स्तोता स्तुति पाठ करे। उसके बाद हे महेश्वरि, प्रातःकाल वे नित्यक्रिया से निवृत्त हों॥५८॥

आज्ञया वेदिकामध्ये सर्वतोभद्रमण्डले ।
आहूतान् संस्तुतान् देवान् पूजयेदद्रिकन्यके ॥५९॥

इसके बाद ब्रह्मा की आज्ञा से हे पार्वति, सर्वतोभद्रमण्डल की वेदिका के बीच में आहूत एवं संस्तुत देवताओं की पूजा करनी चाहिए॥५९॥

कोणश्वेत-चतुष्के च मध्यश्वेत-चतुष्टये ।
शृङ्खलानां चतुष्के च कृष्णे कोणस्थिते ततः ॥६०॥

चारों सफेद कोण में और बीच के चारों सफेद घर में, चारो शृंखलाओं में और काले कोण में स्थित ॥ ६० ॥

तत्पार्श्वस्थ-हरिद्वर्णाष्टके रक्ताष्टके तथा ।
पीत-वीथिचतुष्के च प्रोक्त-द्वात्रिंशस्थानके ॥ ६१ ॥

उसके बगल के आठ हरे घर में तथा आठ लाल घर में, तथा चार पीली वीथियाँ कुल मिलाकर बत्तीस घर, जो पहले बतलाये जा चुके हैं ॥ ६१ ॥

मङ्गलादिकोटिसङ्ख्ययोगिनीसहितान् शिवे ।
तन्नाथान् पश्चिमस्त्रोतः प्रोक्तानेकत्र युग्मशः ॥ ६२ ॥

हे शिवे, मङ्गला आदि करोड़ों योगिनियों के साथ उनके नाथों को जोड़ी जोड़ी में अनेकशः पूर्वोक्त रीति से पश्चिम स्त्रोत में पूजा करे ॥ ६२ ॥

मेखला-त्रितये दिव्यान् हेतीर्हेतुकभैरवान् ।
सम्पूज्यैवं समष्ट्या तु विश्वमूर्तिं मनोन्मयीम् ॥ ६३ ॥

तिगुनी मेखला में दिग्पाल एवं दिव्यता के कारणभूत भैरवों की पूजाकर मनोन्मयी, समष्टिगत विश्वमूर्ति भगवती को ॥ ६३ ॥

आहूय पूजयेत् स्तुत्वा ततस्तदुपरि विन्यसेत् ।
धान्येषु कलशं तत्र पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥ ६४ ॥

आवाहन एवं स्तुति कर उनकी पूजा करे। इसके बाद उस पर विन्यास करे। धान पर कलश स्थापित कर उसमें भगवती की पूजा करे ॥ ६४ ॥

आह्वानस्तुतिपूर्वेण उपचारैः सुविस्तृतैः ।
वेदी-दक्षिणतो देवि कुशेष्वासादयेत् क्रमात् ॥ ६५ ॥

पहले आवाहन फिर स्तुति कर सुविस्तृत उपचारों से वेदी के दक्षिण कुशों पर क्रमशः आसादन करे ॥ ६५ ॥

ध्वजस्य काष्ठपात्राणि सजातीयानि शङ्करि ।
इन्द्रस्य चतुरस्त्रं तु क्षेत्रपस्य त्रिकोणकम् ॥ ६६ ॥

काठ के मात्रध्वज का सजातीय है, हे शङ्करि, अतः इन्द्र का चतुष्कोण एवं क्षेत्रपाल का त्रिकोण होना चाहिए ॥ ६६ ॥

तिरस्कृतेर्वर्तुलं तु भैरवस्य षडस्त्रकम् ।
पूर्वादि-पश्चिमान्तं तु सदृशाधारके न्यसेत् ॥ ६७ ॥

तिरस्कृति का गोल, भैरव का षट्कोण, तथा पूरब से पश्चिम तक समान आधार रक्खे ॥ ६७ ॥

हेतुपात्रसमानानि तत्तदाकारमण्डले ।

मन्त्रपूर्वं समासाद्य संविद्देवीं समाह्वयेत् ॥ ६८॥

हेतुपात्र के समान उन्हीं के आकारों के मण्डल में पात्रों को मन्त्रपूर्वक लाकर देवी का आह्वान करे॥ ६८॥

ततः संविद्धरां देवि तरुणीं तु सुवासिनीम् ।
वेणुपात्रस्थितां तत्र संविदं दक्षहस्तके ॥ ६९॥

इसके बाद तरुणी, सुवासिनी, संवित् (चेतना) धरादेवी को बाँस की टोकरी में दायें हाथ में संविद धारण करनेवाली की पूजा करे॥ ६९॥

धारयन्तीं मण्डपस्य बाह्याद् दक्षिणभागतः ।
क्षेत्रपालभैरवयोर्मध्येनैव पुरःसरः ॥ ७०॥

सब कुछ धारण करनेवाली, मण्डप के बाहर दायें भाग से क्षेत्रपाल और भैरव के बीच में अग्रसर॥ ७०॥

हस्ते धृत्वा स्वयं बाह्यादुदग्द्वारात् प्रवेशयेत् ।
ततो वेदीपूर्वभागे संस्थितामासनोपरि ॥ ७१॥

स्वयं हाथ पकड़ कर उत्तरी द्वार से मण्डप में प्रवेश करे। इसके बाद वेदी के पूरब आसन पर बैठ जाय॥ ७१॥

अनुगच्छेदथाचार्यो दक्षद्वाराद् विनिर्गतः ।
क्षेत्रपालभैरवयोर्मध्ये नैव पुरःसरः ॥ ७२॥

दाहिने दरवाजे से बाहर निकल कर आचार्य का अनुसरण करे। क्षेत्रपाल और भैरव के बीच अग्रेसर कदापि न हो॥ ७२॥

प्रवेशयेद् गृहीत्वा तं स प्रणम्य तु तां ततः ।
मन्त्रेण संविदं या चेत् प्रत्युक्तिः स्तुतया ततः ॥ ७३॥

उन्हें वे लेकर मण्डप में प्रवेश करायें और उसके बाद उन्हें प्रणाम कर, मन्त्र के साथ जो संविद हैं उसकी स्तुति कर दुहराये॥ ७३॥

ब्रह्माणमाह्वयेत् सोऽपि स्वद्वारनिर्गतस्तथा ।
पुरःसरेणैव तथा प्रादक्षिण्यात् प्रवेशितः ॥ ७४॥

फिर, ब्रह्मा को बुलाये, वे भी अपनी राह बाहर निकल जायँ तथा प्रदक्षिणाक्रम से मण्डप में प्रवेश करे॥ ७४॥

याचितश्चापि प्रत्युक्तः होता स्तोता तथैव च ।
ततस्तु यजमानो वै पुत्रदारधनादिभिः ॥ ७५॥

माँगने या प्रार्थना करने पर, हवन करनेवाले या स्तुति करनेवाले, उसका जवाब दे। इसके बाद यजमान अपने पुत्र, पत्नी और धनादि से॥ ७५॥

याचेत् तां संविदं तत्र प्रत्युक्तस्तु तथा तथा ।
स्वात्मदानेन तां याचेद् दत्वा तां संविदं ततः ॥ ७६ ॥

उनसे संविद की याचना करे, वे भी अर्थात् उनके भी जवाब में कुछ कहे जाने पर—अपने आपको दान के रूप में देकर उनसे याचना करे, वे भी उन्हें संविद दे और उसके बाद ॥ ७६ ॥

यजमानं गृहीत्वाऽथ निर्गच्छेत् तु सुवासिनी ।
आचार्योऽथ गृहीत्वा वै संविदं स्वासने विशेत् ॥ ७७ ॥

सुवासिनी यजमान को लेकर बाहर निकल जाय, आचार्य संविद को लेकर अपने आसन पर बैठ जाय ॥ ७७ ॥

पूर्वद्वारक्रमेणैव निर्गच्छेद् यावदेव सा ।
यजमानयुता तावद् ब्रह्माद्यास्त्वगराट्सुते ॥ ७८ ॥

पूर्वद्वार के क्रम से सुवासिनी जब तक बाहर निकलें, तब तक हे पार्वति, यजमान के साथ ब्रह्मा प्रभृति ॥ ७८ ॥

स्व-स्व-द्वारस्थितास्तां तु मन्त्रेण प्रतिरोधयेत् ।
क्रमेणैवमुदग्द्वारे स्तोता तां प्रतिरुध्यतु ॥ ७९ ॥

अपने अपने द्वार पर अवस्थित उन्हें मन्त्रों से रोक दे। क्रमशः ही उत्तर द्वार पर स्तोता उन्हें रोक दे ॥ ७९ ॥

स्तुवीत पश्चादाचार्यः सुराग्रहप्रतिक्रयात् ।
यजमानं समादाय शक्त्या वस्त्रधनादिभिः ॥ ८० ॥

सुराग्रह प्रतिक्रय से पीछे आचार्य की स्तुति करे, फिर, यथाशक्ति वस्त्र, धन आदि के साथ यजमान को लेकर ॥ ८० ॥

पूजयित्वोत्तरद्वाराद् विसृजेत् तु सुवासिनीम् ।
ततश्च संविदं वेद्या दक्षे न्यस्य कुशेषु वै ॥ ८१ ॥

पहले पूजा कर उत्तर दरवाजे से सुवासिनी का विसर्जन कर दे। इसके बाद वेदी के दक्षिण भाग में कुश बिछाकर संविद को रक्खें ॥ ८१ ॥

सदशेन नूतनेन वस्त्रेणाच्छादयेत् ततः ।
ततः पात्राणि सर्वाणि क्रमेणासादयेच्छिवे ॥ ८२ ॥

इसके बाद किनारीदार नवीन सफेद वस्त्र से उन्हें आच्छादित करे। पुनः हे शिवे, सारे पात्रों को वहाँ फैला दे ॥ ८२ ॥

वेद्याः पश्चिमदिग्भागे पूजा-पात्राणि सादयेत् ।
तूष्णीमेव धातुजातमयान्यथ महेश्वरि ॥ ८३ ॥

इसके बाद हे महेश्वरि, चुपचाप धातुज पूजापात्रों को वेदी के पश्चिम भाग में फैलाकर रख दे॥ ८३॥

वेद्युत्तरे वर्तुलं तु पात्रं हेतु-चतुर्गुणम्।
मृण्मयं तदाधारेण युतमासादयेत् तथा॥ ८४॥

वेदी के उत्तर में हेतुपात्र से चार गुना बड़ा गोलाकार मिट्टी का पात्र किसी आधार पर रखे॥ ८४॥

तत्पूर्वतः पञ्चसङ्ख्य-पात्राणि मृण्मयानि वै।
वर्त्तुलं मध्यपात्रं तु त्रिकोणानीतराणि तु॥ ८५॥

उससे पूरब मिट्टी के पाँच बर्तन रखे। बीचवाला गोलाकार हो और अन्य पात्र त्रिकोणात्मक हो॥ ८५॥

बाह्याग्राणि समाधारे सादयेन्मन्त्रपूर्वकम्।
तत्पश्चिमे पात्रयुग्मं पद्माभं दीर्घभूनिभम्॥ ८६॥

बाहरी अग्रभाग को मन्त्रपूर्वक समान आधार पर रखना चाहिए। उसके पीछे दो पात्र पद्मनाभ और दीर्घभूसदृश होने चाहिए॥ ८६॥

पञ्चिकानां पञ्चपात्रं मन्त्रिण्याः पद्मसन्निभम्।
दण्डिन्याश्चतुरस्त्रं स्याद् विशेषार्घ्यसमानि वै॥ ८७॥

पञ्चिकाओं का पञ्च पात्र, मन्त्रिणी का पद्मतुल्य, दण्डिनी का चतुष्कोण विशेष अर्घ्यपात्र समान ही होना चाहिए॥ ८७॥

वेदिकापूर्वदिग्भागे नित्यापात्रं नृपास्त्रकम्।
गुरुपात्रं त्रिकोणं तु आवृतीनां नवास्त्रकम्॥ ८८॥

वेदिका से पूरब की ओर नित्यापात्र नृपकोणात्मक हो, गुरुपात्र त्रिकोणात्मक हो, और आवृत्ति का नव कोणात्मक होना चाहिए॥ ८८॥

षडस्त्रं बलि-देवानां कुमार्यै तु त्रिकोणकम्।
वटुकाय वर्त्तुलं चण्डं दिक्संस्थानि सादयेत्॥ ८९॥

बलिदेवों का षट्कोण होना चाहिए, कुमारी के लिए त्रिकोण, बटुक के लिये गोल तथा चण्ड—इस प्रकार दशकोण होना चाहिए॥ ८९॥

अथ हेतुविधिं कुर्यात् तद्विधानं शृणु प्रिये।
समावहेत् सुराधात्रीं संविद्धात्रीविधानतः॥ ९०॥

हे प्रिये, अब हेतुविधि करनी चाहिए, उसका विधान सुनो, सर्वप्रथम सुराधात्री का आवाहन करे। इसके बाद विधानपूर्वक संविधात्री का आवाहन करे॥ ९०॥

प्राग्द्वारेण विशेत् सा तु अग्रपूजा वरेण तु।

गृहीत्वा हेतुकलशं पूजयेद् विभवेन ताम् ॥ ९१ ॥

अग्रपूजा के लिए वह पूर्वीय द्वार से प्रवेश करे। हाथ में कलश लेकर यथाविभव (अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार) उसकी पूजा करे॥ ९१ ॥

दक्षिणावस्त्रभूषाद्यैर्विसृजेत् तां सुवासिनीम् ।
मण्डपाद् बहिराग्नेय्यां कुर्यात् संस्कारमण्डपम् ॥ ९२ ॥

उस सुवासिनी को वस्त्र आभूषणादि दक्षिणा देकर विसर्जन करे। मण्डप से बाहर अग्निकोण में संस्कारमण्डप बनाये॥ ९२ ॥

तत्र चुल्ली-चतुष्कं तु प्राक्संस्थं स्यादुदङ्मुखम् ।
मूलेन प्रोक्ष्य तोयेन कुशैश्चुल्लीः परिस्तरेत् ॥ ९३ ॥

पहले वहाँ चार चूल्हाओं की स्थापना उत्तरमुख करे, उसे कुश की जड़ से प्रोक्षित कर, कुश और जल से चूल्हों का परिस्तरण करे॥ ९३ ॥

त्रयं पालाशसमिधां न्यसेच्चुल्लीषु चैकशः ।
मण्डपे पुनरागत्य वेद्याः पश्चिमतः शिवे ॥ ९४ ॥

पलाश की तीन समिधायें एक-एक कर तीन चूल्हों में डाल दे। हे शिवे, वेदी से पश्चिम मण्डप में पुनः प्रवेश कर॥ ९४ ॥

कुशानस्त्रेण संस्तीर्य तत्र पात्रं महत्तरम् ।
द्रोणान्यूनं क्षालितं तु अस्त्रेणाथ महेश्वरि ॥ ९५ ॥

अस्त्र से कुशों को फैलाकर उस पर श्रेष्ठतम पात्र को रखे। हे महेश्वरि! वह पात्र द्रोण अर्थात् एक निश्चित माप से न अधिक हो, न त्रुटिपूर्ण हो; उसे धो-पोंछकर पवित्र कर ले॥ ९५ ॥

मूलेन विन्यसेत् तस्मिन् पञ्चरत्नानि विन्यसेत् ।
मन्त्रेण च नमोऽन्तेन पञ्चतिक्तमपीश्वरि ॥ ९६ ॥

मूल से उसे क्रमपूर्वक सजाये, फिर उस विशिष्ट पात्र में पञ्चरत्न रखे, हे परमेश्वरि, नमोऽन्तवाले मन्त्र से उसमें पञ्चतिक्त डाले॥ ९६ ॥

मूलेन निक्षिपेत् तत्र ततो हेतुं च निक्षिपेत् ।
यजमानधृतं तस्मिन् मन्थानं सन्निवेश्य च ॥ ९७ ॥

फिर कुशमूल उसमें डाले, पुनः हेतु उसमें डाले, यजमान उसे हाथ से पकड़े पश्चात् उसमें मथानी डाल दे॥ ९७ ॥

पुरःसरस्तथाचार्यः पूर्वपश्चिमतः स्थितौ ।
निर्मथेत् तां सुराह्वानं तत्स्तुतिं चापि शृण्वतः ॥ ९८ ॥

पूर्व और पश्चिम में अवस्थित उस पात्र में सुरा का आह्वान एवं स्तुति सुनते हुए मन्थन करे ॥ ९८ ॥

हेतुसूक्तजपपं कुर्वन्नाचार्यः परमेश्वरि ।
आच्छादयेत् ततः पात्रं वरुणाह्वानपूर्वकम् ॥ ९९ ॥

हे परमेश्वरि, हेतुसूक्त का जप करते हुए आचार्य वरुण के आह्वानपूर्वक उस पात्र का आच्छादन करे ॥ ९९ ॥

पुरःसराहृतं तोयं शुद्धं स्रोतःसमुद्भवम् ।
वायुकोणे समास्तीर्य कुशान् पात्रे सुविन्यसेत् ॥ १०० ॥

नदी से आये गये पवित्र जल वाले पात्र को वायुकोण में बिछे कुशों पर उसे रखे ॥ १०० ॥

तस्मिन् पवित्रसहिते वस्त्रपूतं क्षिपेज्जलम् ।
परिस्तीर्य समाच्छाद्य आपोहिष्ठां पठेत् सुधीः ॥ १०१ ॥

उस कुश सहित, वस्त्र से छने जल को वहाँ रखे, परिस्तरण से उसे ढँककर सुधीजन 'आपोहिष्ठा' मन्त्र का पाठ करे ॥ १०१ ॥

हिरण्यवर्णामपि च पवमानं च सूक्तकम् ।
गङ्गामाहूय चावाह्य पूजयेदुपचारकैः ॥ १०२ ॥

हिरण्यवर्णाम् और पवमानं च सूक्त का वाचन करते हुए गङ्गा का आह्वान कर उपचारों से पूजन करे ॥ १०२ ॥

तेनोदकेन प्रक्षाल्य अरणीयुगलं ततः ।
कुशान् कृष्णाजिनं चापि समास्तीर्याग्निकोणके ॥ १०३ ॥

उसके बाद उस जल से दोनों अरणी को धोकर कुसों को और काले मृगचर्म को अग्निकोण में फैला दे ॥ १०३ ॥

मन्त्रेणारणियुग्मं तु विन्यसेत् तस्य चोपरि ।
पुरःसरस्तथाचार्यो निर्मथेत् तां क्रमेण तु ॥ १०४ ॥

उनके ऊपर दोनों अरणियों को मन्त्रपाठ करते हुए रखे। आचार्य अग्रेसर होकर क्रमशः उनका मन्थन करे ॥ १०४ ॥

अग्निं सम्प्रार्थयन् होता स्तोता चापि समाह्वयेत् ।
स्तूयात् त्रिवारमेवं तु अग्निं निष्पाद्य शङ्करि ॥ १०५ ॥

अग्नि की प्रार्थना करते हुए होता और स्तोता भी उनका आह्वान करे। हे शङ्करि, अग्नि का निष्पादन कर तीन बार स्तुति करे ॥ १०५ ॥

कुण्डे संस्थापयेदग्निं दीक्षोक्तविधिना ततः ।

आग्नेयादग्निमन्त्रेण उद्धृत्याङ्गारपञ्चकम् ॥ १०६ ॥

दीक्षा में बतलाई गई विधि से कुण्ड में अग्नि की स्थापना करे। 'आग्नेयात्' इत्यादि मंत्रों से अङ्गारपञ्चक को निकाल कर॥ १०६ ॥

अग्निनामसमायुक्त्या गच्छेत् संस्कारमण्डपम् ।
होताऽग्रतः समाह्वानं स्तोता स्तोत्रं तु पृष्ठतः ॥ १०७॥

यजमान अग्नि के नामोच्चार के साथ संस्कार मण्डप में जाये, होता आगे अग्नि का आह्वान करता चले और स्तोता पीछे से स्तोत्र पाठ करता चले॥ १०७॥

मध्ये पुरःसरेणाग्निं नयेदाचार्यसत्तमः ।
ब्रह्मा च यजमानश्च तस्य दक्षिणवामयोः ॥ १०८॥

आगे श्रेष्ठ आचार्य बीच में अग्नि लेकर चलें। उनके दायें-बायें ब्रह्मा और यजमान चलें॥ १०८॥

ताम्रपात्रस्थितं चाग्निं काष्ठत्रिपदिकाधृतम् ।
स्व-स्व-द्वारेण निष्क्रान्ता दक्षिणद्वारसङ्गताः ॥ १०९॥

ताम्रपात्र में आग्नि रखकर उसे काष्ठ की तिपायी पर रखकर, दक्षिण द्वार से मिले अपने अपने दरवाजे से निकलें॥ १०९॥

मण्डपस्य प्रकुर्वाणाश्चान्वारब्धाः प्रदक्षिणम् ।
संस्कारमण्डपे गत्वा प्रत्यक्चुल्यां विनिक्षिपेत् ॥ ११०॥

मण्डप का अन्वारब्ध अर्थात् स्पर्श करते हुए प्रदक्षिणा कर संस्कारमण्डप में जाकर विरुद्ध दिशा में अर्थात् पीछे की ओर चूल्हे में फेंक दे॥ ११०॥

शकलैर्योजयित्वा च ज्वालयेन्मन्त्रपाठतः ।
ततः पुनः समागत्य चैवं हेतुघटं नयेत् ॥ १११॥

लकड़ी के टुकड़े को मंत्र पढ़ते हुए जोड़कर चूल्हा जलायें, फिर यहाँ आकर हेतु घट ले आये॥ १११॥

तत्तद्द्वारस्य पुरतस्त्रिपद्यां विनिधाय च ।
पञ्चोपचारैरभ्यर्चन् निक्षिपेच्चुल्लिकोपरि ॥ ११२॥

उन दरवाजे के आगे तिपायी (त्रिपदी) को रखकर पञ्चोपचारों से पूजा कर चूल्हे पर उन्हें रख दे॥ ११२॥

तत्क्रियाकुशलं विप्रं वृणेत् तत्र महेश्वरि ।
साधकाचार्यमिति वै सम्पूज्य कुसुमादिभिः ॥ ११३॥

हे महेश्वरि, इस काम में प्रवीण ब्राह्मण का वरण करे, फूल आदि से उस साधकाचार्य की पूजा कर॥ ११३॥

मण्डपे प्रविशेत् पश्चादाचार्यादि महेश्वरि।
हेतोर्विधिं चाग्निविधिं कृत्वा पश्चान्महेश्वरि ॥ ११४॥

हे महेश्वरि, पीछे आचार्यप्रभृति मण्डप में प्रवेश करे। नीचे वहाँ हेतुविधि और अग्निविधि की क्रिया सम्पन्न करे॥ ११४॥

कुर्यात् संविद्विधिं देवि वेद्यां वायव्यकोणके।
जलपात्रं पूर्वभागे मृत्कुण्डेऽस्त्रेण संविदम् ॥ ११५॥

वेदी के वायव्य कोण में हे देवि, संविद् विधि सम्पादित करे, पूर्वभाग में जलपात्र रखें। फिर, अस्त्र से मृत्कुण्ड में सविद् की क्रिया करे॥ ११५॥

क्षिप्त्वा प्रक्षाल्य तूष्णीं तु तीर्थतोयं विनिक्षिपेत्।
मन्त्रेण तोयं सङ्गृह्य मन्त्रेणानुप्रपूरयेत् ॥ ११६॥

रखकर उसे प्रक्षालित करे, फिर चुपचाप उसमें तीर्थजल गिराये, मंत्रोच्चार के साथ जलसंग्रह करे, मन्त्र से ही उसे भरे भी॥ ११६॥

आचार्यो निर्मथेत् तं तु पठन् भैरवसूक्तकम्।
ततो दृषच्चोपदृषत् प्रक्षाल्य कलशोदकैः ॥ ११७॥

भैरवसूक्त पढ़ते हुए आचार्य उसका मन्थन करे। इसके बाद कलश जल से बड़े-छोटे पत्थर के टुकड़ों को धोकर॥ ११७॥

उत्तरद्वारमध्ये तु निक्षिपेत् तदुदङ्मुखम्।
प्रक्षाल्य संविदं नूत्नवस्त्रेण परिपीडयेत् ॥ ११८॥

उत्तरी द्वार के बीच में उत्तर मुख ही इसे रख दे, फिर, संविद को प्रक्षालित कर नवीन वस्त्र से पोंछ डालें॥ ११८॥

वंशपात्रे विनिक्षिप्य मन्त्रेण दृषदि न्यसेत्।
ततश्छागं समानीय क्षेत्रपालस्य दक्षतः ॥ ११९॥

बाँस की टोकरी में इसे रखकर मन्त्र पढ़ते हुए उस शिलाखण्ड को रखे, इसके बाद क्षेत्रपाल के दायें छाग ले आये॥ ११९॥

तरुणं चित्रवर्णं च पुष्टं सर्वाङ्गसंयुतम्।
संस्नाप्य तीर्थतोयेन वस्त्रेण परिवेष्टयेत् ॥ १२०॥

युवा, रुचिकर, सर्वाङ्गसुपुष्ट छाग को तीर्थ जल से स्नान करा कर कपड़े से उसे घेर दे॥ १२०॥

गन्धाद्यैश्चाप्यलङ्कृत्य तदङ्गान्यभिमन्त्रयेत्।
तद्गायत्रीं त्रिधा कर्णे जप्त्वा तत्पृष्ठमालभन् ॥ १२१॥

गन्ध-पुष्प मालादि से उसे अलङ्कृत कर, उसके अङ्गों को अभिमंत्रित कर दे,

फिर, उसके कान में तीन बार पशुगायत्री का जप करे फिर, पीठ से उसे कब्जे में कर ले॥ १२१॥

तद् बोधमन्त्रं त्रिर्जप्त्वा रज्जुं तत्राभिमन्त्र्य च ।
शङ्कौ निवेश्य मन्त्रेण बन्धयेत् तद्गले ततः ॥ १२२॥

फिर, उसके कान में तीन बार बोधमन्त्र (उसे चेतना में लाने का मन्त्र) जपकर उसकी डोरी को अभिमंत्रित कर, शङ्कु अर्थात् खूँटें में बाँध कर गले में बाँध दे॥ १२२॥

भूमौ तु निखनेच्छङ्कुं ध्वजजातीयकं तथा ।
अरत्निसम्मितं पश्चात् खड्गं च छुरिकामपि ॥ १२३॥

धरती खोदकर शङ्कु अर्थात् स्थाणु (खूँटी) गाड़ दे तथा ध्वजजातीयक एक हाथ लम्बी तलवार या छुरी भी हो॥ १२३॥

क्रमेणादाय मन्त्रेण तथा तीर्थेन क्षालयेत् ।
मन्त्रेण कुशरज्जुं तु तन्मुष्टावभिवेष्टयेत् ॥ १२४॥

फिर उस तलवार या छुरी को क्रमशः अभिमन्त्रित कर तीर्थजल से धोकर कुश की डोरी को मन्त्रित कर उसकी मूठ में लपेट दे॥ १२४॥

गन्धाद्यैस्तु समभ्यर्च्य मन्त्रं जप्त्वा तु विन्यसेत् ।
क्षेत्रपाल-दक्षपार्श्वे ततो मत्स्यान् समानयेत् ॥ १२५॥

गन्ध आदि से पूजा कर, मन्त्र जपकर इसके बाद क्षेत्रपाल के दायें मछलियों को रख दे॥ १२५॥

जलकुण्डे विनिक्षिप्य क्षेत्रपालस्य वामतः ।
जीवयुक्तांस्तु विषमसंख्यांस्तेष्वेकमद्रिजे ॥ १२६॥

ओ पर्वतपुत्रि, क्षेत्रपाल के बायें जलकुण्ड में विषमसंख्यक जीवित मछलियों को डालकर उनमें से एक को॥ १२६॥

तीर्थोदकेनाभिषिच्य तद्बिन्दुं तन्मुखे क्षिपेत् ।
मन्त्रेण योजयित्वा तं छादयेद् वाससा ततः ॥ १२७॥

तीर्थ जल से उसका अभिसिंचन कर, उसी जल का एक विन्दु उस मछली के मुंह में डालकर, मन्त्र पढ़कर, उसे नवीन वस्त्र से ढँक दे॥ १२७॥

ध्वजजातीयके पीठे हस्तमात्रसूदीर्घके ।
षोडशाङ्गुलविस्तारे वह्निकोणे निवेशिते ॥ १२८॥

ध्वज श्रेणी के पीठ पर एक हाथ लम्बा सोलह अंगुल चौड़ा त्रिकोण बनाकर अग्निकोण में रख दे॥ १२८॥

त्रिकोणं चापि षट्कोणं विलिखेन्मण्डलद्वयम् ।

सुराधात्र्यास्तथा संविद्धात्र्या अपि महेश्वरि ॥ १२९ ॥

उस त्रिकोण के साथ षट्कोण भी बनायें उनमें दो मण्डल का भी निर्माण करे, उनमें सुराधात्री एवं संविधात्री का भी चित्राङ्कन करे॥ १२९॥

रक्तचन्दनकेनैव तत्पश्चात् पुलकान्तरे ।
मन्त्रिण्याश्चापि दण्डिन्याः प्रोक्तमष्टदलान्तरम् ॥ १३० ॥

ये चित्राङ्कन रक्त चन्दन से ही करे, चित्रांकन से प्राप्त प्रसन्नता के पश्चात् पूर्ववर्णित अष्ट दल के भीतर मन्त्रिणी और दण्डिनी की भी स्थापना करे॥ १३०॥

मण्डलद्वितयं कुर्यात् तथा तद्दक्षतः शिवे ।
द्विगुणे फलके देवि मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥ १३१ ॥

दुगुना मण्डल बनायें तथा उससे दायें हे शिवे, दूने फलक पर कई मण्डलों की परिकल्पना करे॥ १३१॥

पञ्चसङ्ख्यस्त्रोतसानां पंक्तिपञ्चकरूतः ।
वेदभूतबाणरामवेदसङ्ख्यानि तानि तु ॥ १३२ ॥

पञ्चसंख्य नदियों का पंक्तिपञ्चक रूप से वेद (३), भूत (५), बाण (५), राम (३), वेद (तीन)—कुल १९ रेखायें खींच दे॥ १३२॥

त्रिकोणानि च सर्वाणि उदक्संस्थानि शङ्करि ।
प्रत्यङ्मुखानि सर्वाणि तेष्वाह्वानादिपूर्वकम् ॥ १३३ ॥

हे शङ्करि, पानी भरे सारे त्रिकोण हों, भीतर की ओर अर्थात् पश्चिममुख हों, उनमें देवता को आह्वानपूर्वक॥ १३३॥

दैवतानि च सम्पूज्य उपचारैस्तु पञ्चभिः ।
ततः सपर्यां श्रीचक्रे कुर्याद् वै सुविधानतः ॥ १३४ ॥

उनमें पञ्चोपचार से देवताओं की पूजा कर बाद में पूर्ण विधान के सात श्रीचक्र की पूजा करे॥ १३४॥

पायसं श्रपयित्वाऽथ नैवेद्ये विनियोजयेत् ।
इन्द्रादीनावाहितांस्तु सर्वान् पञ्चोपचारकैः ॥ १३५ ॥

इसके बाद दूध में उबले चावल अर्थात् खीर बनाकर नैवेद्य चढ़ाये, फिर, आवाहित इन्द्रादि देवताओं की पञ्चोपचार पूजा करे॥ १३५॥

सम्पूज्य त्रिस्तर्पयेच्च ततो होमादिकं शिवे ।
सामयींश्चापि सम्पूज्य समाप्यार्चनकं ततः ॥ १३६ ॥

पूजा समाप्त कर तीन बार तर्पण समाप्त कर हे शिवे, होमादि करे, इसके बाद सामयी की पूजा कर, पूजा समाप्त कर दे॥ १३६॥

यजमानो ऋत्विजश्च कुर्युः पायसभोजनम् ।
रक्षणं सुविधायाथ स्वापं कुर्युः पवित्रतः ॥ १३७॥

यजमान और ऋत्विक् अर्थात् यज्ञीय पुरोहित पायस भोजन करे। फिर, यज्ञीय पशु का संरक्षण सुनिश्चित कर सो जायँ॥ १३७॥

रात्रौ तु साधकाचार्यः प्रथमं सुविधानतः ।
यन्त्रविद्यासु कुशलो यन्त्रात् समवतारयेत् ॥ १३८॥

रात में यन्त्रविद्याओं में दक्ष साधकाचार्य पहले विधानपूर्वक यन्त्र से यन्त्र की आराधना करे॥ १३८॥

ततोऽर्धरात्रसमये प्रोत्थायर्त्विङ्मुखाः शिवे ।
पवित्रभूतास्ते सर्वे कर्म कुर्युर्यथोक्तवत् ॥ १३९॥

उसके बाद हे शिवे, मध्य रात्रि में उठकर यज्ञीय पुरोहित के सामने पहले बतलायी गई विधि से पवित्र हो कर वे सारे कर्म करे॥ १३९॥

ततस्तु शमितारं वै सच्छूद्रं विनियोजयेत् ।
उपासनायुतं भक्तिश्रद्धायुक्तं महेश्वरि ॥ १४०॥

तत्पश्चात् हे महेश्वरि, उपासनायुक्त, श्रद्धाभक्तिसमन्वित शान्त एवं सौम्य सच्छूद्र की नियुक्ति करे॥ १४०॥

दद्यान्मन्त्रेण खड्गं तु तस्मै प्रत्यङ्मुखस्ततः ।
शमितोदङ्मुखः छागं प्रार्थयेत् प्राङ्मुखं पशुम् ॥ १४१॥

फिर पश्चिममुख खड़े उस वधिक के हाथ में अभिमन्त्रित तलवार दे शान्त उत्तरमुख पशु को पूर्वाभिमुख यजमान॥ १४१॥

ततोऽस्त्रमुच्चरंश्छिन्द्यात् सकृद्घातेन वै गले ।
गतप्राणं दक्षपृष्ठ-प्राङ्मूर्धानं विनिक्षिपेत् ॥ १४२॥

तत्पश्चात् हथियार उठाकर एक ही घात में छाग का शिर धड़ से अलग कर दे, गतप्राण छाग की पीठ दक्षिण एवं शिर पूर्व की ओर करके रख दे॥ १४२॥

मस्तकेन च संयोज्य ततस्तु छुरिकां तथा ।
दद्यात्तस्मै तथा मत्स्यान् घातयेदखिलामपि ॥ १४३॥

शिर को धड़ से जोड़कर, उसके हाथ में छुरी दे दे, उससे वह सारी मछलियों को मार दे॥ १४३॥

ताँश्चापि वस्त्रे निक्षिप्य शमितारमुपस्थितम् ।
सम्पूज्य वस्त्रमन्नं च दत्त्वा तं तु विसर्जयेत् ॥ १४४॥

आत्मनियन्त्रित व्यक्ति की उपस्थिति में उन्हें भी वस्त्र से ढँककर उनकी पूजा कर उन्हें अन्न वस्त्र देकर विसर्जित कर दे॥ १४४॥

पुरःसरं पशोरङ्गे सिञ्चेत् कलशतो यतः।
मन्त्रैः प्रोक्तक्रमेणैव आचार्येण सहैव तु॥ १४५॥

आचार्य के साथ पूर्वकथित क्रम से मन्त्रोच्चार के साथ पशु के अङ्ग को आगे रखकर कलश जल से सिंचित करे॥ १४५॥

गृहीत्वा छुरिकां मन्त्रैः पशोर्विशसनं चरेत्।
बद्ध्वा विसृज्य तच्चर्म चाङ्गानि प्रविभागशः॥ १४६॥

हाथ में छुरी लेकर मन्त्र पढ़ते हुए उसके शरीर का टुकड़ा करे, इससे पूर्व उसे बाँधकर उसकी खाल उड़ेल दे॥ १४६॥

उपलक्ष्य तु सूक्ष्मेण मत्स्यानप्येवमेव तु।
निवेदयेत् पाकशालामध्ये मन्त्रेण शङ्करि॥ १४७॥

सूक्ष्मदृष्टि से मछलियों को भी उसी तरह कर, हे शङ्करि, मन्त्र पढ़ते हुए पाकशाला में सौंप देना चाहिए॥ १४७॥

प्रदर्शयेत् साधकाचार्याय सोऽपि पचेत् पृथक्।
एकत्र वापि देवेशि तदङ्गान्यभिसंज्ञया॥ १४८॥

साधकाचार्य को यह दिखलायें, वे भी इसे अलग पकाये, अथवा हे देवेशि, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों को अभिसिंचित कर एक साथ पकाये॥ १४८॥

आचार्यः पुनरागत्य पशोर्मत्स्यस्य चैव तु।
शोणितं पतितं भूम्यै तद् देव्यै तु समर्पयेत्॥ १४९॥

आचार्य फिर लौटकर वहाँ आ जायँ और छाग एवं मछलियों के रक्त, जो वहाँ धरती पर गिरे हों उन, को उठाकर देवी को समर्पित कर दे॥ १४९॥

निखनेत् तत्र चास्थीनि मलपित्तकफादिकम्।
खुरचर्मादिकञ्चापि ततो मण्डपमध्यतः॥ १५०॥

फिर, वहाँ हड्डियाँ, मल, पित्त और कफादि, खुर, चमड़ी आदि को भी मण्डप के बीच में खोदकर गाड़ दे॥ १५०॥

चणकाँस्तु समादाय मन्त्रेणोलूखले क्षिपेत्।
मन्त्रेण कण्डयेच्चापि निस्तुषात् तीर्थतोयतः॥ १५१॥

फिर चना लेकर मन्त्र पढ़ते हुए उसे ओखली में डालकर कूटें और तीर्थ जल से धोकर उसे भूसी से अलग कर लें॥ १५१॥

निषिच्य पश्चान्मन्त्रेण पञ्चतिक्तसमायुताम् ।
संविदं पेषयेत् त्रिर्वै तत्पश्चात्तु पुरःसरः ॥ १५२॥

उन्हें जल से सींचकर पीछे मन्त्र के साथ पञ्चतिक्त मिलाकर संविद को तीन बार पीसकर इसके बाद उन्हें आगे कर॥ १५२॥

पेषयेत् सूक्ष्मरूपेण गालयेद् वाससापि च ।
अर्धमानेन सितया मिश्रयेत्तु प्रमाणतः ॥ १५३॥

उन्हें पतला पीसकर कपड़े से छान डालें, प्रमाणपुरःसर घोल में आधा चीनी या शक्कर मिला दे॥ १५३॥

तीर्थं तोयेन संसाध्य न्यसेत् काष्ठस्य भाजने ।
त्रिकोणरूपे साधारे चणकान् पेषयेत् ततः ॥ १५४॥

तीर्थ जल से इन्हें संसाधित कर काष्ठ के बरतन में रख दे। तत्पश्चात् त्रिकोणरूपी आधार के साथ चने को रखकर पीसे॥ १५४॥

निवेदयेत् साधकाचार्याय पात्रं तु संविदः ।
वेद्यधश्चोत्तरदिशि कुशेष्वाच्छाद्य साधयेत् ॥ १५५॥

फिर वह संविद पात्र साधकाचार्य को समर्पित कर दे। वेदी के नीचे कुशों को फैलाकर उसपर साधन करे॥ १५५॥

ततस्तु साधकाचार्यः प्रागन्ते चुल्लिकात्रये ।
द्वितीयादित्रयं कार्यं तत्पिष्टेनान्यपिष्टकम् ॥ १५६॥

इसके बाद साधकाचार्य सर्वप्रथम तीनों चूल्हों में से दूसरे और तीसरे को कार्य में लाये अर्थात् उस पिसे हुए पदार्थ से रोटी सेके॥ १५६॥

सम्मेत्य मुद्रां संसाध्य पशोरङ्गानि सर्वतः ।
सुपक्वानि पृथङ् न्यस्य पलान्यूनं सुपात्रके ॥ १५७॥

उन्हें मिलाकर, मुद्रा का संसाधन कर, पशु के सारे अङ्गों को और मांस को ठीक से पकाकर न अधिक त्रुटिपूर्ण और न ही आवश्यकता से अधिक सुपक्व मांस को अलग बरतन में रखकर॥ १५७॥

मूर्धानं च वपां मेढ्रं वृषणं च समग्रकम् ।
अन्यत्सर्वं मेलयित्वा संस्कुर्याल्लवणादिभिः ॥ १५८॥

मूड़े हुए शिर, चर्बी, फोते एवं अन्य सारे अङ्गों को मिलाकर उचित मात्रा में उनमें नमक डालकर ठीक से पकाये॥ १५८॥

तृतीयं चापि संस्कुर्याद् विधिना सुविधानवित् ।
अथाचार्यमुखाः सर्वे नित्यं निर्वर्त्य वै ततः ॥ १५९॥

अच्छी तरह की प्रक्रिया को जाननेवाले व्यक्ति तीसरे को भी सुन्दर ढंग से पकायें। इसके बाद आचार्यप्रमुख नित्यकर्म से निवृत्त होकर॥ १५९॥

स्व-स्व-स्थानस्थिताः सर्वे कर्म कुर्युर्यथाविधि।
वेदिकायां पश्चिमतो यन्त्रराजं निधाय तु॥ १६०॥

अपनी अपनी जगह पर उपस्थित सबके सब यथाविध कर्म करे। वेदिका के पश्चिम यन्त्रराज को रखें॥ १६०॥

द्वारपूजादिपात्राणां प्रतिष्ठान्तं निवर्त्तयेत्।
मण्डलेशाह्वानपूर्वं ततः पात्रे तु काष्ठजे॥ १६१॥

द्वारपूजादि पात्रों का प्रतिष्ठान्त तक कर्म पूरा करे। इसके बाद पहले मण्डलेश का आह्वान करे, इसके बाद काष्ठ के पात्र में॥ १६१॥

चतुरस्त्रे हस्तमिते गर्तेष्वाज्यमुपस्तरेत्।
मन्त्रेण तत्तदङ्गानि क्रमेणैव विनिक्षिपेत्॥ १६२॥

चतुष्कोण के बीच में एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें घी का छिड़काव करे; उस गर्त में मन्त्र पढ़ते हुए पशु अङ्गों को क्रमशः व्यवस्थित कर दे॥ १६२॥

अग्नेरुत्तरतस्तद्वै कुशेष्वासादयेच्छिवे।
प्रार्थ्याथ सम्यगाच्छाद्य कुशैर्वस्त्रेण चोपरि॥ १६३॥

हे शिवे, स्थापित अग्नि के उत्तर कुशों को फैला दे, फिर प्रार्थना कर फिर, फैलाये गये कुशों पर वहाँ आकर उसे वस्त्र से ऊपर॥ १६३॥

ब्रह्माग्निमध्ये गर्ते तु अङ्गुलद्वयनिम्नके।
अङ्गुलद्वितयोच्चात्ममेखला-सुविराजिते॥ १६४॥

ब्रह्मा, आग के बीच दो अंगुल नीचे ऐसे गर्त में अपने से दो अंगुल अधिक मेखला में विराजित हो॥ १६४॥

प्राक्-प्रत्यक्-दीर्घरूपे वै सार्ध-हस्तप्रमाणके।
हस्तमात्र-सुविस्तारे प्रोक्ष्यास्त्रेण कुशान् न्यसेत्॥ १६५॥

पूर्व-पश्चिम डेढ़ हाथ लम्बी और एक हाथ चौड़ी धरती को अस्त्र से पवित्र कर उसपर कुश फैला दे॥ १६५॥

तेषु पात्राण्यासादयेत् स्रुक्त्रयं स्रुवमेव च।
हस्तदीर्घं दक्षिणतः प्रागग्रं तत्र पूर्वतः॥ १६६॥

उनपर बरतनों को फैला दे स्रुक् और स्रुवा को रख दे, वह एक हाथ लम्बा दक्षिण से और पूरब से पश्चिम की ओर अग्रभाग कर रख दे॥ १६६॥

चतुरङ्गुलविस्तारं मध्येऽष्टाङ्गुलसम्मितम्।

पार्श्वयोर्दीर्घवृत्तं वै द्वादशाङ्गुलमानतः ॥ १६७॥

चार अङ्गुल फैलाव, बीच का भाग आठ अङ्गुल, दोनों बगल में लम्बा वृत्त बारह अंगुल का हो॥ १६७॥

शेषपात्रं च संसाद्य संस्कुर्यादुक्तरीतितः ।
प्रत्यग्भागे द्वयं चैव द्वादशाङ्गुलदीर्घकम् ॥ १६८॥

शेषपात्र को रखकर उक्त रीति से संस्कृत करे। भीतरी भाग दो बारह अंगुल लम्बा हो॥ १६८॥

षडङ्गुलसुविस्तारमुच्चं स्याच्चतुरङ्गुलम् ।
संविद्ग्रहणिकाख्यं च सुराग्रहणिकाख्यकम् ॥ १६९॥

छः अङ्गुलि चौड़ी और चार अङ्गुलि ऊँची, संविद ग्रहणिका और सुराग्रहणिका नामक दो होना चाहिए॥ १६९॥

एवं सर्वं तु संस्कुर्यात् शेषपात्रात्त्रयं शिवे ।
चतुरङ्गुलदण्डेन पार्श्वयोरुभयोर्युतम् ॥ १७०॥

इस तरह सारे पात्रों का संस्कार सम्पन्न कर, हे शिवे, शेष तीन पात्रों को चार अङ्गुल दण्ड से उनके दोनों छोर के साथ बाँध दे॥ १७०॥

संविद्भैरवसूक्ताभ्यामभिमन्त्र्य तु संविदम् ।
आकाशे तर्पयेत् तत्त्वमुद्रया भैरवं त्रिधा ॥ १७१॥

संविद् और भैरव सूक्तों से अभिमंत्रित कर संविद को आकाश में तर्पण करे और तत्त्वमुद्रा से तीन बार भैरव को॥ १७१॥

इन्द्रस्य पात्रादारभ्य पात्राणि स्थापयेत् क्रमात् ।
हेतुद्रव्येण सम्पूर्य यजेत् तत्तन्मनुं क्रमात् ॥ १७२॥

इन्द्र के पात्र से प्रारम्भ कर क्रमशः पात्रों की स्थापना करनी चाहिए, उन पात्रों को हेतुद्रव्य से भरकर उन्हें अनुक्रम से मन्त्र द्वारा पूजित करना चाहिए॥ १७२॥

उपचारान्मूलदेव्याः सम्पूज्य तदनन्तरम् ।
वेद्याः प्राङ्नैर्ऋतमरुद्भागे पीठत्रयोपरि ॥ १७३॥

उपचारों से मूलदेवी की पूजा कर उसके बाद वेदी से पूर्व नैर्ऋत्य एवं वायव्य कोण में तीनों पीठों पर॥ १७३॥

चतुरस्त्रे चाष्टदले वृत्तेषु क्रमतो यजेत् ।
ब्रह्मविष्णुशिवान् सूर्यपावकेन्दूँश्च पूजयेत् ॥ १७४॥

चतुष्कोण में अष्टदल पर बने वृत्तों में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूर्य, अग्नि एवं इन्दु की पूजा करे॥ १७४॥

आवृतिं तु समाप्याथ पूजाङ्गं होममेव च।
ततः प्रवर्त्तयेद् यागम् इन्द्रादिक्रमतः शिवे ॥ १७५॥

हे शिवे, पूजाङ्ग होम एवं आवृति समाप्त कर इन्द्रादि का क्रमशः याग प्रारम्भ करे॥ १७५॥

तत्र तत्र पूजयित्वा उपचारैस्तु पञ्चभिः।
इन्द्रं तिरस्कृतिं क्षेत्रपालं भैरवमेव च ॥ १७६॥

उन उन स्थानों पर इन्द्र, तिरस्कृति, क्षेत्रपाल एवं भैरव की पञ्चोपचारों से पूजा कर॥ १७६॥

विश्वमूर्तिं संविदाख्यां सुराख्यामपि देवताम्।
गङ्गां च वरुणञ्चैव मन्त्रिणीं दण्डिनीं तथा ॥ १७७॥

विश्वमूर्ति, संविदा नामवाली तथा सुराख्या नामक देवता, गङ्गा, वरुण, मन्त्रिणी एवं दण्डिनी॥ १७७॥

नित्याश्चौघगुरूंश्चापि षडङ्गाद्यखिलावृतीः।
ब्रह्माद्यान् सूर्यमुख्यांश्च तथाम्नायस्य देवताः ॥ १७८॥

नित्या, औघगुरु, षडङ्गादि, सारी आवृतियाँ, ब्रह्मादि, सूर्यमुखी तथा आम्नाय के सभी देवता॥ १७८॥

क्रमेणैता यजेत् देवि आह्वानस्तुतिपूर्वकम्।
होतुर्यागस्य मन्त्रान्ते स्वाहान्तं नाम वै पठन् ॥ १७९॥

होता याग के मन्त्र के अन्त में स्वाहा नाम का पाठ करते हुए, हे देवि, इनका क्रमशः आवाहन एवं स्तुतिपूर्वक पूजन करे॥ १७९॥

यजेत् क्रमेण त्वाचार्यो ब्रह्माज्ञादि-क्रमेण वै।
क्रमेण स्रुक्त्रये देवि उपस्तरणपूर्वकम् ॥ १८०॥

ब्रह्माज्ञादि क्रम से आचार्य क्रमशः यज्ञ करे। हे देवि, उपस्तरणपूर्वक, तीनों स्रुक् को॥ १८०॥

मन्त्रेण संविदं हेतुं पश्वङ्गमगकन्यके।
द्विधाऽवदानं पश्वङ्गेऽभिधारः पुनरेव च ॥ १८१॥

मन्त्र के द्वारा संविद को, हेतु को तथा पशु के अङ्गों को दो टुकड़ों में काटकर उसका पुनः संज्ञा-संस्कार करे॥ १८१॥

संविद्धेत्वोश्चतुर्धा तु ग्राह्यं दर्व्या महेश्वरि।
तत्तत्पात्रात् तु गृह्णीयाद्धेतुं सामान्यतोऽन्यतः ॥ १८२॥

बिंधे हुए उस मांसपिण्ड को चार तरह से यज्ञीय बनाकर करछुल या चम्मच से ग्रहण करने योग्य बनाये, इसके बाद हेतु को सामान्य रूप से अथवा अन्यत्र से ग्रहण करे॥ १८२॥

श्रीपात्रान्मूलदेव्यै तु पश्वङ्गहविषः शिवे ।
ऊर्ध्वे हेतुस्त्रुचं न्यस्य वामे संवित्स्त्रुचं नयेत् ॥ १८३॥

हे शिवे, मूलदेवी के लिए पशु के अङ्गस्वरूप हविष्य को श्रीपात्र से लेकर ऊपर हेतुस्रुवा को रखकर बायें संविद्-स्रुवा ले आये॥ १८३॥

पुरःसरेण पात्राणामुद्घाटनपिधानकम् ।
कुर्यादादौ स्त्रुवेणाज्यं जुहुयात् क्रमतः शिवे ॥ १८४॥

आगे से पात्रों का उद्घाटन एवं आच्छादन कर, हे शिवे, सर्वप्रथम स्रुवा में घी लेकर हवन करे॥ १८४॥

स्त्रुक्त्रयं क्रमतो न्यस्य स्थाने पश्चाद् घृतं हुनेत् ।
इन्द्रादिमुख्यदेवांस्तु त्रिधा हुत्वा तदावृतिम् ॥ १८५॥

क्रम से तीनों स्रुवाओं को अपनी जगह रखकर नीचे घी से हवन करे। इन्द्रादि प्रमुख देवताओं का तीन बार हवन कर तब आवृतिहवन करे॥ १८५॥

प्रोक्तेषु सकृदाज्येन हुत्वा पश्चात् तु संविदम् ।
हेतुं पश्वङ्गकं चापि जुहुयात् प्रोक्तरीतितः ॥ १८६॥

पूर्व निर्धारित पात्रों में एक बार हवन कर पीछे संविद में, बताई गई रीति से हेतु और पशु-अंग के लिए भी हवन करे॥ १८६॥

संविच्छेषं हेतुशेषं हुतस्य शेषपात्रके ।
क्षिपेदेवमङ्गशेषं प्राक्पात्रेऽपि महेश्वरि ॥ १८७॥

संवित् का शेष और हेतु का शेष हुत के शेष पात्र में डाल दे। हे महेश्वरि, इसी तरह अङ्गशेष भी पूर्व पात्र में डाल दे॥ १८७॥

एवं भैरवपर्यन्तानिष्ट्वा शेषंतु संविदः ।
षोडशाङ्गुलदीर्घे तु अष्टाङ्गुलसुविस्तृते ॥ १८८॥

इस तरह भैरव पर्यन्त देवताओं का यजन कर शेष को संविद में डाल दे। फिर, सोलह अंगुल लम्बे, आठ अंगुल चौड़े॥ १८८॥

चतुरङ्गुलनिम्ने च पात्रे शेषे विनिक्षिपेत् ।
पूर्वद्वारवेदिकयोर्मध्ये दर्भान् परितस्तरेत् ॥ १८९॥

और चार अंगुल गहरे पात्र में शेष को डाल दे। पूर्वद्वार से वेदिका के बीच कुशों का परिस्तरण करे॥ १८९॥

संवित्पात्रात् संविदं तु तत्पात्रे सुप्रपूरयेत् ।
मन्त्रेणानीय दर्भेषु तेषु मन्त्रेण विन्यसेत् ॥ १९० ॥

संवित् पात्र से उस पात्र में संविद भरें। मन्त्र से दर्भ को लाकर मंत्र पढ़ते हुए उसे पूरा करे॥ १९०॥

उदग्दक्ष-सुदीर्घेण शक्तिं तत्र सुपूजयेत् ।
भैरवीं वस्त्रभूषाद्यैः प्रत्यङ्मुखतया स्थिताम् ॥ १९१ ॥

उत्तर से दक्षिण काफी लम्बी भूमि में शक्ति की पूजा करे, वस्त्र और आभूषणों से पश्चिमाभिमुख भैरव की पूजा करे॥ १९१॥

दक्षिणोत्तरयोस्तस्य आचार्ययजमानकौ ।
प्रत्यग्दिशि तथा ब्रह्मा तद्दक्षे चोत्तरेऽपि च ॥ १९२ ॥

उसके उत्तर और दक्षिण में आचार्य और यजमान रहे। उसके पश्चिम ब्रह्मा, उसके दक्षिण और उत्तर में भी॥ १९२॥

होता स्तोता शक्तिदक्षे निषीदेच्च पुरःसरः ।
यजमानस्य पत्नी तु स्याच्चेत् तद्वामतः स्थिता ॥ १९३ ॥

होता और स्तोता रहें, शक्ति के दायें आगे की ओर बैठे और यजमान की पत्नी हो तो वह उसके बायें बैठे॥ १९३॥

मन्त्रेण पात्रदण्डे तु गृहीत्वा पात्रमुद्धरेत् ।
आचार्यो यजमानश्च शक्तिमन्त्रेण पाययेत् ॥ १९४ ॥

मन्त्र के द्वारा पात्रदण्ड में पात्र लेकर उसका उद्धार करे। आचार्य और यजमान दोनों ही शक्ति मन्त्र से उसका पान करे॥ १९४॥

अन्वारब्धाः सर्व एव द्विस्तूष्णीं पाययेदनु ।
ततस्तस्येच्छया सम्यक् पाययित्वा ततः परम् ॥ १९५ ॥

सबका पहले अन्वारम्भ करे अर्थात् (यज्ञ का अनुष्ठाता का पुनीत संस्कार के सुफल का अधिकारी बनाने के लिए स्पर्श करे) इसके बाद दो बार चुपचाप पान करे। इसके बाद उसकी इच्छा से अच्छी तरह उन्हें पिलाकर, इसके बाद॥ १९५॥

पत्नीं तथा पाययेद् वै ब्रह्माचार्यस्ततः परम् ।
होता स्तोता चापि पुरःसरश्च यजमानकः ॥ १९६ ॥

इसके बाद पत्नी को पिलायें फिर ब्रह्मा और आचार्य को फिर यजमान के आगे होता और स्तोता को भी उसी तरह पान कराये॥ १९६॥

तथा पिबेयुः सर्वे वै आचार्ययजमानयोः ।
पाने ब्रह्मा दण्डधर आदौ शक्तिमुखे सकृत् ॥ १९७ ॥

बिंधे हुए उस मांसपिण्ड को चार तरह से यज्ञीय बनाकर करछुल या चम्मच से ग्रहण करने योग्य बनाये, इसके बाद हेतु को सामान्य रूप से अथवा अन्यत्र से ग्रहण करे॥ १८२॥

श्रीपात्रान्मूलदेव्यै तु पश्वङ्गहविषः शिवे ।
ऊर्ध्वे हेतुस्त्रुचं न्यस्य वामे संवित्स्त्रुचं नयेत् ॥ १८३॥

हे शिवे, मूलदेवी के लिए पशु के अङ्गस्वरूप हविष्य को श्रीपात्र से लेकर ऊपर हेतुस्त्रुवा को रखकर बायें संविद्-स्रुवा ले आये॥ १८३॥

पुरःसरेण पात्राणामुद्घाटनपिधानकम् ।
कुर्यादादौ स्त्रुवेणाज्यं जुहुयात् क्रमतः शिवे ॥ १८४॥

आगे से पात्रों का उद्घाटन एवं आच्छादन कर, हे शिवे, सर्वप्रथम स्त्रुवा में घी लेकर हवन करे॥ १८४॥

स्त्रुक्त्रयं क्रमतो न्यस्य स्थाने पश्चाद् घृतं हुनेत् ।
इन्द्रादिमुख्यदेवांस्तु त्रिधा हुत्वा तदावृतिम् ॥ १८५॥

क्रम से तीनों स्रुवाओं को अपनी जगह रखकर नीचे घी से हवन करे। इन्द्रादि प्रमुख देवताओं का तीन बार हवन कर तब आवृतिहवन करे॥ १८५॥

प्रोक्तेषु सकृदाज्येन हुत्वा पश्चात् तु संविदम् ।
हेतुं पश्वङ्गकं चापि जुहुयात् प्रोक्तरीतितः ॥ १८६॥

पूर्व निर्धारित पात्रों में एक बार हवन कर पीछे संविद में, बताई गई रीति से हेतु और पशु-अंग के लिए भी हवन करे॥ १८६॥

संविच्छेषं हेतुशेषं हुतस्य शेषपात्रके ।
क्षिपेदेवमङ्गशेषं प्राक्पात्रेऽपि महेश्वरि ॥ १८७॥

संवित् का शेष और हेतु का शेष हुत के शेष पात्र में डाल दे। हे महेश्वरि, इसी तरह अङ्गशेष भी पूर्व पात्र में डाल दे॥ १८७॥

एवं भैरवपर्यन्तानिष्ट्वा शेषंतु संविदः ।
षोडशाङ्गुलदीर्घे तु अष्टाङ्गुलसुविस्तृते ॥ १८८॥

इस तरह भैरव पर्यन्त देवताओं का यजन कर शेष को संविद में डाल दे। फिर, सोलह अंगुल लम्बे, आठ अंगुल चौड़े॥ १८८॥

चतुरङ्गुलनिम्ने च पात्रे शेषे विनिक्षिपेत् ।
पूर्वद्वारवेदिकयोर्मध्ये दर्भान् परितस्तरेत् ॥ १८९॥

और चार अंगुल गहरे पात्र में शेष को डाल दे। पूर्वद्वार से वेदिका के बीच कुशों का परिस्तरण करे॥ १८९॥

संवित्पात्रात् संविदं तु तत्पात्रे सुप्रपूरयेत् ।
मन्त्रेणानीय दर्भेषु तेषु मन्त्रेण विन्यसेत् ॥ १९० ॥

संवित् पात्र से उस पात्र में संविद भरें। मन्त्र से दर्भ को लाकर मंत्र पढ़ते हुए उसे पूरा करे॥ १९०॥

उदग्दक्ष-सुदीर्घेण शक्तिं तत्र सुपूजयेत् ।
भैरवीं वस्त्रभूषाद्यैः प्रत्यङ्मुखतया स्थिताम् ॥ १९१ ॥

उत्तर से दक्षिण काफी लम्बी भूमि में शक्ति की पूजा करे, वस्त्र और आभूषणों से पश्चिमाभिमुख भैरव की पूजा करे॥ १९१॥

दक्षिणोत्तरयोस्तस्य आचार्ययजमानकौ ।
प्रत्यग्दिशि तथा ब्रह्मा तद्दक्षे चोत्तरेऽपि च ॥ १९२ ॥

उसके उत्तर और दक्षिण में आचार्य और यजमान रहे। उसके पश्चिम ब्रह्मा, उसके दक्षिण और उत्तर में भी॥ १९२॥

होता स्तोता शक्तिदक्षे निषीदेच्च पुरःसरः ।
यजमानस्य पत्नी तु स्याच्चेत् तद्वामतः स्थिता ॥ १९३ ॥

होता और स्तोता रहें, शक्ति के दायें आगे की ओर बैठे और यजमान की पत्नी हो तो वह उसके बायें बैठे॥ १९३॥

मन्त्रेण पात्रदण्डे तु गृहीत्वा पात्रमुद्धरेत् ।
आचार्यो यजमानश्च शक्तिमन्त्रेण पाययेत् ॥ १९४ ॥

मन्त्र के द्वारा पात्रदण्ड में पात्र लेकर उसका उद्धार करे। आचार्य और यजमान दोनों ही शक्ति मन्त्र से उसका पान करे॥ १९४॥

अन्वारब्धाः सर्व एव द्विस्तूष्णीं पाययेदनु ।
ततस्तस्येच्छया सम्यक् पाययित्वा ततः परम् ॥ १९५ ॥

सबका पहले अन्वारम्भ करे अर्थात् (यज्ञ का अनुष्ठाता का पुनीत संस्कार के सुफल का अधिकारी बनाने के लिए स्पर्श करे) इसके बाद दो बार चुपचाप पान करे। इसके बाद उसकी इच्छा से अच्छी तरह उन्हें पिलाकर, इसके बाद॥ १९५॥

पत्नीं तथा पाययेद् वै ब्रह्माचार्यस्ततः परम् ।
होता स्तोता चापि पुरःसरश्च यजमानकः ॥ १९६ ॥

इसके बाद पत्नी को पिलायें फिर ब्रह्मा और आचार्य को फिर यजमान के आगे होता और स्तोता को भी उसी तरह पान कराये॥ १९६॥

तथा पिबेयुः सर्वे वै आचार्ययजमानयोः ।
पाने ब्रह्मा दण्डधर आदौ शक्तिमुखे सकृत् ॥ १९७ ॥

तत्पश्चात् वहाँ सबके सब पान करे, आचार्य और यजमान के पान में पहले ब्रह्मा और दण्डधर फिर एक बार मात्र शक्तिमुख में॥ १९७॥

ब्रह्मा पिबेत् स्वस्य मुखेऽनन्तरं ब्रह्मणोऽपि च।
आचार्यः स्वमुखे पश्चादेवमन्येषु वै क्रमात्॥ १९८॥

ब्रह्मा अपने मुख में पीयें, ब्रह्मा के बाद आचार्य भी अपने मुख में डालें, पीछे क्रमानुसार सब पान करे॥ १९८॥

प्रादक्षिण्येन सर्वेषां पाने पानमुदाहृतम्।
विच्छेदो नैव कर्तव्यो यजमानस्तृतीयकम्॥ १९९॥

प्रदक्षिणा क्रम में सबके पान को ही पान कहा गया है। इस पान में विच्छेद नहीं करना चाहिए। यजमान का स्थान तीसरा है॥ १९९॥

पत्नीसत्त्वे तन्मुखेन पानं दक्षे स्थितः पिबेत्।
सर्वैरेवं सशेषं तु भैरवाग्रे समुत्सृजेत्॥ २००॥

पत्नी के रहने पर उससे दायें रहकर उसी के मुख से पान करे। इसी तरह सर्वत्र करे, शेषभाग भैरव के आगे उत्सर्जित करे॥ २००॥

मन्त्रेणाचार्यकः पश्चाद् यागं कुर्याद् यथाक्रमम्।
तलेन दक्षिणेनैव पात्राधः संस्पृशन् पिबेत्॥ २०१॥

आचार्य मन्त्र पढ़कर पान करे, पश्चात् यथाक्रम याग करे, पात्र के नीचे दायीं हथेली का सहारा देकर पान करे॥ २०१॥

सुवासिनीं वस्त्रभूषादक्षिणाद्यैः सुपूजयेत्।
पश्चात् तु विश्वमूर्त्यादीन् क्रमेणैव यजेच्छिवे॥ २०२॥

पहले वस्त्र, आभूषण और दक्षिणादि देकर सुवासिनी की पूजा करे पीछे विश्वमूर्ति आदि का क्रमशः यजन करे॥ २०२॥

नित्याद्या आवृति-प्रान्ता घृतेन जुहुयात् पृथक्।
षोडशीं सप्तदशिकां त्रिगुरून् पादुकामपि॥ २०३॥

नित्या, आद्या, आवृति, प्रान्ता का हवन घी से अलग करना चाहिए। षोडशी, सप्तदशिका, तीनों गुरुओं को तथा पादुका की भी॥ २०३॥

चक्रेश्वरीमखण्डां च पञ्चिकाद्याः क्रमाद् यजेत्।
तुरीय-समयामाम्नायानां च समयां तथा॥ २०४॥

इसी तरह चक्रेश्वरी, अखण्डा और पञ्चिका क्रमशः यजन करे। तुरीय समया, आम्नायों की समया का भी यजन करे॥ २०४॥

यजेत् ततस्तु ब्रह्मादीन् प्रोक्तरीत्यागकन्यके।

एवं यागं समाप्याथ बलिपूजादिकं चरेत् ॥ २०५॥

हे पार्वति, इसके बाद ब्रह्मादि का भी उक्त रीति से यजन करे। इस तरह पूजा समाप्त कर बलिपूजा करे॥ २०५॥

सुवासिनीपूजनान्ते कुर्यात् पूर्णाहुतिं शिवे।
स्रुचां त्रयेऽपि च घृतसंविद्धेतु-प्रपूरणात् ॥ २०६॥

हे शिवे, अन्त में सुवासिनी पूजा कर पूर्णाहुति दे। फिर तीनों स्रुवाओं में भी घी भरकर संवित् के लिए॥ २०६॥

मुख्याङ्गेनापि संयोज्य क्रमेण परमेश्वरि।
आह्वानस्तुतिमन्त्रांस्तु सकृदाद्ये द्वयं ततः ॥ २०७॥

हे परमेश्वरि, मुख्याङ्ग से जोड़कर क्रमशः आह्वान एवं स्तुति मंत्रों को एक बार और आदि में दो बार, इसके बाद॥ २०७॥

स्वाहान्तनाम्नैव देवि ततोऽग्नेस्तु प्रपूजनम्।
प्रायश्चित्ताहुतीश्चैव चाग्नेरुत्तरकर्म च ॥ २०८॥

हे देवि, नाम के साथ अन्त में स्वाहा का उच्चारण करे तत्पश्चात् अग्नि का प्रपूजन करे। फिर, प्रायश्चित् आहुति दे और अग्नि का उत्तर कर्म करे॥ २०८॥

दिक्पालानां बलिं दद्यान्मन्त्रैश्च तिरस्कृतेः।
भैरवाय बलिं दत्त्वा क्षेत्रपालाय चेश्वरि ॥ २०९॥

दिग्पालों को बलि चढ़ाये, मन्त्रोच्चारपूर्वक तिरस्कृति को भी बलि चढ़ाये। हे ईश्वरि, क्षेत्रपाल एवं भैरव के लिए बलि दे॥ २०९॥

तिरस्कृत्यादिके देवि पुरुषाहारसम्मितम्।
हेतुपात्रमितं हेतुं बलिं दद्यात् पृथक् पृथक् ॥ २१०॥

हे देवि, तिरस्कृत्यादि को एक पुरुष एक बार में जितना आहार लेता हो उतना, और हेतुपात्र के माप कर हेतु दोनों हेतु और बलि अलग अलग दे॥ २१०॥

दिक्पालेषु बिल्वफलमितान् पिण्डान् बलिं हरेत्।
भैरवस्य बलिं श्वभ्यः शूद्राय क्षेत्रपालजम् ॥ २११॥

बेल के फल के समान पिण्ड की बलि दिग्पालों को देना चाहिए। भैरव का बलि कुत्तों के लिए एवं क्षेत्रपालज अर्थात् खेत में उत्पन्न या दूसरे की पत्नी में दूसरे पुरुष द्वारा उत्पादित सन्तान की बलि शूद्र के लिए देनी चाहिए॥ २११॥

तिरस्कृतेर्बलिं दद्यात् सर्वेभ्योऽपि महेश्वरि।
ततः खड्गं समादाय अस्त्रान्तं बलिमन्त्रकम् ॥ २१२॥

हे महेश्वरि, तत्पश्चात् सबके लिए तिरस्कृति का बलि दे। तत्पश्चात् तलवार हाथ में लेकर अस्त्रान्त बलिमन्त्र॥ २१२॥

पठन् पिष्टलुलायं तु सम्पूज्य छेदयेत् सकृत्।
ततः पूजां सामयिकीं कृत्वा संवित्प्रपानके ॥ २१३॥

पढ़ते हुए पिसे हुए पीठे को दो अंगुलियों से पकड़कर एक बार में उसमें छेद कर दे। फिर सामयिकी पूजा कर संवित् का पान करे॥ २१३॥

पात्रे तु संविच्छेषं तु गृहीत्वा किञ्चिदेव तु।
सकृत् पिबेत् पुरोक्तेव पुनः प्रक्षाल्य तत्र तु ॥ २१४॥

एक पात्र में थोड़ा संवित् शेष लेकर पी लें। पहले बतलाये गये ढंग से एक बार में पीकर पात्र को धोकर रख दे वहाँ॥ २१४॥

हेतुशेषं समापूर्य सर्वपात्रस्य शेषकम्।
निक्षिप्य तत्र संस्थाप्य संवित्पात्रं समुद्धरेत् ॥ २१५॥

सभी पात्रों के शेष को इकट्ठा कर हेतुशेष से उसे भरकर उसे वहाँ रखकर संवित् पात्र का उद्धार करे॥ २१५॥

सामयीभ्यः समर्प्याथ शेषं भैरवसन्मुखे।
उत्सृजेद् भुवि तत्पात्रे तोयमापूर्य विन्यसेत् ॥ २१६॥

सामयी के लिए समर्पित कर शेष भैरव के सामने उसे धरती पर पानी भर कर उत्सर्ग करे॥ २१६॥

ततो हेतुप्रपाणं तु परितः पूर्ववत् स्थिताः।
सुवासिनीस्तु क्रमशः पाययेदेकवक्त्रतः ॥ २१७॥

इसके बाद पहले की तरह हेतुप्रपाण चारों ओर रक्खे हों। यह क्रमशः एक मुख से सुवासिनी को पान करायें॥ २१७॥

ततस्तस्मात् समुद्धृत्य सामयिभ्यः समर्पयेत्।
सर्वे सामयिकास्तत्र पिबेयुर्यौवनान्तकम् ॥ २१८॥

इसके बाद उससे उद्धार कर सामयिकों को वह समर्पित करे। सभी सामयिक यौवनान्त उसे छक कर पियें॥ २१८॥

ततो ब्रह्ममुखाः सर्वे पिबेयुः पूर्ववच्छिवे।
ततः पश्वङ्गशेषाणि भक्षयेयुर्महेश्वरि ॥ २१९॥

हे शिवे, इसके बाद सभी ब्रह्ममुखादि को पहले की तरह पिलायें। उसके बाद पशु के शेष अङ्गों का भक्षण करे॥ २१९॥

ब्रह्माङ्गं ब्रह्मणे दद्याच्छेषं सर्वं विमिश्र्य तु।

आचार्याद्याः सामयिका भक्षयेयुः पृथक् पृथक् ॥ २२०॥

पशु का ब्रह्माङ्ग अर्थात् शिरोभाग ब्रह्मा को दे, शेष में सब कुछ मिलाकर आचार्यादि सामयिक अलग अलग भक्षण करे॥ २२०॥

ततो देवीं विसृज्यैव क्रमादन्या विसर्जयेत् ।
शान्तिस्तवान्तं निर्वर्त्य ऋत्विजः पूजयेत् ततः ॥ २२१॥

इसके बाद देवी का विसर्जन कर क्रमशः अन्य पूजितों का विसर्जन करे। शान्तिस्तव समाप्त कर 'ऋत्विज्' की पूजा करे॥ २२१॥

यजमानो दक्षिणां तु प्रदद्यात् क्रमशः शिवे ।
पलं सुवर्णमाचार्ये ब्रह्मणे तत्समं भवेत् ॥ २२२॥

हे शिवे, इसके बाद यजमान एक पल सोना आचार्य को दक्षिणा के रूप में दे। तत्पश्चात् ब्रह्मा को भी उतनी ही दक्षिणा दे॥ २२२॥

होतुः स्तोतुस्तदर्धं स्यात् तदर्धं तु पुरःसरे ।
सुवासिनीर्ब्राह्मणांश्च दक्षिणाद्यैः सुपूजयेत् ॥ २२३॥

होता और स्तोता को उसका आधा अर्थात् आधा पल सोना दक्षिणा में दे। फिर, इसका आधा सोना सुवासिनी एवं ब्राह्मणादि को दक्षिणा के रूप में देकर उनकी पूजा करे॥ २२३॥

ततो ध्वजाधः पीठे तु यजमानं महेश्वरि ।
कुम्भोदकेनाभिषिच्य शेषं कर्म समाप्य च ॥ २२४॥

उसके बाद यजमान ध्वजा के नीचे पीठ पर कुम्भोदक अर्थात् कलश जल से सींच शेष क्रिया सम्पन्न करे॥ २२४॥

सम्पूज्य साधकाचार्यं दक्षिणाद्यैः सुतोषयेत् ।
वस्त्रपात्रादिसामग्रीमाचार्यायाखिलां ददेत् ॥ २२५॥

फिर, साधकाचार्य की पूजा सम्पन्न कर दक्षिणादि से उन्हें सन्तुष्ट करे। फिर, वस्त्र, पात्र प्रभृति सारी सामग्रियाँ आचार्य को संमर्पित करे॥ २२५॥

पूजां समाप्य देव्यै तु कर्म सर्वं समर्पयेत् ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं रहोयागविधानकम् ॥ २२६॥

देवी की पूजा समाप्त कर सारी क्रियाएँ उन्हें समर्पित कर दे। हे देवि, ये रहोयोग विधान सब मैंने तुम्हें बतला दिया॥ २२६॥

एतत्कर्त्तुर्यत्तु पुण्यं तत्संशृणु ब्रवीमि ते ।
अश्वमेधसहस्त्रं वा राजसूयशतं तथा ॥ २२७॥

रहोयाग का फल : यह यज्ञ जो करता है, इसका पुण्यफल क्या होता है, मैं तुम्हें

बतलाता हूँ। तुम सुनो। एक हजार अश्वमेध यज्ञ एवं एक सौ राजसूय यज्ञ करने का उसे फल मिलता है॥ २२७॥

वाजपेयायुतमपि नैतस्य सदृशं भवेत्।
महादानानि सर्वाणि महातीर्थ-व्रतानि च॥ २२८॥

दश हजार वाजपेय यज्ञ भी इसकी तुलना में नहीं टिक सकते। सारे महादान और सारे तीर्थाटन भी इसकी तुलना नहीं कर सकते॥ २२८॥

क्रतवोऽप्यखिलाश्चैतत्कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
मनुष्य-देव-गन्धर्व-सिद्ध-विद्याधरादिषु॥ २२९॥

समस्त यज्ञ भी इसकी सोलहवीं कला के बराबर नहीं हो सकते। मनुष्य, देवता, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधरादि में भी एतत्तुल्य कोई नहीं है॥ २२९॥

एकान्तपूजकसमो नान्यो भवति कश्चन।
स एव धन्यो जगति य एकान्तार्चको भवेत्॥ २३०॥

भगवती के एकान्तपूजक की तुलना में कोई कहीं नहीं है। वही पुरुष संसार में धन्य है जिसने भगवती की एकान्त साधना की है॥ २३०॥

ब्रह्मादीनां दर्शनीयः पूजनीयः स एव वै।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः॥ २३१॥

ब्रह्मादि के लिये दर्शनीय एवं पूजनीय वही हैं, कोई अन्य नहीं। सभी पापों से वे मुक्त हैं और सभी दुखों से विवर्जित हैं॥ २३१॥

सर्वसौख्यसमायुक्तो देहान्ते श्रीपुरं व्रजेत्।
वर्षाणामयुतं दिव्यं दिव्यदेहो निवस्य तु॥ २३२॥

सब सुख का उपभोग करते हुए देहत्याग के बाद श्रीपुर को प्राप्त करता है। दश हजार वर्ष तक दिव्यदेह प्राप्त कर वहाँ निवास करता है॥ २३२॥

भुक्त्वाभीष्टान् सुविपुलान् दुर्लभाँस्तत्र शङ्करि।
अन्ते श्रीकण्ठमुखतः प्राप्य ज्ञानं महत्तरम्॥ २३३॥

हे शङ्करि, वहाँ अत्यधिक एवं दुर्लभ अभीष्टों को प्राप्त करता है। अन्त में श्रीकण्ठ-के मुख से महत्तर ज्ञान प्राप्त कर॥ २३३॥

परं निर्वाणमाप्नोति सत्यं सत्यं महेश्वरि।
यः कोऽप्यत्र महायागे संविच्छेषं पिबेच्छिवे॥ २३४॥

हे महेश्वरि, वह परम निर्वाण प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं; हे शिवे, इस महायाग में जो संवित् शेष पीता है, उसे निर्वाण मिलता ही है॥ २३४॥

योषिद्वा पुरुषो वापि हेतुशेषमथापि वा।

अङ्गशेषं तथा वापि तस्यानन्तफलं भवेत् ॥ २३५ ॥

औरत हो या पुरुष जो हेतुशेष या अङ्गशेष ग्रहण करता है उसका उसे अनन्त फल मिलता है ॥ २३५ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः शतपूजा-फलं लभेत् ।
अश्वमेध-वाजपेयफलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २३६ ॥

हर तरह के पापों से मुक्ति मिलती है, सैकड़ों पूजा का फल मिलता है। अश्वमेध और वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है। इसमें संशय नहीं करना चाहिए ॥ २३६ ॥

यजमानस्य तुर्यांशमाचार्यः सुकृतं लभेत् ।
अन्येषामष्टमांशं तु फलं भवति निश्चयम् ॥ २३७ ॥

यजमान के द्वारा किये गये पुण्यकर्म का एक चौथाई फल आचार्य को यों ही मिल जाता है। अन्य व्यक्ति, जो इस अनुष्ठान में सम्मिलित होते हैं, उन्हें भी यजमान की इस सुकृति का अष्टमांश निश्चित रूप से मिलता है ॥ २३७ ॥

अन्ते मण्डलपूजां तु कुर्यात् तत्र महेश्वरि ।
अङ्गलोपादिदोषाणां शान्तये परमेश्वरि ॥ २३८ ॥

अन्त में हे महेश्वरि, वहाँ मण्डल पूजा करनी चाहिए। अङ्गलोपादि दोषशमन के लिए हे परमेश्वरि, यह पूजा आवश्यक है ॥ २३८ ॥

अग्निनाशे पात्रनाशे हविर्न्नाशेऽपि शङ्करि ।
अयुतं प्रजपेत् पश्चात् तद्विधिं च पुनश्चरेत् ॥ २३९ ॥

अग्निनाश, पात्रनाश तथा हविष्यनाश में भी हे शङ्करि, कम से कम दस हजार जप अवश्य करना चाहिए। तत्पश्चात् पुनः उस विधि का सम्पादन करे ॥ २३९ ॥

अन्यत्र युक्त्या प्रजपेत् सहस्रं शतमेव वा ।
न बुद्ध्या लोपयेत् किञ्चित् सर्वथा पर्वतात्मजे ॥ २४० ॥

अन्यत्र युक्तिपूर्वक शत या सहस्र वार जप करना चाहिए। हे पर्वतपुत्रि, अपनी बुद्धि से किसी कर्म का किसी भी स्थिति में लोप नहीं करना चाहिए ॥ २४० ॥

अन्यथा दण्डिनी देवी दण्डयत्यतिभीषणा ।
जिह्वाच्छेदं मन्त्रलोपे करच्छेदं क्रियाहतौ ॥ २४१ ॥

अन्यथा, दण्डिनी देवी भीषण दण्ड देती है। मन्त्रलोप में जीभ काट लेती है और क्रियालोप में करच्छेद कर देती है ॥ २४१ ॥

करोति दण्डनाथा सा तस्मात् कुर्यात् समाहितः ।
ऋत्विजा यस्य तु भवेत् स्खालित्यं तेन शङ्करि ॥ २४२ ॥

दण्डनाथा का यही दण्डविधान है, अतः इससे बचने के लिए कहीं भी स्खलन

नहीं करना चाहिए। अतः जो कुछ भी करे समाहित चित्त से करे। यज्ञ करानेवाले पुरोहित (ऋत्विक्) को इसमें सावधान रहना चाहिए॥ २४२॥

मण्डलार्चा सुकर्तव्या ततः पापाद् विशुद्ध्यति ।
इत्येतत् ते समाख्यातं किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥ २४३॥

पापों के शमनार्थ मण्डलपूजा ठीक ढंग से करनी चाहिए। ये सारी कथायें मैंने तुम्हें बतला दीं। आगे तुम क्या सुनना चाहती हो, बोलो॥ २४३॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे रहोयागकथनं नामैकोनविंशस्तरङ्गः ॥ १९॥

इस प्रकार त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में २४३ पद्यों में 'रहोयाग कथन' नामक उन्नीसवें तरङ्ग की व्याख्या समाप्त हुई॥ १९॥

●

अथ विंशस्तरङ्गः

(रहोयागे प्रयोज्याः आथर्वणमन्त्राः)

गिरिजोवाच

वृषध्वज महादेव प्रोक्तमेकान्तपूजनम् ।
अतिगोप्यं महापुण्यं त्रिपुरार्णवसंस्थितम् ॥ १ ॥

गिरिजा ने कहा—

हे महादेव, हे वृषभध्वज, त्रिपुरार्णव में वर्णित, अत्यन्त गोपनीय महापुण्यप्रद भगवती का एकान्त पूजन का वर्णन आपने किया॥ १॥

महाश्चर्यमयं सर्ववाञ्छितार्थ-प्रदायकम् ।
तत्रोपयुक्तमन्त्राँस्तु कथयस्व कृपामय ॥ २ ॥

अत्यन्त विलक्षणता से परिपूर्ण, सर्व प्रकार की अभिलषित वस्तु प्रदान करनेवाला, उन अवसरों के लिये उपयुक्त मन्त्र क्या है? हे कृपालु, कृपया हमें बतलायें॥ २॥

श्रीवृषध्वज उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहोयाग-समुद्भवान् ।
मन्त्रानाथर्वणानेकस्वर्यांस्तान् प्रपठेच्छिवे ॥ ३ ॥

श्री वृषध्वज (महादेव) ने कहा—

हे देवि, **रहोयाग में प्रयोज्य आथर्वण मन्त्र** एवं **उनकी कर्मविधि** मैं बतलाता हूँ, हे शिवे, आप सुनो॥ ३॥

ब्रह्मन् ध्वजं रोपयिष्ये इत्युत्थाय तु प्रार्थयेत्।
सर्वत्रैवं कर्मनामप्रार्थनं समुदीरयेत्॥ ४॥

यजमान उठकर ब्रह्मा से प्रार्थना करे, हे ब्रह्मन्! अब मैं ध्वजरोपण करूँगा। इसी तरह प्रत्येक कर्म करने से पूर्व ब्रह्मा से प्रार्थना करे॥ ४॥

ॐ रोपयेति प्रत्युक्तिः कृताञ्जलिपुटो वदेत्।
एवं सर्वत्र कर्मादौ प्रार्थनं प्रतिवागपि॥ ५॥

कृताञ्जलिबद्ध यजमान की प्रार्थना का उत्तर ब्रह्मा कहेंगे—'ॐ प्रतिरोपय' अर्थात् आप ध्वजारोपण करे। इसी तरह प्रतिकर्म में प्रार्थना और स्वीकृति होनी चाहिए॥ ५॥

मन्दमध्योच्चभेदैस्तु स्वैर्मन्त्रान् पठेत्तथा।
विलम्बमध्यद्रुतकैरुच्चारैरगनन्दिनि॥ ६॥

हे पर्वतपुत्रि, मन्द, मध्य और उच्च स्वर से मन्त्रों का पाठ करना चाहिए। तात्पर्य यह कि मन्त्रों का उच्चारण विलम्ब, मध्य और द्रुत स्वर से करना चाहिए॥ ६॥

होतरिन्द्रमावहेति स्तोतरिन्द्रं स्तुहीति च।
होतुः स्तोतुश्च गिरिजे विनियोगमुदाहरेत्॥ ७॥

होता इन्द्र का आवाहन करे और स्तोता इन्द्र की स्तुति करे। हे गिरिजे, होता एवं स्तोता के विनियोग को उदाहृत करे॥ ७॥

वानस्पत्य वनस्पते त्वं हि महान्महत्तर।
त्वं वेत्थ क्रतूनन्यान् क्रतुराजानममृतंवहम्॥ ८॥
त्वं वज्रभृद्देवराज्ञो मीढुष्टमस्य वृषस्य देवानाम्।
क्रतूनां क्रतुराज्ञां सदनं त्वां वाससाभि संवृणोमि॥ ९॥
त्वं यजमानस्यामु० भ्रातृव्यानपनयामु० यजमानमुन्नय।
यथा त्वमुज्जृम्भणोस्येवममु० त्रिपुरुषनाम अमुकस्य क्रतुवरमुन्निनीहि ॐ॥ १०॥
क्रमस्वरेण मन्त्रोऽयं पठितव्यो ध्वजावृतौ।
पुरःसरध्वजविधिं पुरः प्रतिविधेहि॥ ११॥

ध्वजारोपण में यह मन्त्र क्रम स्वर से पढ़ना चाहिए॥ ११॥

आगे ध्वजारोपण की विधि का वर्णन है॥

पुरःसरविसर्गे तु मन्त्रः प्रोक्तो हिमाद्रिजे।
आचार्योऽयं प्रतिविहितो ध्वजविधिः॥ १२॥

हे पार्वति! विसर्ग पुरःसर यह मन्त्र कहा गया है। ध्वजविधि आचार्य के द्वारा समादिष्ट है॥ १२॥

मध्यस्वरेण सर्वत्र मध्योच्चारेण वै पठेत्।
विसर्गश्चापि सन्देशः सर्वत्रैवं महेश्वरि ॥ १३॥

मन्त्रों को सब जगह मध्यम स्वर एवं मध्य उच्चारण के साथ पढ़ना चाहिए। विसर्ग और उसके आदेश को भी सब जगह ऐसे ही पढ़ें॥ १३॥

आयाहि दिवस्पते सहस्राक्ष शचीपते।
यजमानस्यामुं वीतिं जुषाण वृत्रहन्तम ॥ १४॥

हे दिवस्पते, ओ हजार आँखोंवाले शचीपति इन्द्र, हे वृत्रहन्ता, यजमान का यह भोजन स्वीकार करो॥ १४॥

वानस्पत्ये शतवल्शेनिषण्ण अमुं वीतिं वर्धय सुरयाप्यायितः।
यजमानस्य क्रतुं ये समीयुरसुरा अरातयः ॥ १५॥
तांस्त्वं वज्रेण वृषघ्नेन पराणुददेवरजोऽस्मभ्यं सभाजित्।
सर्वत्राह्वानमन्त्रं तु तारान्त्यं समुदीरयेत् ॥ १६॥

हर जगह उच्च स्वर में इस आह्वान मन्त्र का उच्चारण करे॥ १६॥

इन्द्र त्वं सोमपा असि देवानां समभिष्टुतः।
त्वां हि विद्वांसः सोमेनाभि यजन्ति संस्तुतं देवगणैरभीषुभिः ॥ १७॥
महत्तरेषु क्रतुषु त्वमीड्यो यजमानस्यामृतत्वं वितन्वसे।
त्वं हि पुरोदिति गर्भेशयानमिन्द्रशत्रुमभिजघ्निवान् वज्रेण ॥ १८॥
पुनस्तान्देवान्विदधास्यभिष्टुतो लोके स्वर्गे सततं समिन्धसे।
इन्द्रस्तुतिरियं देवि ध्वजयागविधौ स्मृता ॥ १९॥

ध्वजयागविधि में ऊपर लिखित श्लोकों से इन्द्रस्तुति कही गई है॥ १७-१९॥

आयाहि क्षेत्रपते चतुर्भुजेमं यज्ञं वह मण्डलस्थितः।
भूतान् प्रेतान् बिभ्रन् शाकिनीश्चेमं क्षेत्रं विदधीह्युशत्तमम् ॥ २०॥

अब क्षेत्रपाल के आवाहन मन्त्र—

हे क्षेत्रपते, ओ चतुर्भुज, मण्डल में उपस्थित होकर इस यज्ञ का भार तुम वहन करो। इस क्षेत्र में भ्रमणशील भूतों, प्रेतों और डाकिनियों, शाकिनियों को शमित कर इस क्षेत्र को सुव्यवस्थित करो॥ २०॥

अयं ते वीतिकृद्यजमानः संसहोत्रो बलिमुद्यच्छतीमम्।
सैरिभोयं समभिशिलष्टवर्ष्मा उद्यतस्ते वीतये तं समेहि ॥ २१॥

यह यजमान तुम्हें सुखोपभोग देनेवाला है, तुम्हारे लिए उचित यज्ञ करनेवाला है।

स्वर्गीय राज्य एवं सुन्दर शरीर तुम्हें देने के लिए उद्यत हैं। अतः तुम इन्हें समृद्ध बनाओ॥ २१॥

(इस तरह इस अध्याय में अनेक देवताओं के स्तुतिपरक विधिनिर्देशपूर्वक आथर्वण यज्ञीय मन्त्र संकलित है। मुख्यतः यह सम्पूर्ण तरङ्ग पूर्वोक्त अतिगोप्य व्याख्यानिरपेक्ष्य एकान्त पूजनादि में प्रयोज्य आथर्वण एवं तान्त्रिक प्रक्रियाओं का संमिश्रण है। इस तरह रहोयाग में प्रयोज्य व्याख्या अनपेक्ष्य आथर्वण मन्त्रों का संग्रह करते हुए, करणीय विधि का निर्देश किया गया है। अतः मन्त्रों की व्याख्या करने की अपेक्षा संकेत निर्देश को स्पष्ट करते हुए मंत्रों को उसी रूप में संकलित कर देना उचित समझता हूँ। इन मंत्रों के क्रम तथा विधियों की सूची अलग से संलग्न कर दूँगा।)

संकल्प्यास्ते संविदः सुप्रपाणाः परिस्तुताः पुरुधा घ्राणवेशाः ।
अभि तान् पाहि सुमनसा अपाभरेमं यज्ञं यजमानामृताय ॥ २२॥

हे देव, घ्राणवेश पुरोहित से परिस्तुत ये सुन्दर पेय स्वरूप संकल्पित संविद तुम्हारे सामने हैं, इनकी तुम रक्षा करो। यजमान के अमृतत्व के लिए तुम इस यज्ञ की रक्षा करो॥ २२॥

त्वं हि क्षेत्रपालो भूतपतिर्योगिनीराट् रोचसे वर्ष्मणा नीलभासा ।
शूलं दण्डं नृकरोटिं च बिभ्रन्नभीतिदो भजतां भूतिदानः ॥ २३॥

तुम तो क्षेत्रपाल हो, जीवित प्राणियों के स्वामी हो, योगिनियों के राजा हो, नीलाभ शरीर से शोभित हो, शूल, दण्ड और नर कपाल धारण किये अभयदान देने वाले हो, जो तुम्हें भजता है उसे सुख समृद्धि से भर देते हो॥ २३॥

इमं यज्ञमवसङ्गम्य स्वानां युक्तो विदधीह्यमृतं पारयास्मान् ।
एतत्त्वामृते ह्यवसादमीयान्नताः स्मो वयं नाथय नाथ चास्मान् ॥ २४॥

अपने परिजनों के साथ इस यज्ञ में आकर हमारे लिए अमृत का विधान करें। हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। हे नाथ, हमें आशीर्वचन दे॥ २४॥

अब तिरस्कृति का स्तुतिपरक मंत्र है—

आयातु वीरसूर्वाजिनी वाजयित्री तिरस्कृतिः ।
त्वं सर्वतः सं तमसं लोकमोषं वितन्वती ॥ २५॥

ओ तिरस्कृति, ओ वाजयित्री, तुम वीरप्रसू वाजिनी हो, तुम इस यज्ञ में आओ, अन्धकाराच्छन्न इस लोक को इससे तुम मुक्ति दिलाओ॥ २५॥

इमं मखं मखकृतं समेहि मृत्योर्भ्रातृव्यान्मोचनाय ।
मोहिन्याद्याभिः संवृता मोहनाय तान्यान्वयं द्विष्मो येऽपि चास्मान् ॥ २६॥

इस यज्ञ एवं यज्ञ करनेवाले के कल्याणार्थ तथा मृत्य के भ्रातृव्यों (शत्रुओं) को

मुक्त करने के लिए तथा हमसे जो द्वेष करते हों उन्हें सम्मोहित करने के लिए मोहिनी तथा आद्या प्रभृति के साथ तुम आओ॥ २६॥

त्वं देवि भैरवि भीषणाभे सप्तिप्रोढे वेगगम्ये सुवेगे ।
कालाकल्पावासवर्ष्मप्रकाशे बिभ्रती कृपाणिं चपलाभं सुकल्पम् ॥ २७॥

हे देवि, तुम भैरवी हो, तुम्हारी कान्ति अतिभीषण है, तुम सागर के रूप में अत्यन्त वेगवती हो, तुम दुर्गा हो, कल्पावास हो, तुम्हारी देह से कान्ति फूटती है, सुन्दर विजली की तरह चमकती तलवार धारण किये हो॥ २७॥

सौदामिनीव भजमानं द्विषां वै चक्षूंषि त्वमचिरं संवृणोषि ।
नेमं वीतिं रक्षयित्री त्वदन्या तां न प्रज्ञासिषुः सूरयोप्यादिमायाम् ॥ २८॥

तुम अपने भक्तों के विरोधियों की आँखों पर बिजली की तरह कौंधकर शीघ्र कब्जा कर लेती हो। इस सम्पदा की रक्षिका तुम्हारे सिवा और कोई दूसरी नहीं है। तुम आदिमाया हो, तुम्हें जानने में ऋषि मुनि भी समर्थ नहीं हैं॥ २८॥

भीमोग्र स्तुति के मंत्र—

आयाहि भीमोग्र महाट्टहास सह प्रोग्रैर्बलिभुग्भूतसंघैः ।
आयाह्यमुं यजमानस्य सुक्रतुं सुकृतं चास्य पारयितुं समीहितम् ॥ २९॥

अपने विशिष्ट बलि खानेवाले भूतसंघों के साथ अट्टहास करते हुए हे उग्र भीम! तुम आओ। इस यजमान के अभिलषित पुण्यफल की तरह इस यज्ञ को पार लगाने के लिए तुम आओ॥ २९॥

मन्त्राहूतोऽस्मभ्यं समीहितं सुवर्द्धुर्यथा साधयितुं स्म भैरव ।
वत्सानिव सौरभेय्यो चिराय प्रैहि प्रीत्यान् भजमानाबिभर्त्तुम् ॥ ३०॥

हे भैरव, हमने अभिलषित पदार्थ की सम्पूर्ति हेतु मन्त्रों के द्वारा आपका आवाहन किया है। अपने भक्तों के संभरण हेतु चिरवियुक्त बछड़े वाली गौ की तरह प्रीतिपूर्वक दौड़कर हमारे पास आओ॥ ३०॥

त्वं कालवर्ष्मा धृतदण्डोरुणाक्षो ज्वालावक्त्रो लेलिहन् दिक्तटानि ।
अनुयातैर्बलिभुग्भिः समेतो घनस्वनैर्भीषणैर्भीषयन् गाम् ॥ ३१॥

तुम कालवर्ष्मा हो। तुम्हारी आँखें लाल लाल हैं। हाथ में तुम दण्ड धारण किए हो। अनुसरण करते वलिभोक्ताओं के साथ अपने भीषण गर्जन से आकाश मण्डल को भयाक्रान्त करनेवाले हो॥ ३१॥

सटाभिः पिङ्गाभिर्व्यापयस्यन्तरालं द्यावापृथिव्योर्नृत्यमानः सूनृतम् ।
रुद्रैरादित्यैः समरुद्भिरश्विभ्यां देवासो विश्वे सततं समीडिरे ॥ ३२॥

केसरिया जटा से अन्तराल को तुम भर देते हो, धरती से आकाश तक तुम सुखद

नृत्य करते हुए रुद्र, आदित्य, मरुत, अश्विनीकुमार तथा विश्वेदेव से तुम सतत पूजित हो॥ ३२॥

तिरस्कृतेर्भैरवस्य परिवारसमर्चने ।
प्रोक्तस्तोत्रद्वयेनैव त्रिःस्तुवीत क्रमेण वै ।
स्वरोच्चारविभेदेन प्रत्येकं गिरिनन्दिनि ॥ ३३॥

तिरस्कृति और भैरव के सपरिवार पूजन में ऊपर कहे गये दोनों स्तोत्रों से ही क्रमशः तीन बार स्तवन करना चाहिए। हे पर्वतपुत्रि, स्वरोच्चार के भेद से क्रमशः स्तुति करे॥ ३३॥

सपत्नीक सिद्धनाथ का आवाहन—

आयान्तु ते सिद्धनाथाः सयोषा यासां गणाः कोटिशो भीषणा गाम् ।
चंक्रम्यमाणा अपि सर्वाः समेता समागच्छन्तु मण्डले सुप्रधानाः ॥ ३४॥

गरजते हुए अपने करोड़ों गण एवं पत्नियों के साथ ये सिद्धनाथ यहाँ आयें, घूमते हुए सबके साथ प्रधान मंडल में पधारें॥ ३४॥

अवन्तु ते सिद्धनाथाः सयोषास्त्विमं क्रतुं यजमानं मण्डलञ्च ।
याभिर्निचिताः सर्वलोका अलोका लोकालोकाः सगमाश्चागमाश्च ॥ ३५॥

वे सिद्धिनाथ अपनी पत्नियों के साथ इस यज्ञ, यजमान एवं मण्डल की रक्षा करे, जिनसे सर्वलोक, अलोक, लोकालोक, सगम, आगम सबके सब आच्छादित हैं॥ ३५॥

विश्वमूर्ति का आवाहन एवं स्तुति—

आयाहि विश्वमूर्ते त्वं विश्वस्य विभावनः ।
द्यावा-पृथिव्यावपि सरितः सागरा गिरयस्तैः समेतः ॥ ३६॥

हे विश्वमूर्त्ते, आप विश्व की अनुभूति हो, धरती, आकाश, नदियाँ, सागर और ये पहाड़ सब तो आपमें ही समाहित हैं॥ ३६॥

इमं वीतिं सुनिगूढं च कर्त्तुं समाहूतो देवः समेहि ।
वर्षिष्ठेषु श्रेष्ठतमेह यज्ञं प्राक्रम्यारं यजमानस्य भूतये ॥ ३७॥

हे देव, इस सुखोपभोग के संरक्षणार्थ हमने आपको बुलाया है। इस यजमान की समृद्धि के लिए इस विशाल एवं श्रेष्ठतम यज्ञ की रक्षा करो॥ ३७॥

त्वं विश्वमूर्ते भव सुक्रतो नो विश्वान्यङ्गानि पुरुधा ते विभान्ति ।
द्यौस्ते मूर्धा दिशः श्रुतिर्ज्योतींष्यक्षिणी वदनं ह्याशुशुक्षणिः ॥ ३८॥

हे देव, हमारे इस यज्ञ के लिए तुम विश्वमूर्ति बन जाओ, दे देव, ये सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग में सुशोभित हैं। ये आकाश तुम्हारे मस्तक हैं, दिशाएँ कान हैं, ये प्रकाशपुंज तुम्हारी आँखें हैं। ज्योति तुम्हारे मुख हैं॥ ३८॥

उदरं नभो वारिधयश्च कुक्षी विदिशो बाहा अंघ्रयो वै तलानि ॥ ३९ ॥

तुम्हारे पेट आकाश हैं, सागर कोख हैं, विदिशा बाहें हैं और पाताल तुम्हारे चरण हैं ॥ ३९ ॥

अस्थीनि शैला ओषधयो वनस्पतयो लोमानि नाड्यः सरितो वेगवाहाः ।
सर्वं वपुरधिदेवासश्च सर्वे त्वयीष्टे सर्वमिष्टं सुमर्त्यैः ॥ ४० ॥

ये पर्वत उस विश्वमूर्ति की हड्डियाँ हैं। वनस्पतियाँ औषधि हैं। नाड़ियाँ सरिता वेगवाहा रोम हैं। सब कुछ इस विश्वमूर्ति दवता के शरीर में ही हैं। सब तुममें हैं और तुम सबमें हो ॥ ४० ॥

इमं क्रतुं परि सर्वैः सुपर्वभिर्भरस्व सर्वानधियज्ञं कृणुष्व ।
आयाहीमं वीतिमीश प्रेष्ठेमनोन्मनि त्वां यजमानः प्रकामम् ॥ ४१ ॥

सब देवगण यहाँ तक पधारकर, इस श्रेष्ठ या उत्कृष्ट यज्ञ का संरक्षण करे। हे ईश, तुम्हें वहाँ पाने के लिए यजमान आतुर हैं। अतः उनपर कृपाकर इस श्रेष्ठ यज्ञ में तुम पधारो ॥ ४१ ॥

विश्वशक्तिं विश्वजन्यामभिराद्धुं समुद्यतः सह होत्रैः समीहः ।
मनोन्मनीं त्वां विश्वमूर्तेर्भवित्रीं विश्वप्राणां विद्युदादित्यवर्णाम् ॥ ४२ ॥

हे विश्वशक्ते, दर्शनार्थ मन को आतुर बनानेवाली, विश्वमूर्ति स्वरूपे, विश्व के प्राणस्वरूपे, बिजली की तरह प्रलयकालीन आदित्य की आभावाली, सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करनेवाली विश्वमूर्ति तुम्हारी आराधना के लिए हम हवनीय द्रव्यों के साथ तैयार हैं ॥ ४२ ॥

विश्वप्रह्वां विष्णुमायां विराजीमभिकुर्मो वयममृताय लोके ।
हिरण्यवर्णामित्यादि पह्वये श्रियमन्तकम् ॥ ४३ ॥

संसार को आनन्द देनेवाली, विष्णु की माया, उनके सौन्दर्य को आत्मसात करते हुए लोक में अमृत के लिए 'हिरण्यवर्णाम्' से 'श्रियम् तक' इन चार ऋचाओं का पाठ करे ॥ ४३ ॥

ऋचां चतुष्टयं मूलदेव्याह्वाने समीरयेत् ।
चन्द्रां प्रभासामित्यादि ऋचां चैव चतुष्टये ॥ ४४ ॥
मे गृहादिति पर्यन्तं स्तोता स्तोत्रमुदीरयेत् ।
इमं त्वा देवराजायेन्द्राय भूतराजाय क्षेत्रपाय ॥ ४५ ॥

ये चार ऋचायें मूलदेवी के आवाहन में पढ़ें। फिर, 'चन्द्रा प्रभासाम्' से लेकर 'मे गृहात्' तक चार ऋचाएँ स्तोता स्तोत्र के रूप में पाठ करे। ये देवराज इन्द्र के लिए तथा भूतराज क्षेत्रपाल के लिए हैं ॥ ४४-४५ ॥

तमो राज्यै तिरस्कृत्यै बलिभुग्राजाय भैरवायासदे ।
मन्त्राः पात्रासादनेमी चत्वारः क्रमतोऽम्बिके ॥ ४६ ॥

तम की रानी तिरस्कृति के लिये, बलिभुग् राजा भैरव के लिए सम्पर्क, मन्त्र और पात्रासादन (पात्रों का सामीप्यीकरण) हे अम्बिके, ये क्रमिक चार॥ ४६ ॥

संविद् का आवाहन एवं स्तुति—

आयाहि संविदं धारयित्रि क्रतुमेतं पारय त्वं हविर्भिः ।
अस्मभ्यमभिदुर्मतिं हतं कृणुष्व शं विधात्री ॥ ४७ ॥

हे संविद धारण करनेवाली, तुम हवनीय द्रव्य प्राप्त कर इस यज्ञ को पार लगाओ। यहाँ आओ। हे कल्याण का विधान करनेवाली जगदम्बे, हमारी दुर्मति को तुम विनष्ट करो॥ ४७ ॥

त्वं शेमुषीणामधिपत्नी, त्वं वै नीहारस्य प्रहर्त्री सङ्गतानाम् ।
त्वं याज्यानां प्रसवित्री सुपोष्ट्री सुनेत्री कामानामसि बोधयित्री ॥ ४८ ॥

तुम बुद्धिमानों की स्वामिनी हो, साथ ही साथ चलनेवाली अज्ञानरूपी कुहरे या पाले को तुम विनष्ट करनेवाली हो, तुम अच्छे याज्ञिकों को उत्पन्न करनेवाली हो, उनका संपोषण करनेवाली हो, तुम्हीं मनुष्यों की कामनाओं को जगाकर उनका सुन्दर नेतृत्व करनेवाली हो॥ ४८ ॥

देवि नो देहि क्रतवे पारणायेमां संविदमभिषूत्यै सुनीताम् ।
वरं यत्ते प्रेक्षितं प्राप्नुहीममाचार्योऽहं त्वां प्रपन्नोऽभि याचे ॥ ४९ ॥

इस यज्ञ की संविद् सम्पन्नता के लिए, सुन्दर रीति से सम्पन्न इस संविद को स्वीकार कर जो तुम्हें देख रहे हैं, उन्हें वरदान से, इस यज्ञ के आचार्य और मैं तुम्हारा शरणागत हूँ॥ ४९ ॥

आचार्या त्वं क्रतुषु यद्वेत्थाद्यं मौल्य-मूलं गरिष्ठम् ।
तेनाहं संविदमिमां विक्रीणे क्रतुपारिणीम् ॥ ५० ॥

हे आचार्य, यज्ञों में संविद की श्रेष्ठतम कीमत के बारे में जो कुछ आप जानते हैं, वह मुझे बतलायें। यज्ञ को पार लगानेवाले उस संविद को मैं बेचता हूँ॥ ५० ॥

ब्रह्मा का आवाहन एवं स्तुति—

ब्रह्मन्नेहि संविदमभियाचस्व चेति वै ।
तत्तन्नाम्ना समाह्वानं सर्वेषां क्रमतः शिवे ॥ ५१ ॥

हे ब्रह्मन्, आप आयें, संविद की याचना करे, हे शिवे, इस तरह क्रमशः अलग अलग नामों से सब देवताओं का आह्वान करे॥ ५१ ॥

ब्रह्मादयः स्व-स्वनाम्ना याचेयुर्मन्त्रयोगतः ।

तत्तन्नामसमायोगात् प्रत्युक्ता अपि ते तया ॥५२॥

ब्रह्मा आदि देवगण मन्त्रोच्चार के साथ आकर पृथक् पृथक् क्रमशः संविद की याचना करे। उनके नाम से अलग अलग आह्वान करे॥५२॥

पुत्रा दारा अपि गेहं धनानि पशवोऽश्वा यच्च किञ्चित्स्वमस्ति ।
सर्वैरेतैर्मौल्यमूलैः क्रतूनां विक्रीणीहीमां संविदं याचतो मे ॥५३॥

पुत्र, पत्नी, घर, पशु, घोड़े और धन इनमें जो कुछ मेरे अपने हैं इन्हें उचित मूल्य पर बेचो फ़िर संविद की याचना मुझसे करो॥५३॥

न मे पुत्रैर्धनगेहादिभिर्वा यन्मुख्यं स्वं क्रतुषूपयुक्तम् ।
तदेकं दातुं प्रतिजानीहि तेन विक्रीणेऽहं संविदं ते समिष्टाम् ॥५४॥

पुत्र, पत्नी, घर प्रभृति इस यज्ञ के उपयुक्त कुछ भी मुख्य नहीं हैं। मैं तो केवल एक ही देने के लिए प्रतिबद्ध हूँ। अतः तुम्हारे अभीष्ट संविद को ही मैं बेचता हूँ॥५४॥

प्रब्रूहि तन्मे प्रतिजाने ददानि प्रत्तं तद्विद्धि न ह्यदेयं तवास्ति ।
असुभ्योऽपि यद्गरीयस्त्वमृच्छ नाहं प्रव्रजे सन्तमसं दुरन्तम् ॥५५॥

मुझे बतलाओ, मेरी प्रतिज्ञात वस्तु, मेरी प्रदत्त वस्तु मुझे दो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। प्राणों से भी जो अधिक प्रिय हैं, वह भी अदेय नहीं। मैं विश्वव्यापी अन्धकार के गर्त में जाना नहीं चाहता॥५५॥

क्रतुष्वेको यजमानो गरीयान् येन स्विदृतेन क्रतवो भवन्ति ।
तं त्वां गृहीतमभिजानीहि सुक्रतो क्रमेणैनामीप्सतां ते स होता ॥५६॥

यज्ञों में केवल एक यजमान ही क्या महत्त्वपूर्ण होते हैं, जिनसे ये यज्ञ सम्पन्न होते हैं? उन्हें तो तुम गृहीत ही जानो, सुन्दर यज्ञ सम्पादन के लिए तो क्रमशः अभीप्सित ये होता ही है॥५६॥

नेदं द्वारमभिनिर्गन्तुमर्हं मया ब्रह्मणा समभिक्रान्तवर्त्म ।
निवर्त्तस्वान्यद्वारेण नाहं स्वं मार्गं दद्मि नहि तेऽत्राभिसंक्रमः ॥५७॥

यह द्वार निष्क्रमण के योग्य नहीं है क्योंकि, ब्रह्मा से यह मार्ग अधिगृहीत हैं। दूसरे दरवाजे से निकल जाओ, मैं अपनी राह तुम्हें नहीं देने जा रहा हूँ। तुम्हारा यहाँ अभिसंक्रमण नहीं है॥५७॥

होता पुरःसरः स्तोता त्विममेव समीरयेत् ।
स्व-स्वनामसमायुक्तं द्रुतमुच्चस्वरेण च ॥५८॥

होता को आगे कर स्तुति करनेवाले तो यही कहें। शीघ्र ही ऊँची आवाज में अपने अपने नाम के साथ बोलें॥५८॥

त्वं संविदं धारयन्ती सुधात्री क्रतुष्वेवं हविषः प्रापयित्री ।

देवीं त्वां हविषो धारयित्रीमृते यज्ञा ह्यवसन्ना भवेयुः ॥ ५९ ॥

तुम संविद धारण किये हो, तुम सुन्दर धात्री हो, यज्ञों में इस तरह हविष्य प्राप्त करनेवाली हो, हे देवि, तुम हविष धारण करती हो, यज्ञपूजित हो, उदास न हो ॥ ५९ ॥

इन्द्रस्त्वामभिराध्य वृत्रहन्तमो अभिराध्यो वितायिभिः ।
स्तोमन्ते शतधृतिर्विश्वमूर्तिरचीक्लृपत् ॥ ६० ॥

तुम्हारी पूजा कर इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया है। वितायियों से तुम आराधित हो, तुम आराध्य हो, तुम असंख्यों को धारण करती हो, तुम विश्वमूर्ति हो ॥ ६० ॥

अमृतास्त्वामनुजग्मुः सुवीतिषु समीडिता हैमवती सुजानिना ।
छन्दांसि मन्त्रास्त्वयि संसृज्यमानाः समीयिवांसो महिमानं महान्तम् ॥ ६१ ॥

सुन्दर यज्ञों में तुम सुपूजित हो, देवगण तुम्हारा सदैव अनुसरण करते हैं। लोकविदित तुम हैमवती हो, छन्दों और मन्त्रों की संसृष्टि तुमने की है, तुम्हारी महान् महिमा को कौन नहीं जानता ? ॥ ६१ ॥

वयं स्मस्ते ह्यनुचरास्तारयास्मान् सुवर्चसे ।
यजमानं निष्क्रीणीमहे छन्दितेन तव निष्क्रयेण ॥ ६२ ॥

हम तुम्हारे अनुचर हैं, हमें तुम अपने तेज से उद्धार करो। अपनी इच्छा के अनुकूल तुमने यजमान को विस्तार किया है ॥ ६२ ॥

ओमित्युदाहृत्य पश्चात्सा ब्रूयान्मन्दमध्यतः ।
आचार्यो मे कल्पय सुराग्रहं समभिष्टुतम् ॥ ६३ ॥

पहले 'ॐ' का उच्चारण कर, फिर मन्द मध्य स्वर से वह बोले—आचार्य मेरे लिए अभिस्तुत सुराग्रह बोलें ॥ ६३ ॥

देवि संविद्धारयित्रि नः सुराग्रहमभिकल्पयामो वयम् ।
समाहूतमभिष्टुतं विश्वमेध्यं पाहीमं सुक्रतुं यजमानोऽभिराधति ॥ ६४ ॥

'संविद' धारण करनेवाली हे देवि, तुम्हारे लिये संकल्पित एवं अभिष्टुत 'सुराग्रह' मैं सामने उपस्थित करता हूँ। समाहूत एवं अभिस्तुत विश्व कल्याण के लिए इस यज्ञी सामग्री के साथ इस यज्ञ की तथा आराधनारत इस यजमान की तुम रक्षा कर ॥ ६४ ॥

देव्यत्र प्रस्तरे निषीदास्मान् क्रतुं सुसमृद्धान् विधेहि ।
एतेन त्वां सदशेन छदामहे यजमानस्य विवृतिं त्वं समाछद ॥ ६५ ॥

हे देवि, तुम इस पत्थर पर बैठो, हमारे यज्ञ को समृद्ध बनाओ, इस सुन्दर वस्त्र से मैं तुम्हें ढँकता हूँ, तुम मेरे यजमान के दोषों को दूर करो ॥ ६५ ॥

इमं त्वां देवताभ्यः खिलाभ्यः श्रीदेव्यै मूलरूपायै ।
रश्मिरूपाभ्यो लक्ष्मीभ्यः कोशाभ्यः कल्पलताभ्यः कामदुघाभ्यो रत्नाभ्यः ॥ ६६ ॥

ये यज्ञ तुम देवताओं के लिये, खिलाओं के लिए, श्रीदेवी के लिए, मूलरूपाओं के लिए, रश्मिरूपाओं के लिए, लक्ष्मी के लिए, कोशाओं के लिए, कल्पलताओं के लिए, कामदुघाओं के लिए, रत्नों के लिए॥ ६६॥

देव्यै मन्त्रिण्यै दण्डिन्यै तिथिदेवताभ्यो नित्याभ्यः ।
नाथेभ्य ओघगुरुभ्यो रश्मिभूताभ्य आवृतिभ्यः ॥ ६७॥

देवी मंत्रिणी के लिए, दण्डिनी के लिए, तिथि देवताओं के लिए, नित्याओं के लिए, नाथों के लिए, औघ गुरुओं के लिए, रश्मि भूताओं के लिए, आवृत्तियों के लिए॥ ६७॥

देवेभ्यो बलिदेवेभ्यो बालायै कुमार्यै नाथाय वटुकायासदे ।
संवित्स्थाने सुरेत्युक्त्वा सुराह्वानं समीरयेत् ॥ ६८॥

देवताओं के लिए, बलिदेव के लिए, बाला के लिए, कुमारी के लिए, नाथ के लिए, बटुक के लिए, 'संवित्' की जगह सुरा कहकर सुरा का आह्वान करे॥ ६८॥

अभियाचनमन्त्रेऽपि तथा संयोजयेच्छिवे ।
तथा स्तोत्रा स्तुता चापि यजमाने सुरापदम् ॥ ६९॥

अभियाचन मन्त्र में भी हे शिवे, वैसे ही संयोजन करे। स्तुति करने वाले की स्तुति पूर्ण होने पर यजमान के लिए भी 'सुरा' पद का प्रयोग करना चाहिए॥ ६९॥

सुराग्रहे चाग्रपूजां विनिवेश्य च शङ्करि ।
इमां त्वामाद्य-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थसंस्काराय ॥ ७०॥

हे शङ्करि, सुराग्रह में अग्रपूजा का निवेश कर, यह पूजा तुम्हें प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ संस्कार के लिए॥ ७०॥

भूः परिस्तृणामि भुवः स्वर्भूर्भुवः स्वः परिस्तृणामीति प्रत्येकम् ।
एता आद्याय सदाशिवाग्नये समिधो निक्षिपामि ॥ ७१॥

भूः का परिस्तरण करता हूँ, भुवः का परिस्तरण (विखेरना) करता हूँ, स्वः का परिस्तरण करता हूँ, भूर्भुवः स्वः का परिस्तरण करता हूँ। प्रथम संस्कार के लिए सदाशिव और अग्नि के लिए इन सब समिधा का निक्षेप करता हूँ॥ ७१॥

एता द्वितीयाय तृतीयाय चतुर्थायेश्वररुद्रविष्ण्वग्नये इति ।
त्वं सुरे निर्जरोभिर्निधीनां सम्राज्ञी अभिनिर्मिता ॥ ७२॥

ये सब द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ के लिए, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और अग्नि के लिए, तुम देवताओं के बीच देवताओं की निधियों की निर्मात्री एवं साम्राज्ञी हो॥ ७२॥

त्वां पूरयामि क्रतवेऽस्य पूरय स्वकामान्याननु देवासः ।
अमृतस्येव मन्दरस्त्वं मयासि धृतस्त्विह ॥ ७३॥

मैं तुम्हें आपूरित करता हूँ, इस यज्ञ में देवताओं को अपनी कामनाओं के साथ संतुष्ट करो, अमृत की तरह तुम मन्दराचल हो जिसे मैने यहाँ तुम्हें पकड़ रखा है॥ ७३॥

पयसीव सारं मन्थानाभिनिर्गम यशं वह ।
सुरा सदित्वं विनिविश्यमानोऽस्मान् पुषाण हविषः पारणेन ॥ ७४॥

दूध के सार तत्त्व को मथानी से मथकर जो निकाला गया हो, इसी मक्खन की तरह तुम हो, यश का वहन करो। तुम हे देवि, सुरा में विनिवेश करते हुए हवनीय द्रव्य के पारण से हमारी रक्षा करो॥ ७४॥

सन्तर्प्य देवीः सुगुणैर्हविर्भिरियाम तत्स्वाराज्यं समीड्यम् ।
स्तोत्रे सुवर्चसेऽन्ते तु निर्मथ्नतस्त्विमौ गुणनिर्मोचनाय ॥ ७५॥

देवी को संतुष्ट कर, आभासम्पन्न हविर्द्रव्यों को वहाँ ले आये, फिर, सुन्दर स्तोत्रों से स्वर्गाधिपति इन्द्र की स्तुति करे। तत्पश्चात् गुणनिर्मोचन के लिए उनका मन्थन करे॥ ७५॥

हेतुस्त्वं शर्मणः खलु देवासस्त्वामभीवृताः ।
ऋतं यद् ब्रह्म भुवनस्य प्रेष्ठं तद्धेतुस्त्वमभिष्टुता ॥ ७६॥

देवताओं के तुम अभीप्सित हो, उनके आनन्द का तुम मूलकारण हो, ब्रह्म जो सत्य है संसार का परम प्रिय है, उसकी तुम हेतु हो, अतः तुम्हारी अभिस्तुति की जाती है॥ ७६॥

वीर्ये मुनीनां तपसाभि सम्भूते हेतुर्विप्राणामपि सत्यवाचि ।
लोकचक्षुर्महत्तमस्त्वयि प्रेष्ठश्च धारकः ॥ ७७॥

मुनियों की तपस्या से पराक्रम में, पूर्णता में हेतु, इसी तरह विप्रों के सत्यवचन में, लोकचक्षु की महत्ता इसी तरह तुममें, धारक के लिए परमप्रिय हैं॥ ७७॥

तवान्तराये पितरो मनुष्या देवासश्चाभवन् शर्मगर्धाः ।
हेतुस्त्वं तेषां वृषभो जनायेमं सध्रीचीनमभिसं विधेहि ॥ ७८॥

तुम्हारे अवरोध में मनुष्य के पितर हैं, देवगण आनन्द के इच्छुक हैं, उनकी हेतु तुम हो, तुम जनसामान्य के लिये वृषभ हो, साथ रहनेवाले का सम्यक् विधान करो॥ ७८॥

अपिधानेनामुना संवरस्व स्तोमं गुणानां नातियादितोन्ये ।
अनेनैव सुक्रतोररातीनभिरोधामि यजमानस्य श्रेयसे ॥ ७९॥

इस आवरण से ढँककर यज्ञ का संवरण करो, गुणों को पार करनेवाला इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं है। यजमान के कल्याणार्थ इसी से इस यज्ञ के विघातकों को मैं अवरोध करता हूँ॥ ७९॥

वरुण का आवाहन एवं स्तुति—

आयाहि वरुण क्रतुपारणायाप्यायय हवींषि वर्धमानः ।

स्त्रोतोभिः समुद्रैरपि चोदपानैः समेतोत्र वीतिं निभृतं पुनीहि ॥ ८० ॥

हवि को बढ़ानेवाले, इस यज्ञ को पार लगानेवाले वरुणदेव आओ। नदियों और समुद्रों के जल के साथ इस यज्ञरूपी समृद्धि को बिल्कुल पवित्र करो ॥ ८० ॥

[यहाँ से मन्त्रों का मूल पाठ होने के कारण श्लोकों में क्रमसङ्ख्या का व्यवस्थापन नहीं है।]

इमं मे व० प्रियासः ॥ ४ ॥

ये वरुण मेरे प्रिय हैं ॥ ४ ॥

इमं त्वां सुक्रतवेऽभिवर्धनाय सदे पवित्रं पावनाय पवित्रपते ।
संवर्धस्व सन्निवर्तस्वाहीनं सुक्रतुं कुरु ।

हे पवित्रपते, इस यज्ञ में तुम्हारे अभिवर्द्धन के लिए, आसन पर रक्खे पवित्र के शुद्धिकरण के लिए तुम संवर्धन एवं सन्निवर्तन करो। इस यज्ञ को पूर्णता प्रदान करो।

संवर्त्ता इव सागरं पात्रेऽभि पूरयामि ।
इमं त्वाभिवर्धनाय भूः परिस्तृ० ।

प्रलयकालीन सागरको इस पात्र में भरता हूँ। यह तुम्हारे अभिवर्धन के लिए है। बूः अर्थात् पृथ्वी का परिस्तरण करता हूँ।

सूरिद्वरेण्य गङ्गा का आवाहन एवं स्तुति—

आयाहि गङ्गे सरितां वरिष्ठे क्रतोरस्य पावयितुं हवींषि ।
यथासुषेरुपरिष्टाद्धि भिन्नादरं पुरा पावयितुं हि लोकान् ।

नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा का आवाहन करता हूँ। इस यज्ञ में प्रयुक्त हविष्य को पवित्रकरने के लिए तथा मर्त्यलोक को पवित्र करने के लिए पुराने समय में रन्ध्र रन्ध्र के उपर से प्रवाहित होकर आओ ॥

त्वं देवि गङ्गे महति खे निषण्णा पुरमाजगतीः पातुमारात्प्रवृत्ता ।
सहस्त्रमूर्ध्नोऽङ्गुष्ठभेदात् पुनाना शतधृतिं मीढुषं विश्वमूर्तिम् ।

हे देवि, गङ्गे तुम विशाल आकाशरूपी गढ़ में निवास कर सम्पूर्ण संसार को पवित्र कर उनकी रक्षा करने में सन्नद्ध हो, अंगुष्ठ भेद से सहस्त्रशीर्ष भगवान् विष्णु एवं इन्द्र तथा शिव को पवित्र करनेवाली हो ॥

द्यावा भूमिं संवृता ते पृषत्कैस्तमोहन्त्री लघुसंस्पर्शनेऽपि ।
तीर्थानामधिपत्नी साम्राज्ञी सरितां पतेः ।

धरती से आकाश तक तुम व्याप्त हो, एक छोटे स्पर्श से भी तुम सर्वत्र व्याप्त अज्ञानरूपी अन्धकार को मिटा देती हो, तीर्थों की तुम स्वामिनी हो सागर की सम्राज्ञी हो ॥

त्र्यम्बकं हरिमात्मभुवं पुनासि स्पृष्टैकान्ते लोकयात्रा वरिष्ठम् ।
परमे व्योम्नि पतितानात्मनोऽङ्गेन यश्चरन्तः परिपाहि सुक्रतुम् ।

लोकयात्रा वरिष्ठ एकान्त स्पर्श से तुम एक साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश को पवित्र बनाती हो॥ परमाकाश में लोटपोट कर अपने अङ्गों के स्पर्श से उसे तुम पवित्र कर देती हो। आकाश में घूमती हुई आप इस यज्ञ की रक्षा करे॥

अग्नि का आवाहन एवं स्तुति—

अग्निगर्भमरणिं पूर्वमभि मृजामि तथोत्तरम् ।
अग्नि० पाये कुशान्संस्तरामि तथा कृष्णाजिनम् ।

अग्निगर्भ अरणि को पहले मैं मार्जित करता हूँ और बाद में भी फिर कुशों और काले मृगचर्म का संस्तरण करता हूँ अर्थात् उन्हें फैलाता हूँ।

त्वां क्षेत्रमसि वीतीनां त्वामभिसंसदामि ।
हिरण्मयः प्रस्तरराडिवाभि विशस्व योनौ ।

सुखोपभोग के तुम क्षेत्र हो, अतः तुम्हारी अभिसंज्ञा करता हूँ। तुम श्रेष्ठ पत्थर में सन्निहित सोने की तरह योनि में निवास करो॥

यज्ञानां सुक्रतूनां सत्राणामुत कव्यानाम् ।
देवानामपि जीवातुरसि वैश्वानर सुप्रसीद ।

यज्ञों का, सुन्दर क्रतुओं का (क्रतुः यज्ञ, प्रजापति, विष्णु, प्रज्ञा एवं शक्तिवाचक शब्दा) सत्रों का (सावधिक यज्ञों का) कव्यों का (पितृनिमित्तक अन्नाहुतियों का) और देवताओं के भी तुम जीवनदाता हो। हे वैश्वानर, तुम प्रसन्न हो जाओ॥

अग्न आयाहि० बर्हिषि ।
अग्न आयाहि सुक्रतुं पारयस्व समेधितः ।

हे अग्ने, आओ, ओ प्रकाशपुञ्ज अग्निदेव, तुम आओ, वर्द्धिष्णु इस सुन्दर यज्ञ को तुम पार लगाओ॥

अभितर्पय देवान् हविषास्मान् सुपुष्टिभिः ।
आयाह्यग्ने वीतिमलङ्कृधि सुपुष्टः पुष्टिमान् कृधि ।

हमारे सुपुष्टिकर हविषों से देवताओं को प्रसन्न करो, हे अग्निदेव आओ, हमें समृद्ध करो, पुष्टिकर तत्त्वों से हमें सुपुष्ट करो॥

इमं नो यजमानं बर्हिषोऽस्मादजीजनः ।
अग्ने त्वन्नो० रयिन्दाः ।

हे अग्निदेव तुम आओ, इस यज्ञ को आकर सुपुष्ट करो। हमारे इस यजमान को अपनी प्रसन्नता से सुपुष्ट करो।

त्वां हविर्निर्वप्तये कामाग्निमाददे ।
तथा सदाशिवेश्वररुद्रविष्णून् ।

हे अग्निदेव, त्वन्नो देवा० इत्यादि मन्त्र पढ़ें, तुम्हें हवि देने के लिए इस कामाग्नि को समर्पित करता हूँ। तथा सदाशिव, ईश्वर, रुद्र और विष्णु की प्राप्ति के लिए इस हविष्य का समर्पण करता हूँ। इसके बाद हविनिर्वप्ति का मन्त्र पाठ करे॥

निर्वप्तये हविषो निर्वप्तिम् ।
हवि० निर्वप्तिम् ।

इत्याह्वानान्ते
संवर्धस्व समेधस्वाग्ने हविषो निर्वप्तये संदधामि ।
इमानि वानस्पत्यान्याच्छिन्नानि संदधामि ।

इस तरह अग्नि के आह्वान के अन्त में—

हे अग्निदेव, तुम खूब बढ़ो, सुन्दर ढंग से बढ़ो। हविष्य पाने के लिए ही तुम्हारा संधान करता हूँ। ये सन्निधायें, ये लकड़ियाँ, दूसरों के द्वारा लाई गई हैं, इसे मैं धारण करता हूँ—

अभिवर्धस्व वैश्वानर हविषां साधनाय ।
काष्ठानीव यजमानस्य पाप्मनो निर्दह ।

हविष्य साधने के लिए हे वैश्वानर तुम बढ़ो। काठ की तरह हमारे यजमान के पापों को जलाकर भस्म कर दो॥

आयाहि त्वं वीतये यजमानस्य श्रेयसे ।
आह्वयाम सुरे मन्त्रकृतैरुशत्तमै स्तोमैः ।

यजमान के कल्याण के लिए तुम इस यज्ञ में पधारो। मंत्रों में सन्निहित उत्तम स्तोत्रों से देवताओं का मैं आवाहन करता हूँ।

आयाहि त्वं शतधृतिना समीडिते अभीष्टुतैरुरुभिरुक्थशंसैः ।
यजमानस्य कामान् पुष रायस्पोषाय सन्नता ।

देवराज इन्द्र से सम्पूजित अनेक सुन्दर स्तोत्रों से संस्तुत, यजमान की कामनाओं के संरक्षण के लिए, विनत यजमान की समृद्धि हेतु तुम इस यज्ञ में आओ॥

हेतुसूक्तम्—

देवैरध्यर्णवं निर्गतासि निर्वप्तये सुरे त्वामधिश्रये ।
गन्धं रसं चांक्ष विषमं विमुञ्चानर्हं यत्ते मादनम् ।

हेतुसूक्त—

देवताओं के द्वारा समुद्र मन्थन से तुम निकले हो, तुम्हारी प्रिय सुरा की भेंट मैं तुम्हें

देता हूँ। इनमें, गन्ध, रस, अक्ष जो कुछ तुम्हें आह्लादक न लगे, उन्हें छोड़ दो॥

सुधारसं यत्ते पुरा स्कन्नं तेनाभि निर्गच्छ ।

वैश्वानरस्त्वामुन्नयतु सुश्लोक्यामश्लोक्यामपनोदतु ।

सुधारस जो पहले तुमसे नीचे गिर गया है उससे बाहर निकलो। हे वैश्वानर, तुम ऊपर आओ, तुम स्तुत्य हो या अस्तुत्य हमारे पापों का तुम प्रायश्चित करो॥

अपां मेध्यं यज्ञियं तदभिगृह्णामि ।

आपस्तवो मा भवन्तु पुनर्नः प्रतिपूरिताः ।

शुद्धिकृत पवित्र यज्ञीय जल मैं ग्रहण करता हूँ। जल का अधिक फैलाव न हो। फिर, हमारा यह प्रतिपूरित हो॥

भैरवस्तुतिः—

दृषदसि वीतिसाधनं त्वामभिनिक्षिपामि ।

उपदृष०/त्वां दृषदि निक्षि० ।

भैरवस्तुति—

तुम चट्टान या शिला हो, सुखसमृद्धि के साधन तुम हो, तुम्हें मैं यहाँ रखता हूँ। तुम लोढ़ा हो तुम्हें मैं शिल पर रखता हूँ॥

येऽत्र वै कृता दोषा देवानामवमोददाः ।

तीर्थेन तान्निर्णुदामः सुहिता भव संविदे ।

देवताओं को अप्रसन्नतादायक दोष जो कोई यहाँ करेगे, उन्हें तीर्थ से मैं दोषमुक्त कर दूँगा। हे संविद, आप उनके हितसाधक बने॥

अभिपीडितान्तर्दोषान् प्रविमुञ्चीयेत आसन्नभैरवीयैः

प्रेतैः संगतिना। सुवंशे पात्रेऽभिप्रसृता यजमानं सु शं कृणु ।

आसन्नभैरव के साथ रहनेवाले प्रेतों से अभिपीड़ितों को दोषमुक्त करो। सुन्दर बाँस की डाली में फैले आप यजमान का कल्याण करो॥

आसादिता दृषदि वायुना गर्भदोषान्निर्गमय ।

पशुरसि क्रतुपारगः ।

चट्टानों पर आसीन उसे वायु के द्वारा गर्भदोष से मुक्त करो, यज्ञ को पार लगानेवाले तुम पशु हो॥

एभिस्तीर्थैरभिपावितो भव ।

एत वासः संवृणोमि तेनासुरैः संवृतो भव ।

इन तीर्थों के जलसिंचन से पवित्र बनो। इन वस्त्रों का मैं वरण करता हूँ। इससे असुर ढँक जाय अर्थात् तिरोहित हो जाय॥

देवानां तर्पणः सुमेध्यो ब्रह्मभावनः ।
मूर्धा ते क्षेत्रपतये भूयात्। ग्रीवा तिरस्कृत्यै। हृदयं मूलराज्यै ।
दक्षपार्श्वं मन्त्रिण्यै। वामपार्श्वं दण्डिन्यै। उदरं पञ्चिकाभ्यः ।
नाभिर्नित्याभ्यः। वपा अग्नये। वस्तिर्गुरूणाम् ।

देवताओं का तर्पण करो। ब्रह्मभाव से सुन्दर बकरा बन जाओ, तुम्हारे शिरक्षेत्र पति के लिए हो। गर्दन तिरस्कृति के लिए। हृदय मूलराज्ञी के लिए। दाई पसलियाँ मन्त्रिणी के लिए, बाईं पसलियाँ दण्डिनी के लिए, पेट पञ्चिकाओं के लिए, नाभि नित्याओं के लिए। चर्बी अग्नि के लिए, पेडू गुरुओं के लिए॥

आन्त्राणि भैरवाय। क्रोडमावृतिभ्यः। दक्षभुजं कुमार्यै ।
वामभुजं वटुकाय। ककुदं बलिदेवताभ्यः। मेढ्रं ब्रह्मणे ।

अँतड़ियाँ भैरव के लिए, छाती आवृतियों के लिए, दाईं भुजा कुमारियों के लिए। बाईं भुजा बटुकों के लिए, कूबड़ बलि देवताओं के लिए, जननेन्द्रिय ब्रह्मा को॥

वृषणमिन्द्राय। दक्षजङ्घा गङ्गायै। वामं वरुणाय। अन्यान्यन्येभ्यः ।

फोते इन्द्र के लिए, दाईं जाँघ गङ्गा के लिए, बाईं जाँध वरुण के लिए तथा अन्य (अङ्ग) अन्यों के लिए॥

पशुपाशाय० दयात्। शिवोत्कृत्तमि० ह्यसि। इमामगृभ्ण० कव्या ।

पशुपाश के लिए भी देना चाहिए। शिवोत्कृत्यभि० तुम हो, इमामगृह्ण इत्यादि मन्त्र मृत पितर निमित्तक हो॥

मेढी भव खचक्रस्य ध्रुवो भव ।
बध्नामि त्वां रशनया मान्यत्र पराक्रम ।

मेढी बनो, आकाश चक्र का ध्रुव बनो। रस्सी से मैं तुम्हें बाँधता हूँ। अन्यत्र पराक्रम न करो॥

देवैरुपयुक्तोऽमृतमश्नुहि ।
निखनामि त्वामगराजे वाचालो भव ।

देवताओं के लिए उपयुक्त अमृतत्व को प्रास करो। हे पर्वतराजपुत्रि तुम्हारी जड़ मैं खोदता हूँ, तुम वाचाल बनो।

कृपाणिं त्वां करालं नैर्ऋतोद्यतम् ।
समाददे विशसनाय पशोरस्य सुक्रतौ ।

देखो, एक भयंकर राक्षस की यह बर्छी तुम्हारे लिए तैयार है।
इस सुन्दर यज्ञ में वध के लिए पशु लाकर दो। तीर्थजल से अभिषिक्त सुदृढ पापरहित पशु का वध कर॥

तीर्थेनाभिनिर्णिक्तः सुदृढान् शमलान् जहि ।
बद्धो मेखलया विकृतोऽभिसंविश ।
कृपाणिं त्वामभिमन्त्रये दुर्गा त्वामभिसंविशतु वरेण्या ।

मेखला में बँधी परिवर्तित इस घेरे में प्रवेश कर। हे कृपाणि मैं तुम्हें अभिमंत्रित करता हूँ। अतिवरेण्य दुर्गा तुम में प्रवेश करे॥

छुरिकां त्वां करालामित्यादि०। राजीवारोहितवक्षः स्त्रोतो देवताभ्यः ।

हे छुरिके, तुम अति भयङ्कर हो—इत्यादि मन्त्रका पाठ करते हुए—राजीव तुम्हारी छाती पर सवार हैं। देवताओं तक पहुँचने के तुम स्रोत हो।

कामद्रवः श्यावमुखाः। अमुष्मिन्संविशध्वं सुहितास्थो वीतये ।
मीनोसि सु० भव। एतत्तीर्थं संपिबामृतत्वमधिगच्छ ।

"कामद्रव......मीनोऽसि" तक मन्त्र का पाठ करे, फिर कहे—इस तीर्थजल का पान करो, और अमृतत्व को प्राप्त करो।

संयुजामि त्वाममीषु पावितः पुनीहीमान्। एतं वासः० भावनः ।
आयाहि सुरां धार० पारय पूजिता त्वं० धात्री। त्वं शेमु० धयित्री ।
त्वं सुरां धारयन्ती० महिमानं महान्तम्। एवं संविद्धात्र्याः ।

'तुम्हें इनसे सम्बद्ध कराता हूँ, इन्हें पावन बनाकर पवित्र करो', इत्यादि मन्त्रों का पाठ करते हुए फिर सुरा धारण करनेवाले इत्यादि मन्त्र का पाठ करे।

आयाहि मन्त्रिणि मन्त्रवतां वरिष्ठे गीतैर्हास्यैरभिराध्नुमो वयम् ।

हे मन्त्रिणि, मन्त्रवानों में तुम वरिष्ठ मन्त्रवती हो, गीत और हास्य से हम तुम्हारी आराधना करना चाहते हैं। तुम हमारे पास आओ॥

आयाहि मन्त्रकृताहूता संवृता रश्मिगणैर्महीषुभिः ।
त्वं मन्त्रज्ञा मन्त्रिणि मातृमूर्तिर्गीतैर्वाद्यैरपि नर्मवाग्भिः ।

मन्त्रकृतों के आवाहन पर अपने दिव्य और प्रदीप्त वाणों के साथ तुम मन्त्रज्ञा हो, हे मन्त्रिणि, तुम मातृमूर्ति हो, गीत, वाद्य से संतुष्ट होनेवाली हो तथा मधुरवादिनी हो॥

सभाजिता शुकवाक्संश्रुतीनां रसज्ञा महाराज्ञी प्रेयसी मूलशक्तिः ।

तुम प्रणम्य हो, प्रतिज्ञात हो, रसज्ञा हो, महाराज्ञी हो, प्रेयसी हो, मूलशक्ति हो॥

मणेर्मेचकस्वाङ्गकान्त्यावहा सा तन्त्रीयुक्तां कच्छपीं धारयन्ती ।

तुम मणि के मेचक अर्थात् गहरी नीलिमा हो, अपने अङ्गों की आप कान्ति का वहन करनेवाली हो। कच्छपी तन्त्री (वीणा) धारण करनेवाली हो॥

विद्याबलानां शेमुषीणां विधात्री पाह्यस्मान् पूरय सुक्रतूक्थम् ।

विद्या और बल की प्रज्ञा का तुम विधान करनेवाली हो, हमारी तुम रक्षा करो और हमारे सुन्दर यज्ञ का भी सम्पादन करो॥

आयाहि दण्डिन्यमुमीडितं वै विधातुमत्र समावृता स्वीयसंवारवेशैः ।

हे दण्डिनि, इनसे पूजित होकर तुम आओ। यहाँ अपने पुरःसर वाले आवास स्थान का विधान करो।

विताय क्रतुमभिरायो बलानि भवस्वेमं यजमानं शरण्या ।
त्वं दण्डिन्युग्रदण्डप्रचण्डा मन्यूनां राज्ञी किरिवक्त्राभिरम्या ।

सचेष्ट शक्ति के लिए, इस यज्ञ का जलसंधान करो। हमारे यजमान के लिए यह शरण्य स्थल बने। तुम दण्डिनी अपने उग्र दण्ड के लिए प्रचण्ड बनी हो; तुम मैना की बोली से प्रसन्न होती हो जो अत्यधिक आनन्दकर है॥

अधिक्षिपस्यनुगंतृ प्रतीपान् जगद्दण्डेन जयसि त्वमेका ।
त्वया हीनास्तूत्पथाः संविशेयुः सर्वेऽन्योन्यं प्रविशेयुर्वपूंषि ।

तुम अपने अनुसरणकर्ता के विरोधियों को दण्डित करती हो, तुम अकेली अपने कठोर दण्ड से संसार को जीत लेती हो, तुम्हारी कृपा के बिना लोग कुमार्गगामी होकर भटक जाते हैं। सभी एक दूसरे के पेट में समा जाते हैं॥

सीरं मुसलं प्रहिणोष्यातिवेलान् हिरणमयेन वपुषा सूर्यवर्चसा ।
आगच्छतामुं वीतिं गुरवः सुमेधसः पूर्वं स्त्रोतः सन्निधाना वरेण्याः ।

हल मुसल का अनियमितता से प्रहार करते हुए, सूर्य की तेजोमयी सुनहली कान्ति वाली देह से इस यज्ञ को, गुरु सुमेधा इससे पूर्व अभिलषणीय व्यक्ति इस सरिता के साथ हैं॥

समाधाय सुक्रतुं पारयं त्वस्मान् प्रपन्नानभिराधमानान् ।
पूजनीया गुरवः सर्वतश्च समीडिता सर्वगुणप्रधानाः ।

सुन्दर इस यज्ञ का गम्भीर चिन्तन मनन कर इसे पार लगाओ, हम सब तुम्हारी आराधना में तत्पर शरणागत हैं, हमारे गुरु सर्वगुणप्रधान हैं, सब जगह सुपूजित हैं पूजनीय हैं, उनका सत्कार करना हमारा धर्म है॥

शिवात्मानः संवरणाः समीहासुशेवधयः काम्यमानस्य लोके ।
अत्रैव गणपतिं पीठानि समयदेवतां योजयेत् ।

लोक में कल्याणकारी व्यक्ति जो किसी आवरण से ढँके हैं, जिनकी प्रबल इच्छा और मूल्यवान कोशों के साथ संलग्न हैं। यहाँ ही गणपति पीठ और समयदेवता की भी स्थापना करनी चाहिए॥

एवं दक्षिणस्त्रोतसि भैरवान् सिद्धान् बटुकान् पददेवते समयदेवताम् ।

पश्चिमस्त्रोतसि दूतीमण्डलानि वीरभैरवान् नाथान् समयदेवताम् ।

इस तरह दायें स्रोत में भैरवों, सिद्धों, बटुकों, पददेवताओं, तथा समयदेवताओं को तथा पश्चिम स्रोतों में दूतियों को, मण्डलों को, वीर, भैरवनाथों एवं समयदेवताओं को॥

उत्तरस्त्रोतसि मुद्रा वीरावलीः समयदेवताम् ।
मालिनीं मन्त्रराजं मण्डलगुरून् समयदेवतां योजयेल्लिङ्गादिविपरिणामश्चेति ।

उत्तर के स्रोतों में मुद्राओं को, वीरावलियों को, समयदेवताओं को, मालिनी को, मन्त्रराज को, मण्डलगुरुओं को और समयदेवताओं को लिङ्गादि विपरिणाम के साथ इन्हें जोड़ देना चाहिए॥

शमनोसि शामित्रमभिगमय ।
इमं खड्गमभिसंगृहाणेमं पशुं वीतये सन्नियच्छ ।

तुम वशवर्ती बनाने वाले हो, अतः यज्ञ के लिए बलि पशु बाँधने वाले के पास जाओ। इस तलवार को उठा लो, इस पशु को यज्ञ के लिए सन्नियोजित करो॥

पशूनां त्वा पशुराजं सुक्रतवे संयुनज्मि ।
मा मा हिंसीर्मे हिंसितः सुकृतेन त्वोन्नयामि ।

पशुओं के तुम राजा हो, इस सुन्दर यज्ञ में मैं तुम्हें सुनियोजित करता हूँ। इस हिंसा से अग्नि के द्वारा मैं तुम्हें ऊपर उठाता हूँ। मेरी हिंसा न करो॥

छुरिकामुक्तवद्द्यात् प्रार्थ्य मत्स्यं तथा चरेत् ।
इदं वासोमि ददाम ते शमित्रे व्रीहीनां द्रोणमभिसंगृहाण ।

पहले की तरह छुरी की प्रार्थना कर उसे दे दे। मछली के साथ भी वैसा ही आचरण करे। यह वस्त्र मैं तुम्हें देता हूँ तुम्हारे कल्याण के लिए, अन्नों की राशि स्वीकार करो॥

तेनेममभि मा हिंसन्तु रायस्पोषाः सन्तु पशवः क्रतूनाम् ।
मूर्धान्ते क्षेत्रपतयेऽभिषिञ्चामीति सर्वतः ।

अतः इनकी हिंसा नहीं करो, प्रत्युत इन यज्ञीय पशुओं का कल्याण हो सब ओर से मूर्धान्त में क्षेत्रपति क लिए अभिषिञ्चन करता हूँ॥

आददे त्वामसि-पुत्रीं शर्मकर्त्रीं यजमानस्य ।

यजमान का कल्याण करने वाली यह छुरी मैं तुम्हें देता हूँ, अब से तुम कल्याणकारी यजमान की हो तुम उनकी कटार हो॥

अनया त्वं विशसितः शर्मकृद्यजमानस्य भूयाः ।
तत्ते बध्नामि रशनाभिर्नियोत्रैः ।

इससे तुम कल्याणकारी यजमान के विशसित बनो, इसीलिए तुम्हें इस रस्सी से बाँध देता हूँ॥

मीनानां विशसनं च प्रोक्तं भवतीश्वरि ।
मूर्धानमिमं क्षेत्रपतये शंसामीति सर्वतः ।

हे परमेश्वरि, मछलियों का विशसन पूर्ववर्णित रीति से ही होता है और, इस मूर्धा क्षेत्रपति के लिए मैं अनुशंसित करता हूँ॥

क्षेत्रपतेः परिचरा लोहितपाः सुतीक्ष्णधियः ।
ये तान् यजमानाय पातवे क्षतजेनाभिप्रीणयामि ।

क्षेत्रपति के सारे परिचर लोहितपा, एवं सुतीक्ष्णबुद्धि हैं, घी प्रभृति जो हैं, उन्हें यजमान की रक्षा के लिए कटे सिर चढ़ाकर तुम्हें प्रसन्न करता हूँ॥

समाददे वोऽत्र वीतिदेवांस्तर्पयितुं संस्करणायोलूखले निक्षिपामि ।
भरस्वेमांश्चणकानुलूखलोऽभियाचितः। आददे त्वां मुसलं कण्डनाय ।

वीतिदेवताओं को प्रसन्न करने के लिए, इस अन्न को अभिमन्त्रित कर ओखल में डालता हूँ। ओखल को चने से भर दो। यही ओखल की भावना है, इन्हें कूटने-छाँटने के लिए, मैं तुम्हें मुसल देता हूँ॥

तेनारातीः कण्डिताः स्युः समन्तात् ।
भूरभिहनिष्ये भुवः सुवर्भूर्भुवः सुवरभि हनिष्ये ।

इससे शत्रु सब ओर से कूट छाँटकर विशुद्ध कर लिये जायेंगे। फिर धरती पर आघात होगा, भुवः अर्थात् अन्तरिक्ष पर अधिकार, फिर धरती, आकाश और अपरलोक पर अधिकार होगा॥

अभिषिञ्चामीमान् सुवीतयोऽभिसंयुनज्मि ।
भूरभिषुणोमीत्येवं संविदि पेषणम्। पेषयेत्तद्वदेवात्र चणकानपि शङ्करि ।

इस सुन्दर समृद्धि का मैं सिंचन करता हूँ, फिर इन्हें साथ साथ मिलाता हूँ। धरती को मैं आत्मसात् करता हूँ। फिर, इसी तरह हे शङ्करि! इस कूटे चने को भी पीसता हूँ॥

त्वं सुक्रतूनां विदधासि वै फलं देवान् तोषय हविषा स्वेन संविदे ।

तुम सुन्दर यज्ञों को धारण करती हो, अपने संविद में अपनी आहुति देकर देवताओं को सन्तुष्ट करो।

मण्डलेश का आवाहन :

निषीदात्र प्रस्तरे सर्वकामान् यजमानस्य वर्धय सुप्रणीता ।

यहाँ पत्थर पर बैठो, सामने उपस्थित यजमान की सभी कामनाओं का संवर्द्धन करो॥

आयाहि मण्डलेशात्र क्रतुं मण्डय मण्डले ।
देवताभिरभिसंवृतोऽभिगमय क्रतोः फलम् ।

हे मण्डलेश यहाँ आओ, मण्डल में इस यज्ञ को सुशोभित करो, देवताओंको साथ लेकर इस यज्ञ के फलस्वरूप यहाँ पधारो॥

त्वं मण्डलेशो मण्डलानि मण्डलेश्युशत्तमः ।
यजमानस्य सुक्रतुं पारय रायस्पोषः सर्वतः समभिष्ठुतः ।

तुम मण्डलेश हो, यह एक श्रेष्ठतम मण्डल है। यजमान के सुन्दर यज्ञ को पार लगाओ। मनोभिलषित रायस्पोष तुम्हारे सामने हैं।

क्षेत्रपतेर्मूर्धानं निक्षिपामि सर्वत एवम्। नैऋत्यादिषु कोणेषु दिक्षु प्रागादितोऽपि च ।
विदिक्षु तत्तदग्रेऽपि बहिः प्राग्दक्षिणोत्तरे ।
मध्ये च निक्षिपेदङ्गान्युक्तरीत्या क्रमेण तु। निषीदात्र प्रस्त० ।

हर जगह इसी तरह क्षेत्रपति के लिए मैं मूर्धान रखता हूँ। नैऋत्यादि कोणों में, पूर्वादि दिशाओं में विदिशाओं में उससे भी आये, पूर्व, उत्तर और दक्षिण में तथा बाहर भी। फिर बीच के अङ्गों में पूर्वोक्त रीति से क्रमशः। आओ, इस पत्थर पर बैठो॥

र्धय सुप्रणीत ।
त्वं सुक्रतूनां० हविषा पाशवेन ।
इमां त्वां संविद्ग्रहणीं हेतुग्रहणीं हविर्ग्रहणीं स्रुचं स्रुवमासदे ।

सामने रखी वस्तु को स्वीकार करो। तुम सुन्दर यज्ञों का विधान करने० पशुसम्बन्धी आहुति से यह तुमको संविद ग्रहण करनेवाली, हेतुग्रहण करनेवाली हवि ग्रहण करनेवाली, स्रुवा उपलब्ध कराये॥

तथा संविदादिशेषग्रहणीमासदे ।
त्वं शेमुषीणा० बोधयित्री। त्वं संविदं धा० नं महान्तम् ॥
त्वं कालवर्ष्मा० तं समीडिरे॥ हिरण्यगर्भः सम० द्यामुते मां तं
देवमिहावहे। इति ऋक्त्रयम् ।

तथा संविद एवं आदिशेष ग्रहण करनेवाली उन्हें दे दे। तुम प्रज्ञा को प्रबुद्ध करनेवाली०। तुम संविद धारण करनेवाली०। नं महान्तम्०॥ तुम कालवर्ष्मा हो०। मैं उसकी आराधना करता हूँ। इसी तरह हिरण्यगर्भ० इत्यादि। तीन ऋचाओं का पाठ करे।

तस्मै देवाय हविषा विधेमेति स्तुतिः ।

तस्मै दैवाय हविषा विधेमेति० यह स्तुति करे॥

आयाहि विष्णोऽत्र क्रतुपारणायेमं यज्ञं विततं पाहि चास्मान् ।

देवैः सम्यक् समीडितोऽत्र लोके लोकानवसि द्रुतमायाहि चात्र ।
तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

इसके बाद भगवान् विष्णु का आवाहन करे। हे विष्णो, आप इस यज्ञ को पार लगाने के लिए यहाँ आयें, इस यज्ञ की तथा हमारी रक्षा करो। देवताओं के साथ इस लोक में आप हमसे पूजित हैं। आप अतिशीघ्र मेरे पास आएँ। फिर, तद्विष्णो० इत्यादि ऋचा से विष्णु की स्तुति करे॥

विष्णोर्नुकं वी० ष्णवे त्वा ।

फिर, तद्विष्णो परमं पदम्० इत्यादि स्तुति करे।

नीलकण्ठ का आवाहन एवं स्तुति :

आयातु देवो भगवान्नीलकण्ठ इमं यज्ञं वहतु सर्वतः ।
गिरिव्रजो गिरिजाजानिरीशोऽस्मान् यजमानं पातु विद्विषः ॥
त्र्यम्बकं यजामहे० मृतात्। अवतत्य धनुस्त्व० नाभव ॥

सूर्य का आवाहन एवं स्तुति :

आयाहि सूर्य क्रतुषु त्वमीशः सर्वं लोकं वहसि स्वमहिम्ना ।
धाम्नामस्युरुतरदेवपूज्य क्रतुमिमं पारय लोकमूर्ते ॥
आयाह्यग्ने सोमेत्यादि ॥ उद्वयं तम० रुत्तमम् ॥ उदुत्यं जा० सूर्यम् ॥
अग्ने त्वं पारया० शंयोः। अग्ने त्वं० रयिन्दाः ॥ आप्यायस्व० सङ्गथे ॥
सोमो राजा नक्षत्राणामोषधीनाम्। अपां रसो रसमयः आप्यायकः ।

पुनः भगवान् शिव का आवाहन करे।

हे सूर्यदेव, आप यज्ञों के स्वामी हो, सम्पूर्ण संसार को तुम अपनी महिमा से मण्डित करते हो, हे लोकमूर्ते, अपने तेजसे तुम परम पूज्य हो, हमारे इस यज्ञ को तुम पार लगाओ।

इसी तरह अग्नि और सोम का आवाहन करे। फिर 'उदवयन्तमस्परिश्वः इत्यादि तथा 'उदुत्यं जातवेदसः' इत्यादि मन्त्रों का पाठ करे। अग्ने त्वम् पारया शंयोः। अग्ने त्वं रयिन्दा० इत्यादि तथा आप्यायस्व० सङ्गमे इत्यादि मन्त्रों का पाठ करे। नक्षत्रों और औषधियों के राजा सोम जल एवं रसमय सृष्टि को सम्पन्न करे॥

आयात्वमुकयजमानस्य यज्ञं पारयितुं पारणीयः। देवैरीड्यः
क्रतुराजे समिष्टः श्रेष्ठः पुष्टिं विदधीह्याशु रायः ॥

अमुक यजमान के यज्ञ को पार लगाने वाले सर्वसमर्थ इस यज्ञ में पधारे। आप देवताओं से पूजित हैं। यह यज्ञ के सम्राट् हैं, समिष्ट हैं, श्रेष्ठ हैं, शीघ्र ही इस यज्ञ में पुष्टि का विधान करो॥

त्वं यज्वनां श्रेय ओजो बलं च रायः पुष्णासि यजमानं पाहि सर्वतः ।
तं त्वां हविषा यजामहे सुकृतं लोकं नयामुकास्मान् ॥

तुम यज्ञकर्ताओं के श्रेय, ओज, बल और समृद्धि के संविधायक हो, यज्ञीय समृद्धि का विधान करो। तुम्हें मैं हविष्य से यजन करता हूँ। तुम संसार में सुकृत लाओ। अमुक यजमान की और हमारी रक्षा कर॥

अनुक्ते सर्वतस्त्वैतदाह्वानं स्तुतिमीरयेत्। इमं हविः पशोरङ्गनामेन्द्रायते।
बर्हिषदे हवामः। तेनास्य यजमानस्य सुकृतं काममभिवर्धताम् ॥

जिन देवताओं का नामोच्चार नहीं किया गया है अर्थात् जो अनुक्त हैं उनका मैं आवाहन एवं स्तुति करता हँ। यह हवि पशु के छिन्न अङ्गों को इन्द्रत्व प्रदान करे। अतः मैं अग्नि में हवन करता हूँ। इससे मेरे इस यजमान के सुकृत और कामना की अभि-वृद्धि हो॥

प्रत्येकं यागमन्त्रोऽयं तत्तन्नामाङ्गसंयुतम् ।
इन्द्रो मे रिपुहा भूयाद्धविषा हुतेन संप्रीत इन्द्रायेदं न मम ।

प्रत्येक याग के लिए यही मन्त्र उन देवताओं के नामाङ्ग के साथ है। इन्द्र मेरे दुश्मन को विनष्ट करे। इस आहुति से इन्द्र मुझपर प्रसन्न हों। इन्द्र को मेरा प्रणाम॥

तिरस्कृतिः पशुदृष्टिघ्नी। क्षेत्रपालः क्षेत्रपः। भैरवो भयहन्ता ।
विश्वमूर्तिः विश्वबोधनः। संवित्संवेदयित्री। सुरा सौमनस्यदात्री ।

तिरस्करिणी पशुदृष्टि को विनष्ट करे। क्षेत्रपाल सम्पूर्ण क्षेत्र की रक्षा करे। भैरव हमारे भय को विनष्ट करे। विश्वमूर्ति विश्व को संबुद्ध करे। संविद् संवेदनशील हों। सुरा सौमनस्य देनेवाली हो॥

गङ्गा पावयित्री। वरुण आप्यायनोः। मन्त्रिणी मन्त्रदात्री ।
दण्डिन्यरातिदण्डदात्री। नित्या नित्यार्तिहन्त्र्यः। गुरवो ज्ञानप्रदाः ।

गङ्गा पवित्र करनेवाली हैं, वरुण पदोन्नति या सन्तुष्टि देनेवाले हैं। मन्त्रिणी सलाह विचार देनेवाली हैं। दण्डिनी दुश्मनों को दण्ड देनेवाली हैं। नित्या प्रतिदिन आर्त्ति अर्थात् कष्ट हरनेवाली हैं। गुरुजन ज्ञानदाता हैं।

अङ्गदेव्यङ्गपोष्ट्री। त्रिपुराद्यावृतिदेव्यः पृथक् सम्पत्कर्यः। ब्रह्मा
ब्रह्मवर्चसदः। विष्णुरोजोदः। शिवः शुभदः। सूर्याद्यास्तेजोदाः ।
आम्नायगा अशुभहरा इति ।
यजमानस्य यागान्ते त्यागमन्त्रा उदाहृताः ।
देवानां त्वा हविषामभिसन्यामि संविदम् ॥
०मभ्यासदे०। मभिसंगृह्णामि०। मभिपिबामि० ।

अङ्गदेवी अङ्गों का पोषण करती है। त्रिपुरादि आवृतिदेवियाँ अलग-अलग सम्पत्ति देनेवाली हैं। ब्रह्मा ब्रह्मवर्चस देनेवाले हैं। विष्णु ओजदाता हैं। शिव शुभद हैं। सूर्य आदि देवता तेज प्रदान करनेवाले हैं। पुण्यपरम्परा अशुभों को नष्ट करती हैं। यजमान के यज्ञ के अन्त में त्यागमन्त्र उदाहृत किये गये हैं। देवताओं के हविष्य को संक्षिप्त करता हूँ। अभ्यासदे०, अभिसंगृह्णामि, अभिपिबामि०। इत्यादि मन्त्रों का पाठ करे॥

उच्छिष्टभाग्भ्योभि समुत्सृजामि यजमानस्य पातवे ॥
हिरण्यवर्णामित्यादि तथाह्वानं स्तुतिर्भवेत् ।
गन्धद्वारादि सप्तर्चं पठित्वा क्रमतः शिवे ॥

यजमान की रक्षा के लिए उच्छिष्ट भाग पाने वालों को उनका स्वत्व मैं देता हूँ॥ 'हिरण्यवर्ण्याम्' इत्यादि श्रीसूक्त पढ़कर देवी का आवाहन कर उनकी स्तुति करे। फिर 'गन्धद्वारां' इत्यादि सात ऋचाओं को पढ़कर हे शिवे! क्रमशः।

सुपूर्णां पूरयित्रीं त्वां प्रपद्ये सुन्दरीं श्रियम् ।
सुपूर्णं मा विदधीहि श्रीमति प्रेतसंविशे ॥
हविषा संविदा पारिस्रुतेन वसुधारया च ।
सर्वान्नः पूर्णानभिसंविधेह्यागस्कृते मयि शान्तिं विधत्स्व ॥

हे लक्ष्मी, हे सुन्दरि, भरे हुए को तुम भरनेवाली हो, मैं तुम्हारा शरणागत हूँ। यज्ञ का सम्पूर्ण फल, हे प्रेतसंविशे, खण्डित न कर। संविद हविष से स्रुवा के माध्यम से दी गयी वसुधारा तुम स्वीकार करो। हर तरह के अन्नों से हमें परिपूर्ण कर, मेरे लिए शान्ति का विधान कर॥

द्वाभ्यां युतं त्रिधा कृत्वा पूर्णाहुतित्रयं यजेत् ।
सुन्दर्यै त्रिपुराद्यायै कामदायै त्यजेत्तथा ॥

दो से युक्त तीन खण्डों में बाँटकर तीन पूर्णाहुति डाले। ये तीनों पूर्णाहुति क्रमशः सुन्दरी, त्रिपुरा एवं कामदा के लिए छोड़े॥

इति मन्त्रास्तु ते प्रोक्ता अथर्वणसमुद्भवाः ।
पाठमात्रेण मन्त्राणां तत्पूजाफलमाप्नुयात् ॥

ये अथर्ववेदीय मन्त्र तुम्हें बताये। इन मन्त्रों के पाठमात्र से त्रिपुरा की पूजा का फल प्राप्त होता है।

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे मन्त्रकथनं नाम विंशस्तरङ्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में २४३ पदों में मन्त्रकथन नामक व्याख्या बीसवाँ तरङ्ग सम्पन्न हुआ॥ २०॥

●

अथैकविंशस्तरङ्गः

(श्रीसूक्तस्य विधिः)

शैलजोवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि श्रीसूक्तस्य विधिं परम्।
त्रिपुरार्णवसम्प्रोक्तं वद मे कृपया विभो॥ १॥

पार्वती ने कहा—

हे भगवन्, श्रीसूक्त की उचित पाठविधि मैं सुनना चाहती हूँ। हे प्रभु, इस सन्दर्भ में त्रिपुरार्णव में जो कुछ कहा गया है, कृपया मुझे समझा दे॥ १॥

भैरव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि श्रीसूक्तविधिमुत्तमम्।
यस्य श्रवणमात्रेण त्रिपुरा वाञ्छितप्रदा॥ २॥

भैरव ने कहा—

हे देवि, सुनो, मैं तुम्हें उत्तम श्रीसूक्तविधि बतलाता हूँ, जिसके सुनने मात्र से त्रिपुरा भगवती मनोवांछित फल देती हैं॥ २॥

हिरण्यवर्णामित्यादि पुरुषानहमन्तकम्।
तिथिसंख्यर्चसंयुक्तं श्रीदेवीप्रीतिदायकम्॥ ३॥

'हिरण्यवर्णाम्' आदि मन्त्र से 'पुरुषानहम्' तक पन्द्रह ऋचाओं से पूजा त्रिपुरा को परम प्रीतिदायक कही गयी है॥ ३॥

श्रीविद्यायाः सूक्तमिदं श्रीसूक्तमिति कीर्तितम्।
श्रीविद्या त्रिपुरैव स्यात् त्रिपुरासूक्तमेव तत्॥ ४॥

यह श्रीविद्या का सूक्त होने से ही श्रीसूक्त कहलाता है और श्रीविद्या ही त्रिपुरा है, अतः वही त्रिपुरासूक्त भी है॥ ४॥

उपचारेषु मन्त्राणां योजनं यः समाचरेत्।
एकैकशश्चतुर्धा च चतुर्भिस्त्रिस्त्रिभिस्तथा॥ ५॥
चतुःषष्ट्युपचाराणां योजनैवं प्रकल्पिता।
एकैकशः समस्तेन षोडशेषु प्रकल्पनम्॥ ६॥

इस सूक्त के द्वारा अर्चन में ६४ (चौसठ) उपचारों की योजना एक एक, चार चार और तीन तीन पाठों के क्रम से, १६ ऋचाओं के योग से कर लेनी चाहिए॥ ५-६॥

एवं पूजनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
न कर्मणां लोपदोषो भवतीति सुनिश्चितम्॥ ७॥

इस प्रकार की पूजा करने मात्र से हर तरह के पापों से छुटकारा मिल जाता है। इतना ही नहीं, ऐसी पूजा करने से कर्मलोप का दोष भी नहीं लगता, यह सुनिश्चित सिद्धान्त है ॥ ७ ॥

सौभाग्यविद्यावर्णैस्तु पुटितं प्रतिमन्त्रकम् ।
यो हुनेत् तस्य ललिता वाञ्छितार्थान् प्रयच्छति ॥ ८ ॥

सौभाग्य विद्या के अक्षरों से प्रतिमन्त्र को सम्पुटित कर जो हवन करता है, उसे भगवती ललिता वाञ्छितार्थ प्रदान करती है ॥ ८ ॥

बिल्बपत्रैः पापनाशो भवेत् सौभाग्यसम्पदः ।
सुगन्धकुसुमैः सौख्यं तिलैः पापप्रणाशनम् ॥ ९ ॥

(यहाँ इस प्रसङ्ग में हवनीय वस्तुविशेष और उसके हवन से प्राप्य फलों का भी निर्देश किया गया है।)

बिल्वपत्र से पापनाश तथा सौभाग्य और सम्पत्ति मिलती है। सुगन्धित फूलों से हवन करने पर सुख मिलता है, तिल से पाप नष्ट होता है ॥ ९ ॥

धान्यवृद्धिर्भवेद्धान्यहोमैस्तेजो घृतेन तु ।
अन्यैरप्यागमप्रोक्तैर्होमस्तत्तत्फलाप्तये ॥ १० ॥

धान अर्थात् अन्नविशेष से हवन करने पर अन्नभण्डार की वृद्धि होती है। घी से तेजोवृद्धि तथा जो अन्य वस्तुएँ आगम में बतलायी गयी हैं, उनके हवन से वहाँ कहे गये अनुसार फल मिलता है ॥ १० ॥

शतावृत्त्या सहस्रैर्वा तथा दशसहस्रकैः ।
सर्वकामांस्तथा सौख्यं देवता-प्रीतिमाप्नुयात् ॥ ११ ॥

सौ आवृत्ति, हजार आवृत्ति तथा दस हजार आवृत्ति से हर तरह की कामना की सिद्धि होती है, सुख और देवता की प्रीति प्राप्त होती है ॥ ११ ॥

लक्षावृत्त्या श्रीपुरे तु वासः स्यात् कल्पकावधि ।
तथाभिषेकैः श्रीचक्रे प्रोक्तवद्वा महाफलम् ॥ १२ ॥

एक लाख बार पाठ से श्रीपुर में कल्पपर्यन्त वास होता है। अथवा श्रीसूक्त के द्वारा श्रीयन्त्र पर अभिषेक करने से भी उपर्युक्त फल प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

वाग्बीजसम्पुटजपात् प्रतिमन्त्रमगोद्भवे ।
वाक्पतित्वं तु श्रीबीजपुटितैर्देवतात्मता ॥ १३ ॥

श्रीसूक्त की ऋचाओं को वाग्बीज से सम्पुटित करने से वाक्पतित्व, श्रीबीज सम्पुट से देवतात्मता, एवं कामबीज सम्पुट से जगद्वशीकरण होता है ॥ १३ ॥

कामबीजेन पुटिताद् वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ।

पूजने यस्त्वशक्तः स्यात् त्रिधा सूक्तप्रपाठतः ॥ १४ ॥
पूजाफलमवाप्नोति हीयते न कथञ्चन ।
श्रीसूक्तस्यास्य जपतः फलं शतगुणं भवेत् ॥ १५ ॥

पूजा करने में अशक्त होने पर इस सूक्त के तीन आवृत्ति पाठ करने पर सम्पूर्ण पूजा का फल मिलता है। इस श्रीसूक्त के जप से सौ गुना फल मिलता है ॥ १४-१५ ॥

तस्य श्रीत्रिपुरादेवी भवेत् सर्वार्थवर्द्धिनी ।
एतदावश्यकं देवि सर्वथा प्रपठेदिदम् ॥ १६ ॥

ऐसे व्यक्ति के सर्वार्थ को त्रिपुरादेवी बढ़ाती है। त्रिपुरोपासक को इसका नित्य पाठ करना चाहिए, यह आवश्यक है ॥ १६ ॥

त्रिपुरोपासको देवि तस्मान्नित्यं पठेदिदम् ।
एतस्य सदृशं पुण्यं न किञ्चित् पर्वतात्मजे ॥ १७ ॥

अतः हे देवि, त्रिपुरोपासक को प्रतिदिन इसका पाठ करना चाहिए। हे पर्वतपुत्रि, इसके समान कोई दूसरा पुण्य नहीं है ॥ १७ ॥

पापं ज्ञात्वैतदखिलं नश्यत्यामघटाम्बुवत् ।
इति ते देवि सम्प्रोक्तं विस्तरेण विधानकम् ॥ १८ ॥

इसके जान लेने पर समस्त पाप मिट्टी के कच्चे घड़े में पानी डालने से जैसे वह नष्ट हो जाता है वैसे ही वे, नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार हे देवि! मैंने तुमको सभी विधियाँ विस्तार से बता दी हैं ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीत्रिपुरार्णवे त्रिपुरासारसर्वस्वे श्रीसूक्तविधिर्नामैकविंशस्तरङ्गः ॥ २१ ॥

यहाँ त्रिपुरार्णव (त्रिपुरासारसर्वस्व) में श्रीसूक्तविधिनामक
इक्कीसवाँ तरङ्ग पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

●

परिशिष्टम्-१

(सम्पूरक)

अन्य अनेक ग्रन्थों में भी त्रिपुरार्णव से उद्धृत पद्यों का साक्ष्य मिलता है। यथा—

१. श्रीविद्यार्णवे

(श्रीविद्यार्णव नामक ग्रन्थ में)

द्वितीयश्वासे दग्धमन्त्रप्रसङ्गे—

दूसरे अध्याय में अभिशप्त मन्त्र कथन के अवसर पर—

आदौ कूर्चद्वयं मध्ये कूर्चबीजद्वयं तथा ।
अन्ते कूर्चद्वयं यस्मिन् मन्त्रराजे प्रदृश्यते ॥ १ ॥
स तु षट्कर्णको मन्त्रो दग्ध इत्यभिधीयते ।
जपतां सिद्धिरोधः स्यात् त्याज्यः सर्वैः सदा बुधैः ॥ २ ॥

जिस मन्त्रराज के प्रारम्भ में दो कूर्च हो, उसके बीच में भी दो कूर्चबीज हों और अन्त में भी दो कूर्च दिखलाई पड़े॥ १॥

वह षट्कर्णक मन्त्र है, वही दग्धमन्त्र कहा जाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति हमेशा ऐसे मंत्रों के जप से दूर ही रहते हैं; क्योंकि इनका जप करने पर भी किसी तरह की सिद्धि नहीं मिलती॥ २॥

द्वितीयश्वासे मन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय अध्याय में मन्त्र-प्रसङ्ग में—

हूङ्कारस्यैव नामानि कूर्चं माया सरस्वती ।
जलं नीरं तथा कर्णं तटं कूले महेश्वरि ॥ १ ॥

हे महेश्वरि, हुङ्कार के ही कूर्च, माया, सरस्वती, जल, नीर, कर्ण, तट और कूल— ये नाम हैं॥ १॥

द्वितीयश्वासे त्रस्तमन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास में त्रस्त-मन्त्र के प्रसङ्ग में—

आदावन्ते च मध्ये वाप्यधिकाक्षरयोगतः ।
त्रस्तः सोऽभिहितो मन्त्रो जपतामशुभप्रदः ॥ १ ॥

आदि, अन्त और मध्य में अधिकाक्षर योग से उच्चरित भयभीत मन्त्र होता है। वह मंत्र जपने वाले के लिये अशुभ होता है, शुभ नहीं॥ १॥

द्वितीयश्वासे गर्जितमन्त्रप्रसङ्गे—

दूसरे श्वास में गर्जित मन्त्र के प्रसङ्ग में—

मोहाद्वा लोभतो वापि विधिमुत्सृज्य यो जडैः ।
दीयते स तु मन्त्रस्तु गर्जितो गर्हितः सदा ॥ १ ॥

जो मूर्खों द्वारा नियम छोड़कर लोभ अथवा मोह से दिया जाता है या जो मंत्रोच्चार गरज कर किया जाता है, वह मन्त्र सदा निन्दित होता है ॥ १ ॥

द्वितीयश्वासे मन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास में मन्त्रप्रसङ्ग में—

स्वतन्त्रोक्तं परित्यज्य ज्ञात्वा वाऽतृप्तितोऽपि वा ।
स्वगुरुप्रोक्ततो वापि मन्त्राः सिद्धिभ्रमादपि ॥ १ ॥
जपतर्पणहोमार्चामार्जनानि पुनः पुनः ।
कुर्वतो मन्त्रराजः स्यान्निर्जितो गर्हितः सदा ॥ २ ॥

स्वतन्त्र रूप से कहे गये को छोड़कर जानकर अतृप्त रहने के बावजूद अथवा अपने गुरु से प्राप्त मन्त्र सिद्धिप्रद होते हैं ॥ १ ॥

जप, तर्पण, मार्जन, होम तथा पूजन बार-बार करते हुए भी मन्त्रराज निर्जित एवं सदा गर्हित होता है ॥ २ ॥

द्वितीयश्वासे असहमन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास में असह्य मन्त्र के प्रसङ्ग में—

नियमस्य च भङ्गेन मन्त्रः स्यादसहः सदा ।

नियम भङ्ग होने से मन्त्र हमेशा असह्य होता है ॥

द्वितीयश्वासे मन्त्रपुरश्चरणप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास में मन्त्रपुरश्चरण के प्रसङ्ग में—

वीर्यहीनो यथा देही स्वकर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरणहीनो यः तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ १ ॥
नित्यनैमित्तिकाद्यैश्च पुरश्चर्यादिभिर्मनुः ।
भवेत् सत्त्वगुणोपेतः सेवया नृपतिर्यथा ॥ २ ॥
सत्त्वं गुणं समापन्नो मन्त्रः कल्पलतासमः ।

जैसे वीर्यहीन व्यक्ति अपने कार्य सम्पादन में असमर्थ होता है पुरश्चरणहीन मंत्र भी उसी तरह अशक्त होता है ॥ १ ॥

नित्य कर्म हो या नैमित्तिक सभी कर्म पुरश्चरण युक्त ही होने चाहियें, जैसे सत्त्वगुण सम्पन्न राजा सेव्य होता है ॥ २ ॥

सत्त्वगुणसमापन्न मन्त्र कल्पलता के सदृश होता है।

द्वितीयश्वासे छिन्नमन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीयश्वास में छिन्नमन्त्र के प्रसङ्ग में—

पल्लवाद्यैर्विलोपेन स्वरवर्णविलोपतः।
अपूर्णत्वं समापन्नः स मन्त्रश्छिन्नसंज्ञकः॥ १॥

पल्लवादि के विलोप से तथा स्वर वर्ण के विलोप से अपूर्णत्व को प्राप्त मन्त्र छिन्न संज्ञक होता है॥ १॥

द्वितीयश्वासे मन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास में मन्त्र के प्रसङ्ग में—

सानुनासिकवर्णेन संयुक्ताः स्तम्भिता मताः।

सानुनासिक वर्णों के साथ उच्चरित मन्त्र स्तम्भित होते हैं।

× × × ×

स्वरप्राप्ते ऋणप्राप्ते कालेषु विनियुज्यते।
अन्यदा विनियुक्तश्चेन्मन्त्रो मत्त उदाहृतः॥ १॥

स्वर अथवा ऋण प्राप्ति काल में मंत्र का प्रयोग उपयुक्त माना गया है। इससे भिन्न किसी अन्य अवसर पर किया गया मन्त्र का प्रयोग को मत्त कहा गया है॥ १॥

× × × ×

स्वापकालो वामवहो जागरो दक्षिणावहः।
स्वापकालजपान्मन्त्रोऽप्रबुद्धो हन्ति मन्त्रिणम्॥ १॥

सोते समय बाईं ओर ले जानेवाले तथा जाग्रत अवस्था में दाईं ओर ले जानेवाले मन्त्रों को यदि कोई अप्रबुद्ध व्यक्ति सोते हुए जप करे तो वह मन्त्र जपने वाले को ही विनष्ट कर देता है॥ १॥

× × × ×

पुस्तके लिखितं दृष्ट्वा जपेद् यः साधकाधमः।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुः कीर्तिर्यशः श्रियः॥ १॥
जपात्पत्रेषु मन्त्रः स्यात् क्रुद्धः सन् हन्ति साधकम्।

वह अधम साधक जो पुस्तक में लिखे मन्त्र को देखकर जपता है उसकी चार वस्तु विनष्ट हो जाती हैं। वे चार हैं—आयु, कीर्ति, यश और लक्ष्मी॥ १॥

किसी पत्र पर लिखे मन्त्र को देखकर जपनेवाले साधक को वह मन्त्र मार डालता है।

× × × ×

दुःखितास्ते समुद्दिष्टा वैरिवर्णैश्च संयुताः ।

वैरि वर्णों के साथ समुद्दिष्ट मन्त्रों का जप करनेवाला दुःखी होता है।

द्वितीयश्वासे कुण्ठितमन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास में कुण्ठित मन्त्र के प्रसङ्ग में—

प्रयुज्यन्ते सदा मन्त्रास्तत्तच्छान्तिं विना नरैः ।
ते मन्त्राः कुण्ठतां यान्ति तस्माच्छान्तिं समाचरेत् ॥ १ ॥

जो व्यक्ति किसी भी मन्त्र का शान्ति किये बिना ही प्रयोग करते हैं, वे मन्त्र कुण्ठित हो जाते हैं। अतः मन्त्रों का शान्तिविधान करना चाहिए॥ १॥

द्वितीयश्वासे रुष्टमन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास में रुष्ट मन्त्र के प्रसङ्ग में—

मौनं विना जपेन्मन्त्रं राक्षसैर्गृह्यते जपः ।
मन्त्रोऽपि रुष्टतां याति सिद्धिं नैव प्रयच्छति ॥ १ ॥

बिना मौन धारण किये जो साधक मन्त्र जपते हैं, उस मन्त्र को राक्षस ग्रहण करते हैं। मन्त्र भी रुष्ट हो जाते हैं और साधक को सिद्धि नहीं देते॥ १॥

द्वितीयश्वासेऽवमानितमन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास में अवमानित मन्त्र के प्रसङ्ग में—

मन्त्रे गुरौ देवतायामुपेक्षा क्रियते यदि ।
अवस्थया वा वैषम्यान्मन्त्रः स्यादवमानितः ॥ १ ॥

मन्त्र, गुरु और देवता की यदि उपेक्षा करे, या अवस्थावैषम्य से भी मन्त्र अवमानित होते हैं॥ १॥

द्वितीयश्वासे मन्त्रप्रसङ्गे—

द्वितीय श्वास के मन्त्र प्रसङ्ग में—

मधुमत्यां महादेव्यां ऋणशोधो विशिष्यते ।
कालीमते तु मालिन्यामंशकाद्यं प्रशस्यते ॥ १ ॥

मधुमती महादेवी में ऋण का परिशोध अर्थात् भुगतान ही विशेषता है। कालीमत में मालिनी अंशकादि में ऋणशोध प्रशंसनीय माना गया है॥ १॥

कथं ऋणित्वं मन्त्राणां साधकानां च मे वद ।
पूर्वजन्मकृताभ्यासे पापस्याफलाप्तिकृत् ॥ २ ॥

साधकों और मन्त्रों का ऋणित्व कैसे होता है—कृपया यह मुझे बतलायें ? पूर्वजन्म में अभ्यास करने पर पाप का परिणाम यदि प्राप्त न हो॥ २॥

पापे नष्टे फलावाप्तिः काले देहक्षणादृणी ।
मन्त्रः सम्प्राप्तिमात्रेण प्राक्तनः सिद्धये भवेत् ॥ ३ ॥

पाप नष्ट हो जाने पर फल की प्राप्ति होती है, देहक्षय से वह ऋणी हो जाता है। मन्त्र की सम्प्राप्ति मात्र से ही प्राक्तन अर्थात् पूर्वकृत सिद्धि मिल जाती है॥ ३॥

सिद्धमन्त्राद् गुरोर्लब्धमन्त्रो यः सिद्धिभाङ्नरः ।
लक्ष्मीमदादनादृत्य मन्त्रभोगमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

सिद्धमन्त्र से जो व्यक्ति गुरु से लब्ध मन्त्र के द्वारा सिद्धि प्राप्त करता है। लक्ष्मी मद से उसका अनादर कर मन्त्रभोग प्राप्त करता है॥ ४॥

स मन्त्रस्य ऋणी ज्ञेयो भजनं तस्य पूर्वगम् ।
तस्मादृणविशुद्धिस्तु कार्या सर्वैस्तु सर्वतः ॥ ५ ॥

उसे मन्त्र का ऋणी जानना चाहिए। उसकी आराधना पूर्वगामिनी है। अतः सबको सब समय ऋणविशुद्धि करनी चाहिए॥ ५॥

द्वादशश्वासे द्वारपूजाप्रसङ्गे—

द्वादश श्वास में द्वारपूजा के प्रसङ्ग में—

वामपादं पुस्कृत्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ।

बायाँ पैर आगे बढ़ाकर यागमण्डप में प्रवेश करना चाहिए।

चतुर्दशश्वासे कामेश्वरीनित्यायजनप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में कामेश्वरी नित्या के यजनप्रसङ्ग में—

ऋषिः सम्मोहनः प्रोक्तस्त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम् ।
कामेश्वरी देवता स्याद् ब्रह्मबीजं तु बीजकम् ॥ १ ॥
शक्तिः कामकला प्रोक्ता धराबीजं तु कीलकम् ।

इसके ऋषि सम्मोहन है, अनुष्टुप् छन्द है। कामेश्वरी देवता है। ब्रह्मबीज तो बीजक है॥ १॥ शक्ति कामकला है। धराबीज कीलक है॥

चतुर्दशश्वासे भगमालिनीनित्यायजनप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में भगमालिनी नित्या के यजन प्रसङ्ग में—

ऋषिरस्यास्तु सुभगो गायत्रीच्छन्द उच्यते ।
देवतेयं तु बीजं तु हरब्लेमात्मकं प्रिये ॥ १ ॥
शक्तिः श्रीबीजमन्त्यं तु कीलकं परमेश्वरि ।

इसके ऋषि सुभग तथा गायत्री छन्द कहे जाते हैं। ये स्वयं इसके देवता हैं और हर ब्लेमात्मक इसके बीज हैं॥ १॥

हे परमेश्वरि, इनकी शक्ति श्रीबीज है और अन्त्य कीलक है।

चतुर्दशश्वासे नित्यक्लिन्नानित्यापूजाप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में नित्यक्लिन्ना नित्या पूजा के प्रसङ्ग में—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो विराट् छन्द इतीरितम्।
नित्यक्लिन्ना देवतोक्ता वनिताद्राविणी परा॥ १॥
बीजमाद्यं वह्निजायां शक्ति-मतम्।

इसके ऋषि ब्रह्मा और विराट् छन्द कहे गये हैं, इसकी नित्यक्लिन्ना देवता कही गई है। यह वनिता क पिघलाने वाली पराशक्ति है॥ १॥

यह आदि बीज है, वह्नि से उत्पन्न शक्ति कही गई है॥

चतुर्दशश्वासे भेरुण्डानित्यामन्त्रोद्धारप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में भेरुण्डानित्या के मन्त्रोद्धार के अवसर पर—

ऋषिरस्या महाविष्णुर्गायत्री छन्द उच्यते।
देवतेयं वरारोहे तृतीयं बीजमुच्यते॥ १॥
वह्निजाया तु शक्तिः स्यात् कीलकं सृणिरेव च।

इसके ऋषि महाविष्णु हैं और गायत्री छन्द कहा गया है। हे वरारोहे, देवता यह स्वयं हैं, इनका बीज तृतीय कहा गया है॥ १॥

वह्निपुत्री इसकी शक्ति है, सृणि ही इसके कीलक हैं।

चतुर्दशश्वासे वह्निवासिनीनित्यापूजाप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में वह्निवासिनी नित्या पूजा के प्रसङ्ग में—

ऋषिर्वशिष्ठश्छन्दः स्याद् गायत्री देवता त्वियम्।
आद्यन्तं बीजशक्ती स्यात् कीलकं मध्यमेन च॥ १॥

इसके ऋषि वशिष्ठ हैं और गायत्री छन्द है। देवता ये स्वयं हैं। आदि बीज और अन्त्य शक्ति है और कीलक मध्यम है॥ १॥

चतुर्दशश्वासे व्रजेश्वरी नित्यायजनप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में व्रजेश्वरी नित्या के यज्ञ के प्रसङ्ग में—

------------------------------ ऋषिर्ब्रह्मा च गीयते।
गायत्री छन्द आख्यातं देवता परमेश्वरी॥ १॥
आद्यन्ते बीजशक्ती तु वाग्भवं कीलकं भवेत्।

------------ इसके ब्रह्मा ऋषि कहलाते हैं; गायत्री छन्द कहा गया है तथा परमेश्वरी देवता हैं॥ १॥

आदि और अन्त में बीज और शक्ति है और वाग्भव कीलक है।

चतुर्दशश्वासे शिवादूतीनित्यायजनप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में शिवादूती नित्या के यज्ञप्रसङ्ग में—

ऋषी रुद्रोऽथ गायत्रीछन्दस्तद्देवता शिवा।
आद्यन्ते बीजशक्तिं च मध्यं कीलकमुच्यते॥ १॥

इसके ऋषि शिव है, छन्द गायत्री और देवता शिवा हैं। आदि और अन्त में बीजशक्ति और बीच में कीलक कहे गये हैं॥ १॥

चतुर्दशश्वासे त्वरितानित्यायजनप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में त्वरिता नित्या के यज्ञ के सन्दर्भ में—

ऋषिः सौरिर्विराट् छन्दो देवतेयं च पार्वति।
कवचं स्त्री शक्तिबीजे क्षे च कीलकमीरितम्॥ १॥

सौरिः (भगवान् विष्णु या शनिदेव) ऋषि, विराट् छन्द, और इसके देवता पार्वती हैं। स्त्री कवच, शक्ति बीज और 'क्ष' अर्थात् विष्णु कीलक हैं॥ १॥

चतुर्दशश्वासे कुलसुन्दरीपूजाप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में कुलसुन्दरीपूजा के अवसर पर—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिरहं शिरसि विन्यसेत्।
छन्दः पङ्क्तिस्तु विज्ञेयं मुखे विन्यस्य देवताम्॥ १॥
हृदये परमेशानीं विन्यसेत् कुलसुन्दरीम्।
वाग्भवं बीजमित्युक्तं शक्तिस्तार्तीयमीरितम्॥ २॥
कामबीजं कीलकं स्यात् पुरुषार्थे नियोजितम्।

इसके दक्षिणामूर्ति ऋषि, अहम् का शिर पर विन्यास, पङ्क्ति छन्द, और मुख में विन्यास के देवता हैं॥ १॥

हृदय में परमेश्वरी देवी का विन्यास करे। इसका बीज वाग्भव है इसकी शक्ति तीसरी कही गई है॥ २॥

कामबीज कीलक है जो पुरुषार्थ में नियोजित है।

चतुर्दशश्वासे बालानित्यानित्ययोरभेदप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में वाला नित्याऽनित्या के प्रसङ्ग में—

नित्यानित्या तु बाला चे ------------------------।

नित्या और अनित्या जो बाला है --------------------------------।

चतुर्दशश्वासे नीलपताकार्चाप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में नीलपताका की पूजा के प्रसङ्ग में—

ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः।
नित्या नीलपताकाख्या ह्रीं बीजं ह्रीं च शक्तिकम्॥ १॥
कामबीजं कीलकं स्यात् ---------------------।

इसके ऋषि सम्मोहन, गायत्री छन्द, मन्त्र देवता, नित्या नीलपताका नाम है इसका ह्रीं बीज और ह्रीं ही शक्ति है॥ १॥

कामबीज कीलक है ---------------------।

चतुर्दशश्वासे विजयानित्यार्चाप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में विजयानित्या की पूजा प्रसङ्ग में—

ऋषिरस्या अहिश्छन्दो गायत्री देवता स्वयम्।

अहि इसके ऋषि हैं ये गायत्री स्वयं देवता छन्द हैं।

चतुर्दशश्वासे सर्वमङ्गलासपर्याप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में सर्वमङ्गला की पूजा के प्रसङ्ग में—

ऋषिश्चन्द्रो महेशानि गायत्री छन्द उच्यते।
देवतेयम् ---॥ १॥

हे महेशानि, चन्द्रमा ऋषि, गायत्री छन्द कहा गया है। यह देवता -----------॥ १॥

चतुर्दशश्वासे ज्वालामालिनीनित्यापूजाप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में ज्वालामालिनी नित्या की पूजा के प्रसङ्ग में—

ऋषिस्तु कश्यपश्छन्दो गायत्रं देवता त्वियम्।
रेफास्त्रे बीजशक्ती तु कीलकं कवचं प्रिये॥ १॥

हे प्रिये, इसके ऋषि कश्यप, छन्द गायत्री, देवता स्वयं, रेफ अस्त्र है, बीजशक्ति कीलक और कवच हैं॥ १॥

चतुर्दशश्वासे चित्रानित्यायजनप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में चित्रानित्या के यज्ञप्रसङ्ग में—

ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द उच्यते।
विचित्रा देवता ---॥ १॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा देवता और गायत्री छन्द है और विचित्रा देवता ----॥ १॥

चतुर्दशश्वासे कुरुकुल्लासपर्याप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में कुरुकुल्ला की पूजा के प्रसङ्ग में—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम्।

देवता कुरुकुल्ला ------------------------------------ ॥ १ ॥

इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, पङ्क्ति छन्द और कुरुकुल्ला देवता ------------ ॥ १ ॥

चतुर्दशश्वासे वाराहीसपर्याप्रसङ्गे—

चौदहवें श्वास में वाराही की पूजा प्रसङ्ग में—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिर्गायत्री छन्द ईरितम् ।

इस मन्त्र के दक्षिणामूर्ति ऋषि और गायत्री छन्द कहा गया है ॥ १ ॥

पञ्चदशश्वासे प्रातःकालस्य त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम्—

पन्द्रहवें श्वास में त्रिपुरसुन्दरी का प्रातःकालीन स्तोत्र—

प्रातर्नमामि जगतां जनन्याश्चरणाम्बुजम् ।
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या जनन्या जगतां सदा ॥ १ ॥

इस प्रभात वेला में श्रीमज्जगज्जननी भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चरण कमलों में सदा प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

प्रसन्नायाः स्वभक्तानां नमिताया हरादिभिः ।
प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्या नमामि चरणाम्बुजम् ॥ २ ॥

स्वयं महादेव प्रभृति देवगण जिनके चरणों में नमित हैं, भक्तों पर जो सदैव प्रसन्न रहनेवाली हैं, उन त्रिपुरसुन्दरी के चरणकमलों की मैं प्रभात वेला में वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

हरिर्हरो विरिञ्चिश्च सृष्ट्यादीन् कुरुते यथा ।
प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्या नमामि पदपङ्कजम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विनष्टि का कार्य जिनके द्वारा सम्पादित करते हैं, उस त्रिपुरसुन्दरी के चरणकमलों की इस प्रभात वेला में मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥

यत्पाद्यमम्बु शिरसि भाति गङ्गा महेशितुः ।
प्रातः पाशाङ्कुशशरपाशहस्तां नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

जिनका चरण जलशिव के शिर पर गङ्गा बनकर शोभता है, जिनके हाथों में पाश (फांस), अङ्कुश, शर (वाण) और बंधन हैं, उनका मैं इस प्रत्यूष काल में नमन करता हूँ ॥ ४ ॥

उद्यदादित्यसङ्काशां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
प्रातर्नमामि पादाब्जं ययेदं भासते जगत् ॥ ५ ॥

उगते हुए सूर्य की दिव्य छवि की तरह जिनके चरणकमलों की आभा है जिससे

यह सम्पूर्ण जगत् प्रतिभासित है, श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी के उन चरणों का मैं इस प्रभात काल में नमन करता हूँ॥ ५॥

तस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या यत्प्रसादान्निवर्तते ।
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रातर्नित्यं पठेन्नरः ॥ ६ ॥
तस्मै दद्यादात्मपदं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।

इस त्रिपुरसुन्दरी की जिस परम कृपा से मनुष्य का आवागमन छूट जाता है। यह पाँच श्लोक प्रातःकाल प्रतिदिन जो पढ़ता है, उसे श्रीमती त्रिपुरसुन्दरी आत्मपद प्रदान करती है॥ ६॥

पञ्चदशश्वासे सन्ध्यावन्दनप्रसङ्गे—

पन्द्रहवें श्वास में सन्ध्या वन्दन प्रसङ्ग में—

सन्ध्या चतुर्विधा ज्ञेया बाला कौमारयौवना ।
प्रौढा च निष्कला चेति सन्ध्या देवि प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

हे देवि सन्ध्या चार तरह की जानी जाती है—बाला, कौमारयौवना, प्रौढ़ा और निष्कला, ये चार संध्या हैं॥ १॥

प्रातःकाले महादेवी विद्या वागीश्वरी मता ।
कामेश्वरी च मध्याह्ने सायाह्ने पुरभैरवी ॥ २ ॥
मध्यरात्रे महादेवि ज्ञेया त्रिपुरसुन्दरी ।

हे महादेवि, प्रातःकालीन सन्ध्या विद्या वागेश्वरी होती हैं, मध्याह्न में कामेश्वरी, सायंकाल पुरभैरवी और मध्यरात्रि में त्रिपुरसुन्दरी होती है॥ २॥

× × × ×

प्रातःसन्ध्येयमीशानि सर्वकर्मसु सर्वदा ।
कर्तव्या मन्त्रिणा नित्यं मन्त्रसिद्धिसमृद्धये ॥ १ ॥

हे ईशानि, प्रातः सन्ध्या मन्त्रसिद्धिरूपी समृद्धि के लिए विचारपूर्वक सभी कर्मों में सर्वदा करनी चाहिए॥ १॥

प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य देवतापूजनं चरेत् ।
अशुद्धः स दुराचारः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ २ ॥

प्रातः सन्ध्या छोड़कर जो देवता की पूजा करता है वह अशुद्ध होता है। ऐसा आदमी दुराचारी कहलाता है, इसे सभी कर्मों से बहिष्कृत कर देना चाहिए॥ २॥

प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य देवपूजादिकं चरेत् ।
होमान् कृत्वा महेशानि नारकी जायते नरः ॥ ३ ॥

प्रातः सन्ध्या किये बिना जो देवपूजादि करते हैं, हे महेशानि ऐसे व्यक्ति हवन करके भी नरक ही जाते हैं॥ ३॥

प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य होमं वा तर्पणं शिवे।
कुर्वन्नकारणं विप्रस्त्यजन् श्वा च भवेद् ध्रुवम्॥ ४॥

हे शिवे, प्रातः सन्ध्या छोड़कर जो ब्राह्मण हवन या तर्पण करते हैं, वे अकारण कुत्ते की योनि में जाते हैं॥ ४॥

पिशाचो जायते देवी अपि वेदाङ्गपारगः।
सन्ध्यानामपि सर्वासां प्रातःसन्ध्या गरीयसी॥ ५॥
तस्मात्तां न त्यजेद् विप्रस्त्यजन्नरकमाप्नुयात्।

हे देवि, वेदवेदाङ्ग में पारङ्गत भी ऐसे व्यक्ति पिशाच योनि में ही जन्म लेते हैं। सन्ध्याओं में भी प्रातः सन्ध्या सर्वश्रेष्ठ होती है॥ ५॥

अतः ब्राह्मण को प्रातः सन्ध्या कभी नहीं छोड़नी चाहिए, जो इसे छोड़ देता है वह नरकगामी होती है॥

(अतिरात्र यज्वकृत **श्रीविद्यापद्धति** में तथा **श्रीपदार्थदीपिका** में भी 'सन्ध्याना माप्नुयात्' ऐसा पाठभेद दिखलाई पड़ता है। यहाँ—'सन्ध्या ---------- सर्वासां' की जगह—'सर्वासामपि सन्ध्यानाम्' पाठ देखा जाता है।)

× × × ×

सन्ध्याहीनोऽन्यसन्ध्यायां पूर्वसन्ध्याक्रियामथ।
विधायोत्तरसन्ध्यायाः क्रियां कुर्यात् समाहितः॥ १॥

सन्ध्याहीन को अन्य सन्ध्या में पूर्व सन्ध्या की क्रिया सम्पन्न कर समाहित चित्त से उत्तर क्रिया सम्पादित करना चाहिए॥ १॥

पञ्चदशश्वासे कालनित्याजपप्रकरणे द्वितीयवर्गारम्भात् पूर्वस्तोत्रम्

पन्द्रहवें श्वास में कालनित्या के जपप्रकरण में द्वितीय वर्ग के आरम्भ से पहले की स्तुति—

क्ष्माम्ब्वग्रीरणखार्केन्दुयष्टृप्राययुगस्वरैः।
मातृभैरवगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ १॥

यहाँ ''क्ष्मामब्वग्रीरणखार्केन्दु यष्टृप्राययुगस्वरैः'' सामान्य है पर, सभी तन्त्रशास्त्रीय पद्धति से सम्बद्ध होने के कारण श्लिष्ट है अन्यथा, धरती, जल, आकाश, नख, सूर्य, चन्द्र, यज्ञ, युग एवं स्वर वाचक शब्द विशिष्ट अर्थपरक हैं। इस विशिष्ट अर्थ स्वरूपा भगवती त्रिपुरभैरवी देवी को प्रणाम करता हूँ॥ १॥

कादिवर्गाष्टकाकारसमस्ताष्टकविग्रहाम्।

अष्टशक्त्यावृतां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ २ ॥

कादिवर्गाष्टक आकार जिनका समस्त अष्टक स्वरूप हैं, अष्टशक्ति से जो घिरी हैं, ऐसी त्रिपुरभैरवी की मैं वन्दना करता हूँ॥ २॥

स्वरषोडशकानां तु षट्त्रिंशद्भिः परापरैः ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ ३ ॥

सोलह स्वरों के छत्तीस पर और अपर भेदों से छत्तीस तत्त्वों में भ्रमण करनेवाली देवी त्रिपुरभैरवी की वन्दना मैं करता हूँ॥ ३॥

षट्त्रिंशत्तत्त्वसंस्थाप्यशिवचन्द्रकलास्वपि ।
कादितत्त्वान्तरां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ ४ ॥

छब्बीस तत्त्वों की स्थापना योग्य शिव और चन्द्र कलाओं में भी कादितत्त्वान्तरा देवी त्रिपुरभैरवी की मैं वन्दना करता हूँ॥ ४॥

षडध्वपिण्डयोनिस्थां मण्डलत्रयकुण्डलीम् ।
लिङ्गत्रयातिगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ ५ ॥

षडध्व पिण्डरूप योनि में अवस्थित, तीनों मण्डल की कुण्डलीस्वरूप तीनों लिङ्गों को अतिक्रमण करनेवाली देवी त्रिपुरभैरवी की वन्दना करता हूँ॥ ५॥

स्वयम्भूहृदयां बाणभ्रूकामान्तःस्थितेतराम् ।
प्राच्यां प्रत्यक्चितिं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ ६ ॥

स्वयंभू के हृदय में बाण भ्रू कामान्तःस्थिति में, प्राची और प्रत्यक् चिति स्वरूप देवी त्रिपुरभैरवी की मैं वन्दना करता हूँ॥ ६॥

अक्षरान्तर्गताशेषनामरूपां क्रियां पराम् ।
शक्तिं विश्वेश्वरीं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ ७ ॥

अक्षरों के भीतर अशेष नाम रूपवाली परा क्रियास्वरूपा, शक्तिरूपा देवि, विश्वेश्वरी त्रिपुरभैरवी को मेरा नमन है॥ ७॥

वर्गान्ते पठितव्यं स्यात् स्तोत्रमेतत् समाहिते ।

वर्गान्त में एकनिष्ठ मन से इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए॥

अष्टादशश्वासे स्नानविशेषप्रसङ्गे—

अट्ठारहवें श्वास के स्नानविशेष के प्रसङ्ग में—

विधाय वैदिकं स्नानं ततस्तान्त्रिकमाचरेत् ।
मृदमस्त्रेण चादाय तेन तामभिमन्त्र्य च ॥ १ ॥

वैदिक स्नान सम्पन्न कर उसके बाद तान्त्रिक स्नान करे। अस्त्र से मिट्टी लेकर उसी से उसे अभिमन्त्रित कर॥ १ ॥

शिखामन्त्रेण संशोध्य मन्त्रयेन्मूलमन्त्रतः ।
मूर्धादिपादपर्यन्तं विलिप्य च तया वपुः ॥ २ ॥

शिखा मन्त्र से इसे संशोधित कर फिर मूलमन्त्र से इसे अभिमन्त्रित कर शिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर पर लेप कर दे॥ २॥

सम्मुखीकरणीं मुद्रां बद्ध्वा प्राणान् निरुध्य च ।
निमज्य तूष्णीमुत्थाय नाभिमात्रजले स्थितः ॥ ३ ॥

सम्मुखीकरणी मुद्रा बाँधकर और प्राणों को निरुद्ध कर स्नानोपरान्त चुपचाप नाभिमात्र जल में खड़ा हो जाय॥ ३॥

प्राणायामं ततः कृत्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।
विन्यस्य च षडङ्गानि कल्पयेत् तीर्थमग्रतः ॥ ४ ॥

इसके बाद प्राणायाम करके मन्त्रज्ञ साधक मूलमन्त्र से षडङ्ग का विन्यास कर आगे से तीर्थ की कल्पना करे॥ ४॥

ततः सम्प्रार्थयेत् तीर्थं सूर्यात् तन्मण्डलं ततः ।
घृणिमन्त्रेण मन्त्रज्ञो भित्त्वा चाङ्कुशमुद्रया ॥ ५ ॥

इसके बाद मन्त्रज्ञ साधक घृणिमन्त्र से अङ्कुश मुद्रा के द्वारा सूर्य से उसके मण्डल को भेदकर तीर्थ की प्रार्थना करे॥ ५॥

तीर्थावाहनमन्त्रेण तीर्थमावाहयेत् प्रिये ।
मूलमन्त्रेण संयोज्य कल्पिते तीर्थमण्डले ॥ ६ ॥

हे प्रिये, तीर्थ के आवाहन मन्त्र से तीर्थ का आवाहन करे। कल्पित तीर्थमण्डल में मूलमन्त्र के साथ उसे जोड़कर॥ ६॥

तीर्थशक्तिं च तत्रैव समावाह्यार्कमण्डलात् ।
ध्यात्वा तन्मनुनाभ्यर्च्य गङ्गामन्त्रेण मन्त्रयेत् ॥ ७ ॥

सूर्यमण्डल से वहाँ ही तीर्थशक्ति को समावाहित कर उनका ध्यान कर, उस मन्त्र से उनकी पूजा कर गङ्गामन्त्र से अभिमन्त्रित करे॥ ७॥

सप्तकृत्वः शिवे वच्मि शृणु मन्त्रद्वयं प्रिये ।
जलस्थं व्योमषड्दीर्घस्वरभिन्नं सबिन्दुकम् ॥ ८ ॥

हे शिवे, सात गुण के (सात तरह के) दो मन्त्र मैं तुमसे कहता हूँ, हे प्रिये, इसे आप सुनो। यह मन्त्र जलस्थ है, व्योम अर्थात् शून्य और छः दीर्घ स्वर से भिन्न किन्तु विन्दुयुक्त है॥ ८॥

सर्वानन्दमये तीर्थे शक्ते चैहियुगं द्विठः ।
(एकविंशाक्षरः प्रोक्तस्तीर्थशक्तिमनुः प्रिये) ॥ ९ ॥

सर्वानन्दमय इस तीर्थ शक्ति में हे देवि, तुम आओ, आओ। हे प्रिये, यह तीर्थशक्ति इक्कीस अक्षर की है॥ ९॥

तारं नमो भगवति ब्रूयादम्बे ततोऽम्बिके।
अम्बालिके महामालिन्येह्येहि भगवत्यथ॥ १०॥

दिव्य भगवती को मेरा नमन है, उसके बाद बोले—अम्बे, फिर अम्बिके, अम्बालिके, अथ भगवति महामालिनि, आप यहाँ पधारें॥ १०॥

अशेषतीर्थालवाले मायाश्रीबीजयोरथ।
शिवजटाधिरूढे च गङ्गे गङ्गाम्बिके द्विठः॥ ११॥

सम्पूर्ण तीर्थों के आलबाल अर्थात् थाले में माया और श्रीबीज स्वरूपा शिव की जटा पर अधिरूढ़ गङ्गे गङ्गाम्बिके हमारी रक्षा करे, रक्षा करे॥ ११॥

गङ्गाविद्येयमाख्याता त्रिपञ्चाशद्भिरक्षरैः।
भुवनेश्या समालेख्यामृतीकृत्य सुधाणुना॥ १२॥

तिरपन अक्षरों से निर्मित यह मन्त्र गङ्गाविद्या के नाम से आख्यात है। भुवनेश्वरी का यहाँ सुधाणु से नामोल्लेख कर अमृतीकरण करे॥ १२॥

कवचेनावगुण्ठ्याथ संरक्ष्याऽस्त्रेण मन्त्रयेत्।
मूलेन देवतां तत्र साङ्गां सावरणां प्रिये॥ १३॥

कवच से इसे ढँककर प्रक्षण अस्त्र से इसे अभिमन्त्रित करे। जहाँ साङ्ग सावरण देवता को मूल मन्त्र से प्रतिष्ठित करे॥ १३॥

समावाह्य जले ध्यात्वा तत्पदद्वयनिर्गतम्।
ध्यात्वा तीर्थं स्मरन् मूलमन्त्रं मन्त्रेण तर्पयेत्॥ १४॥

विष्णु-चरणों से निर्गत गङ्गा का ध्यान कर जल में उनका आवाहन करे। फिर तीर्थों का ध्यान कर मूलमन्त्र से अभिमंत्रित करे॥ १४॥

त्रिधा देवीं समुत्तीर्य जलाद् धौते सुवाससी।
परिधायाथ तिलकं कृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्॥ १५॥

तीन प्रकार की देवियों को तर्पण करे। ततः जल से पारकर, धुले सुन्दर वस्त्र पहन कर, तिलक लगाकर सन्ध्या करे॥ १५॥

पञ्चविंशश्वासे भुवनेश्वरीभैरवीप्रकरणे—

पच्चीसवें श्वास में भुवनेश्वरी भैरवी के प्रकरण में—

हंसास्त्रयो दन्त्यसकाररूढा वस्वब्धिपङ्क्तिस्वरसंविभिन्नाः।
आद्यौ सबिन्दू परतो विसर्गो मध्यं विरिञ्चीन्द्रहराग्नियुक्तम्॥ १॥

दन्त्य सकार से उत्पन्न तीनों हंस, वसु (८) अब्धि=सागर (७), पङ्क्ति=श्रेणी (५),

स्वर (७) विभक्त किये हुए, प्रथम दो विन्दुयुक्त, बादवाले विसर्गयुक्त, मध्य ब्रह्मा, इन्द्र, हर और अग्नियुक्त हैं॥ १॥

पञ्चत्रिंशश्वासे श्रीचक्रक्रमाभ्यर्चनप्रसङ्गे—

पैंतीसवें श्वास में श्रीचक्रक्रम की पूजा के प्रसङ्ग में—

मध्यत्रिकोणे रेखासु नित्यानां मण्डलत्रयम्।
पञ्च पञ्च विभागेन मध्ये श्रीललितां यजेत्॥ १॥

बीच की त्रिकोण रेखाओं में नित्याओं का मण्डलत्रय हैं। उन्हें पाँच-पाँच की संख्याओं में बाँट कर देने से उसके बीच श्रीललिता का यजन करे॥ १॥

यद्दिने यां यजेत् तां तु सर्वावरणसंवृताम्।
पूजयेत् सर्वसौभाग्यहेतवे ज्ञानसिद्धये॥ २॥

जिस दिन जिनका यज्ञ करे, उसी दिन सर्वसौभाग्य पाने के लिए तथा ज्ञान सिद्धि के लिए उनकी पूजा भी करनी चाहिए॥ २॥

२. सौभाग्यभास्करे—

२. सौभाग्यभास्कर में—

नाडीत्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्णा पिङ्गला इडा।
मनोबुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्॥ १॥

इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा—ये तीन नाड़ियाँ त्रिपुरा हैं। मन, बुद्धि और चित्त—ये तीन पुरत्रय के रूप में उदाहृत हैं॥ १॥

तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरामते।

यहाँ ही इनका निवास हैं। अतः ये त्रिपुरा कहलाती हैं॥

३. पुरश्चर्यार्णवे—

३. पुरश्चर्यार्णव में—

द्वितीयतरङ्गे दीक्षाकालनिर्णये नक्षत्रफलप्रसङ्गे—

दूसरे तरङ्ग में दीक्षाकालनिर्णय में नक्षत्रफल के प्रसङ्ग में—

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम्।
कृत्तिकायां भवेद् दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत्॥ १॥

अश्विनी नक्षत्र में दीक्षाग्रहण करने पर शिष्य को सुख मिलता है। भरणी में दीक्षा लेने पर उसकी मृत्यु निश्चित है। कृत्तिका में दुःखी होता है, रोहिणी में दीक्षा ग्रहण करने पर शिष्य वाक्पति होता है॥ १॥

मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम् ।
पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात् पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥ २ ॥

इसी तरह मृगशिरा में, सुख की प्राप्ति, आर्द्रा में बन्धुनाश, पुनर्वसु में धनाढ्य होता है, पुष्य में शत्रुओं का विनाश होता है ॥ २ ॥

आश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् ।
सौन्दर्यं पूर्वफाल्गुन्यां प्राप्नोतीति न संशयः ॥ ३ ॥

आश्लेषा में मृत्यु होती है, मघा में दुःख का मोचन होता है। पूर्वफाल्गुनी में सौन्दर्य प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए॥ ३ ॥

ज्ञानं चोत्तरफाल्गुन्यां हस्तायां च बली भवेत् ।
चित्रायां ज्ञानसिद्धिः स्यात् स्वात्यां शत्रुविनाशनम् ॥ ४ ॥

उत्तरफाल्गुनी में ज्ञान, हस्त में बलवान् होता है, चित्रा में ज्ञान की सिद्धि होती है और स्वाति में शत्रु का विनाश होता है ॥ ४ ॥

विशाखायां भवेत् सौख्यमनुराधा च बुद्धिदा ।
ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूलायां कीर्तिवर्धनम् ॥ ५ ॥

विशाखा में सौख्य, अनुराधा में बुद्धि बढ़ती है, ज्येष्ठा में पुत्र की हानि होती है तथा मूल में कीर्ति बढ़ती है ॥ ५ ॥

पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्तिदायिके ।
श्रवणायां भवेद् दुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता ॥ ६ ॥

पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ़ में कीर्तिदायक दीक्षा होती है। श्रवण दुःख देनेवाला नक्षत्र है और धनिष्ठा दारिद्र्य प्रदान करता है ॥ ६ ॥

बुद्धिः शतभिषायां स्यात् पूर्वभाद्रे सुखी भवेत् ।
सौख्यं चोत्तरभाद्रे स्याद् रेवत्यां कीर्तिवर्धनम् ॥ ७ ॥

शतभिषा में बुद्धि बढ़ती है, पूर्वभाद्र में सुख मिलता है, उत्तरभाद्र में सौख्य तथा रेवती में कीर्ति बढ़ती है ॥ ७ ॥

४. कैवल्याश्रमकृत-सौभाग्यवर्धिनीनाम-सौन्दर्यलहरीटीकायाम्—

४. कैवल्याश्रम कृत **सौभाग्यवर्द्धिनी** नामक **सौन्दर्यलहरी** की टीका में—

प्रथमश्लोकस्य टीकायां विद्याप्रासादपदोद्धारप्रसङ्गे—

प्रथम श्लोक की टीका में विद्याप्रासादपदोद्धार प्रसङ्ग में—

वाग्भवं प्रथमं बीजं कामराजं द्वितीयकम् ।

तृतीयं शक्तिकूटाख्यं निगमत्रितयोद्धृतम् ॥ १ ॥

निगम के अनुसार तीन तरह के बीज उद्धृत किये गये हैं, पहला बीज वाग्भव, दूसरा बीज कामराज और तीसरा बीज शक्तिकूट कहलाता है॥ १॥

इत्थं कुमारीविद्याया बीजत्रयमुदीरितम् ।

इस तरह कुमारी विद्या के बीजत्रय बतलाये गये हैं॥

तृतीयश्लोकस्य व्याख्यायाम्—

तीसरे श्लोक की व्याख्या में—

हरत्यज्ञानमज्ञानाज्जडिमानमतः पुनः ।
इतः कामान्वितनुते कैवल्यं कलया विधोः ॥ १ ॥

जड़ताजन्य अज्ञान को अज्ञान से जो नष्ट करती है, पुनः इस दिशा में वह एक ओर व्यक्ति को अभीष्ट पदार्थ देती है तो दूसरी ओर विधाता की इच्छा से कैवल्य (पूर्ण पृथक्ता) का भी बोध भी कराती है॥ १॥

वाग्भवं प्रथमं बीजं वेदानां पुरतो यतः ।
त्रिपुरासंज्ञया भद्रे त्वद्रूपा विश्वविग्रहा ॥ २ ॥

हे भद्रे, वेदों के आगे वाग्भव नामक प्रथम बीज है जिससे उन्हें त्रिपुरा भी कहा जाता है, वह विश्वमूर्ति त्वद्रूपा (तुम्हारे रूप में) हैं॥ २॥

वाच्यवाचकरूपेण व्याप्नोत्यमितवैभवम् ।

वाच्य वाचक रूप से अकूत सम्पदा के रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं॥

५. विद्यानन्दकृतार्थरत्नावलीनाम-नित्याषोडशिकार्णवटीकायाम्—

५. विद्यानन्द कृत **अर्थरत्नावली** नामक **नित्याषोडशिकार्णव** की टीका में—

चतुर्थपटले ४५ सूत्रस्य व्याख्यानावसरे 'कामस्थं' इत्यस्य विवेचनप्रसङ्गे—

चौथे पटल के पैंतालिसवें में सूत्र की व्याख्या लिखते समय 'कामस्थं' शब्द के विवेचन प्रसङ्ग में—

कामं प्राणं प्रकर्तव्यं मन्मथं कारयेत् तनुम् ।
कन्दर्पं मन्दिरं कृत्वा द्विधाभूतं च पार्वति ॥ १ ॥

हे पार्वति, काम को प्राणवन्त करना चाहिए और मन्मथ को शरीर और कन्दर्प को मन्दिर का रूप देकर दो खण्डों में विभक्त कर दे॥ १॥

मकरध्वजं न्यसेद् देवि षट्स्थानेष्वस्य सुव्रते।
मोहनाभ्यन्तरे कृत्वा वेष्टयेत् तस्य मायया ॥ २ ॥

हे देवि! इसके षट्कोण के मध्य में मकरध्वज रखें, हे सुव्रते! मोहन को भीतर कर उसकी मकाया से उसे घेर दे॥ २॥

६. रामेश्वरकृत-परशुरामकल्पसूत्रव्याख्यायाम्—

६. रामेश्वरकृत **परशुरामकल्पसूत्र** की व्याख्या में—

प्रथमखण्डे दीक्षाविधौ शूद्रादौ केवलतान्त्रिककर्मप्रमाणप्रसङ्गे तथा तृतीयखण्डे श्रीक्रमे तान्त्रिकस्नानसन्ध्याप्रकरणे च—

प्रथम खण्ड में दीक्षाविधि के वर्णन में शूद्रादि को केवल तान्त्रिक कर्म ही करना चाहिए न कि वैदिक—इसके प्रमाणप्रसङ्ग में, तथा तीसरे खण्ड के श्रीक्रम में तान्त्रिक स्नान और सन्ध्याप्रकरण में—

त्रैवर्णिकैर्वैदिकान्ते तान्त्रिकं क्रियतेऽखिलम्।

तीनों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के द्वारा वैदिक कर्म सम्पन्न करने के पश्चात् सम्पूर्ण तान्त्रिक कर्म करे॥

तृतीयखण्डे श्रीक्रमे तर्पणप्रोक्षणप्रसङ्गे—

तीसरे खण्ड के श्रीक्रम में तर्पण और प्रोक्षण के प्रसङ्ग में—

मन्त्रानुक्तौ मूलमन्त्रं योजयेत् परमेश्वरि।

हे परमेश्वरि, जिस विधि के मन्त्र का उल्लेख नहीं है, वहाँ मूलमन्त्र का प्रयोग करे।

तत्रैव श्रीचक्रस्वरूपतत्साधनद्रव्यप्रसङ्गे—

वहाँ ही श्रीचक्र स्वरूप और उसके साधन द्रव्य के प्रसङ्ग में—

वृत्तं ततो भूपुराणां त्रितयं द्वारशोभितम्।

भूपुरों के वृत्त को तीन तरह के द्वारों से सुशोभित करे।

तत्रैव ब्रह्मरन्ध्रस्थिताधोमुखसहस्रच्छदपद्ममपि अकुलमितिप्रसङ्गे—

वहाँ ही ब्रह्मरन्ध्र में उपस्थित अधोमुख हजार पंखुरियों वाले कमल भी अकुल हैं— इस प्रसङ्ग में—

सुषुम्नोर्ध्वं सुधारश्मिकोटिकान्तिसमप्रभम्।
अधोमुखं गुरुस्थानं सहस्रदलशोभितम् ॥ १ ॥

सुपुम्ना से ऊपर करोड़ों अमृत किरणों की कान्ति की तरह प्रभावाले अधोमुख गुरुस्थान में सहस्त्रों दल से सुशोभित॥ १॥

अकुलं तद्विजानीयात् ------------------------------ ।

उसे कुलहीन अर्थात् शिव जानना चाहिए।

तत्रैव द्विपात्रविधिमुख्यत्वसमर्थनप्रसङ्गे—

वहाँ ही द्विपात्रविधि की मुख्यता के समर्थन के प्रसङ्ग में—

आत्मयोगपराणां तु नाङ्गलोपेन हीयते।

आत्मयोगपरायण व्यक्तियों की अङ्गलोप से कोई हानि नहीं होती।

तत्रैव कुलद्रव्यस्वीकारविधिसमर्थने—

वहाँ ही कुलद्रव्य-स्वीकारविधि के समर्थन में—

कामान्मोहाद्यदि सुरां पिबेत् सकृदपि द्विजः।
विद्वानपि च संत्याज्यः तन्त्रज्ञैरविचारितम् ॥ १ ॥

यदि काम या मोहवश द्विज थोड़ा भी शराब पी ले तो उसे विद्वान् रहने पर भी तन्त्रज्ञ साधक बिना विचार किये ही छोड़ दे॥ १॥

× × × ×

गौडी माध्वी च पैष्टी च त्रिविधं द्रव्यमीरितम्।
ऐक्षवक्षौद्रजाताऽऽद्या गौडी स्यात् सात्त्विकी स्मृता ॥ १ ॥

गौड़ी, माध्वी और पैष्टी ये तीन प्रकार के द्रव्य कहे गये हैं। गन्ने के रस से बनी शराब या शहद से तैयार की गई शराब को पहली गौड़ी कहा गया है यह सात्विकी कहलाती है॥ १॥

मधूककुसुमद्राक्षातालवृक्षादिसम्भवा।
माध्वीति कीर्त्तिता तज्ज्ञैः राजसी सा भवेच्छिवे ॥ २ ॥

महुए के फूल से, अंगूर से या ताड़ के पेड़ से तैयार की गई शराब को हे शिवे, राजसी कहा गया है, यह **माध्वी** नाम से जानी जाती है॥ २॥

पिष्टतण्डुलजाता या तामसी पैष्टिकी स्मृता।
सात्त्विकी ब्राह्मणे ख्याता राजसी नृपवैश्ययोः ॥ ३ ॥

भात या चावल को पीसकर तैयार की गई शराब **पैष्टिकी** होती है यह तामसी नाम से जानी जाती है। सात्विकी ब्राह्मण के लिए तथा राजसी क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिए कही गई है॥ ३॥

× × × ×

पूजनीया कलौ सर्ववर्णैः केवलमासवैः।

कलियुग में सभी वर्णों के लिए केवल आसवों के द्वारा ही पूजनीय हैं॥

× × × ×

अयं सर्वोत्तमो धर्मः शिवोक्तः सुखसिद्धिदः ।
जितेन्द्रियस्य सुलभो नान्यस्यानन्तजन्मभिः ॥ १ ॥

शिव के द्वारा कथित सुख और सिद्धिदायक यह सर्वोत्तम धर्म है। केवल जितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए ही यह सुलभ है; दूसरों के लिए तो अनन्त जन्मों में भी यह प्राप्य नहीं है॥ १॥

यदूर्ध्वरेतसां सर्वत्यागिनामनिकेतिनाम् ।
क्षणेन स्मृतिमात्रेण मोहमुत्पादयत्यलम् ॥ २ ॥

जो अनवरत ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले हैं। सब कुछ त्याग करनेवाले हैं, उनके लिए न कोई घर है न द्वार। ऐसे वीतराग साधक को भी क्षणिक स्मृतिमात्र से मोह उत्पन्न हो जाता है॥ २॥

तदेवात्र हि संसिद्धौ कारणं सर्वमीरितम् ।
इतो मद्यमितो मांसं भक्ष्यमुच्चावचं तथा ॥ ३ ॥

उसे ही संसिद्धि का एकमात्र कारण सबने स्वीकार किया है। इधर शराब, उधर मांस तथा ऊँचा-नीचा अर्थात् अनियमित आहार॥ ३॥

तरुण्यश्चारुवेषाढ्या मदघूर्णितलोचनाः ।
तत्र संयतचित्तत्वं सर्वथा ह्यतिदुष्करम् ॥ ४ ॥

जहाँ मदघूर्णित आँखोंवाली सजी धजी तरुणियाँ हों, वहाँ संयतचित्त की बात ही सर्वथा अति दुष्कर हैं॥ ४॥

भक्तिश्रद्धाविहीनस्य कथं स्यादेतदीश्वरि ।

हे ईश्वरि, भक्ति और श्रद्धा से रहित साधक के लिए यह संभव कैसे होगा!

चतुर्थखण्डे ललिताक्रमे चतुःषष्ट्युपचारविधिप्रसङ्गे—

चतुर्थ खण्ड के **ललिताक्रम** में चौसठ उपचारविधि के प्रसङ्ग में—

उक्तोपचारादधिकैः सम्भवे सति पूजयेत् ।

ऊपर कथित उपचारों से यदि अधिक की संभावना हो तो उससे भी पूजन करे॥

पञ्चमे खण्डे ललितानवावरणपूजायां कामकलाध्यानप्रसङ्गे—

पञ्चम खण्ड के ललिता नव आवरण पूजा के कामकला ध्यान-प्रसङ्ग में—

सूक्ष्मध्यानेऽसमर्थश्चेत् स्थूलं ध्यायेद् यथोक्तवित् ।

सूक्ष्म ध्यान करने में यदि असमर्थ हो तो बतलाई गई रीति से स्थूल ध्यान करे।

तत्रैव बलिदानप्रसङ्गे—

वहाँ ही बलिदानप्रसङ्ग में—

बलिपात्रं ताम्रभवं नैवान्यत्तु कदाचन ।

ताम्बे का बलिपात्र होना चाहिए, इसके अलावे कुछ और नहीं।

तत्रैव मण्डललक्षणप्रसङ्गे—

वहाँ ही मण्डल-लक्षणप्रसङ्ग में—

इदं तन्मण्डलं देवि प्रारभ्यैतस्य पूजनम् ।
मार्तण्डमण्डलार्घ्यान्तं ---------------------------------- ॥ १ ॥

हे देवि, उसे इस मण्डल को प्रारम्भ कर, इसका पूजन करे। अर्घ्य के अन्त में मार्तण्डमण्डल ---------------- ॥ १ ॥

तत्रैव हविश्शेषप्रतिपत्तिप्रसङ्गे—

वहाँ ही हवि:शेष की उपलब्धि के प्रसङ्ग में—

तथा पूजानिमित्तं वै प्रथमाद्यमुपाहृतम् ।
यज्ञीयं तत्पवित्रं स्याद् दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा शुचिर्भवेत् ॥ १ ॥

तथा पूजा के निमित्त प्रथमादि का उपाहरण किया गया हो वह एक यज्ञीय पवित्र वस्तु होती है, उसे देखकर उसका स्पर्श कर साधक पवित्र हो जाता है ॥ १ ॥

तथैव मण्डले प्राप्तं सर्वं तदमृतं भवेत् ।
विप्रेणान्येन वाऽऽनीतं देवतायै निवेदयेत् ॥ २ ॥

उसी तरह जो वस्तु मण्डल में आ जाती है वह अमृत बन जाती है। विप्र के द्वारा या किसी अन्य के द्वारा मण्डल में लाई गई वस्तु देवताओं के लिए समर्पित करना चाहिए ॥ २ ॥

प्रथमाद्यैः संस्कृतैस्तु युक्तं तत्तदगात्मजे ।
अविशेषेण सर्वैस्तु ग्राह्यं शङ्काविवर्जितैः ॥ ३ ॥

हे पर्वतपुत्रि, प्रथमादि से सुसंस्कृत वस्तु सामान्यरूप से शङ्कारहित होकर सबको ग्रहण करना चाहिए ॥ ३ ॥

तत्रैव भुक्तस्य विशेषः—

वहाँ ही खाये हुए की विशेषता—

अतर्कितो दिवा भुक्तो यदा रात्रौ समागतः ।
तदा गुर्वाद्याज्ञया तु स्नात्वा सेवेन्न चान्यथा ॥ १ ॥

अतर्कित अर्थात् बिना सोचे आकस्मिक रूप से यदि दिन में भोजन करके रात में मण्डल में आ जाय तो गुरु की आज्ञा लेकर ही सुधा-सेवन करे, अन्यथा नहीं ॥ १ ॥

× × × ×

भुक्त्वा न मण्डलं गच्छेत्—

भोजन कर मण्डल में न जाय—

× × × ×

शक्त्या स्वर्णादिसंयुक्तमर्पयेत् पात्रमम्बिके ।
यत्किञ्चिद्वाऽपि पात्रस्थं दत्वाऽनन्तफलं लभेत् ॥ १ ॥

हे अम्बिके, यथाशक्ति स्वर्णादियुक्त पात्र मण्डल में समर्पित करे, पात्र में जो कुछ भी हो, रखकर दान देने से अनन्त फल मिलता है ॥ १ ॥

× × × ×

वीराज्ज्येष्ठात् तथाऽऽचार्याद् ग्राह्यं शेषं च चर्वणम् ।
तदभावेऽपि चान्यस्मात् ज्येष्ठाद् ग्राह्यं नगात्मजे ॥ १ ॥

वीर से, अपने से बड़ों से तथा आचार्य से शेष और चर्वण ग्राह्य है। हे नगात्मजे, इनके अभाव में अन्य ज्येष्ठों से भी ये ग्राह्य हैं ॥ १ ॥

× × × ×

अयं सर्वोत्तमो धर्मः कौलमार्गो महेश्वरि ।
असिधाराव्रतसमो मनोनिश्चलहेतुकः ॥ १ ॥

हे महेश्वरि, कौलमार्ग का यह सर्वोत्तम धर्म है, यह असिधारा व्रत की तरह है, मन को निश्चल करने का यह हेतु है ॥ १ ॥

तत्र संयतचित्तत्वं सर्वथा ह्यतिदुष्करम् ।
भक्तिश्रद्धाविहीनस्य ------------------------------------ ॥ २ ॥

सर्वथा, भक्ति और श्रद्धाविहीन साधक का वहाँ संयत चित्त होना अति दुष्कर है ------------- ॥ २ ॥

× × × ×

एवं सामयिको भक्त्या मानदम्भविवर्जितः ।
अनाहूतोऽपि वाऽहूतो वजेन्मण्डलमुत्तमम् ॥ १ ॥

इस तरह जो सामयिक है, उन्हें मान या दम्भ को छोड़कर बुलाने पर या बिना बुलाये भी मण्डल में जाना चाहिए ॥ १ ॥

व्रती वाऽपि हुनेदेव न दोषस्तत्र विद्यते ।
व्रतादिशङ्कया यस्तु न व्रजेदादृतोऽपि सन् ॥ २ ॥

जो व्यक्ति व्रती हैं उन्हें भी हवन करना चाहिए; क्योंकि, ऐसा करने से उन्हें कोई दोष नहीं होता। व्रतादि की आशङ्का से आहूत होने पर भी मण्डल में जो सम्मिलित नहीं होते ॥ २ ॥

व्रतं तस्य प्रतिहतमनर्थं च समाप्नुयात् ।
तस्मात् कनिष्ठाहूतोऽपि प्रविशेदेव मण्डले ॥ ३ ॥

उनका व्रत तो नष्ट होता ही है, उनके साथ अनर्थ भी होता है। अत: अपने से छोटे के बुलाने पर भी मण्डल में प्रवेश करना चाहिए॥ ३ ॥

× × × ×

विद्यासम्बन्धतो वाऽपि योनिसम्बन्धतस्तथा ।
ज्येष्ठानामपि चोच्छिष्टं दीक्षितानां च भक्षयेत् ॥ १ ॥

विद्या-सम्बन्ध से अथवा योनि-सम्बन्ध से अपने से जो ज्येष्ठ हैं उनका उच्छिष्ट (जूठा) दीक्षित को खाना चाहिए॥ १ ॥

दीक्षाहीनस्य चोच्छिष्टं जनकस्यापि दीक्षितः ।
न भक्षयेत् सकृद्वाऽपि भुक्त्वा पातित्यमाप्नुयात् ॥ २ ॥

दीक्षित पुत्र को दीक्षाहीन पिता का भी उच्छिष्ट ग्रहण नहीं करना चाहिए। इनका थोड़ा भी उच्छिष्ट ग्रहण पाकर दीक्षित व्यक्ति पतित हो जाता है॥ २ ॥

× × × ×

षष्ठखण्डे श्यामाक्रमे मन्त्रस्नानप्रसङ्गे—

षष्ठ खण्ड के श्यामा-वर्णनक्रम में मन्त्रस्नान के वर्णन प्रसङ्ग में—

वस्त्रेणार्द्रेण चाङ्गानां कृत्वा प्रोञ्छनमादितः ।
मूलं जपन् सप्तधा तु आपादतलमस्तकम् ॥ १ ॥

कपड़े भिगोकर सात बार मूलमन्त्र जपते हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग के साथ शिर से पैर तक पोंछ डाले॥ १ ॥

तलाभ्यां संस्पृशेद् देवि मन्त्रस्नानं प्रकीर्तितम् ।
एतत् स्नानमशक्तस्य विहितं शुद्धिहेतवे ॥ २ ॥

हे देवि, इसके बाद दोनों तलवे का स्पर्श करना ही मन्त्रस्नान कहलाता है। अशक्त व्यक्ति की शुद्धि के लिए यह स्नान विहित है॥ २ ॥

तत्रैव द्वितीयप्रकृतिप्रसङ्गे—

वहाँ ही दूसरी प्रकृति के प्रसङ्ग में—

मधुराम्लहिङ्गुबीजमरीच्याज्यसुपाचितम् ।
सुगन्धं मृदुपक्वं च सुस्वादु च मनोहरम् ॥ १ ॥

मीठा, खट्टा, हींग का बीज और मरीच आदि डालकर घी में उसे सुन्दर ढंग से पकायें। सुगन्धयुक्त, हल्की आँच में पकी, सुस्वादु और मनोहर होना चाहिए॥ १ ॥

तत्रैव तृतीयप्रकृतिप्रसङ्गे—

वहाँ ही तीसरी प्रकृति के प्रसङ्ग में—

अल्पकण्टकसंयुक्तं सुपक्वं स्वादुसंयुतम् ।
लिकुचाम्लादिसंयुक्तं विधिना संस्कृतं तथा ॥ १ ॥

काँटे की बहुलता जहाँ न हो, सुपक्व हो, सुस्वादु हो, उसमें बड़हर फल का खटास हो तथा विधिवत् पकाया गया हो॥ १॥

तत्रैव चतुर्थद्रव्यप्रसङ्गे—

वहाँ ही चतुर्थ द्रव्य प्रसङ्ग में—

एतत्पर्युषितं सर्वमनर्हं पूजनादिषु ।
तत्पूजया प्रकुप्यन्ति योगिन्यस्त्वतिभीषणाः ॥ १ ॥

पूजनादि में ये वासी पदार्थ अयोग्य माने गये हैं, हठपूर्वक यदि पूजा में कोई इसका प्रयोग करे तो वह अत्यन्त भयङ्कर योगिनियों का कोपभाजन बन जाता है॥ १॥

दशमखण्डे सर्वसाधारणक्रमे आदिमप्रतिनिधिप्रसङ्गे—

दशम खण्ड में सर्वसाधारण क्रम में आदिम प्रतिनिधि के प्रसङ्ग में—

गुडोदकं तथा तक्रं -- ।

गुड़ या शरबत तथा मट्ठा -- ।

[ऐसे ही **परमानन्दतन्त्र** की टीका में श्री महेश्वरानन्दनाथ ने सौ से अधिक श्लोक प्रमाण के रूप में उपस्थापित किये हैं। किन्तु, **श्रीविद्यार्णव** में जो मन्त्र **त्रिपुरार्णव** नाम से मन्त्रभाग में निर्दिष्ट हैं, वे मन्त्र यहाँ उपलब्ध नहीं है। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि त्रिपुरार्णव कोई अवश्य ही विशाल ग्रन्थ रहा होगा॥]

॥ इति शम् ॥

●